# स्वर्णलता

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

# स्वर्णलता

तिलोत्तमा मिश्र

अनुवाद
चन्द्रमुखी जैन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2426-8

पहला संस्करण : 1998 (*शक 1920*)

Original Title : Swarnalata (*Assamese*)
Translation : Swarnalata (*Hindi*)

**रु. 45.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

# भूमिका

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में धर्म-प्रचार के उद्देश्य से असम में आए अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशनरियों ने मनोयोग-पूर्वक असमिया भाषा और साहित्य के विकास के लिए यथेष्ट कार्य किया था। उन लोगों ने असमिया शब्दकोष और व्याकरण की रचना करके असमिया भाषा की नींव को सुदृढ़ करने के अतिरिक्त रचनात्मक, धार्मिक और व्यावहारिक पुस्तकें भी लिखी थीं और 'अरुणोदय' नाम की एक पत्रिका भी निकाली थी। उनकी भाषा-शैली निश्चय ही सरल थी, किंतु उसमें पश्चिमी स्वर ध्वनित होता था। बाद में शब्दकोषकार—हेमचन्द्र बरुआ ने इस भाषा को विज्ञान सम्मत रूप दिया।

मिशनरियों में ए. के. गार्नि ने 'कामिनीकान्तं, 'फूलमनि' 'करुणा' आदि कहानियां लिखी थीं। इनमें—उपन्यास की कलात्मकता नहीं थी। प्रचारधर्मी वर्णनात्मकता ही इन रचनाओं में नहीं थी। उसके बाद पद्मावती देवी 'फूकन' ने सन् 1884 में 'सुधर्मा का उपन्यास' लिखा। यह भी प्रकृत उपन्यास की श्रेणी में नहीं आ सका। प्रकृत उपन्यास का जन्म हुआ था लक्ष्मीनाथ 'बेजबरुआ' और पद्मनाथ गोहांई 'बरुआ' के द्वारा। इनका युग रोमांटिक विस्तार का युग था। यह कहा जा सकता है कि बेजबरुआ के 'पद्मकुंवरी' (1905) और गोहांई 'बरुआ' के 'भानुमती' (1891) और 'लाहरी' (1892) में उपन्यास के लक्षण प्रगट हुए थे; फिर भी कथावस्तु की शिथिलता और उपन्यास के लिए उपयुक्त जीवन-दृष्टि के अभाव में इन लोगों की रचनाएं कालांतर में पूरी तरह धूमिल पड़ गईं। इसके पश्चात् लेखक शरतचन्द्र गोस्वामी का 'पानीपथ', देवचन्द्र 'तालुकदार' का 'अपूर्ण', दण्डिनाथ 'कलिता' का 'साधना' आदि को उपन्यास कहा जा सकता है फिर भी अत्यधिक आदर्शात्मक होने के कारण वे जनप्रिय नहीं हुए। रोमांटिक युग के श्रेष्ठ—उपन्यासकार थे रजनीकान्त वरदलै। उन्होंने वाल्टर स्कॉट और वंकिमचन्द्र की शैली का अनुसरण करते हुए कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे; जिनके भीतर 'मनोमती', 'रहदोई लिंगिरी', 'रंगीली', 'निर्मल-भकत', 'दन्दुआ द्रोह' आदि प्रमुख हैं। इनमें अतीत के गौरवोज्ज्वल अध्यात्म की ध्वनि-प्रतिध्वनि और वैष्णव परंपरा का आभास होने के अतिरिक्त नारी-चरित्र का वैशिष्ट्य भी है। उनके 'मिरि जियरी' उपन्यास में मिसिंग जनजाति की दुखांत कहानी का विनीत चित्रण हुआ है। वारदलोई के बाद एक गणमान्य उपन्यासकार हुए दीननाथ शर्मा।

चालीस के दशक में रोमांटिक भावादर्श के परिवेश में जिन्होंने इस तरह के उपन्यास लिखे, उनका आधार था उनकी आदर्शात्मक दृष्टिभंगी; वास्तविकता उनमें नहीं थी। इस बीच संघातिक द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने असम को भी प्रभावित किया। इस युद्ध

के वातावरण के कारण पूर्व के रोमांटिक स्वप्नों का अंत हो गया और युद्ध की समाप्ति पर विरंचिकुमार 'बरुआ' ने 'जीवनर बाटत' नाम का जो उपन्यास लिखा वहां वास्तविक जीवन के विचित्र रूप, वाह्यांतर के द्वंद्व आदि— सभी पर एक जीवन-दृष्टि प्रकाश में आई। बरुआ के जीवन का करुण चित्रांकन हुआ है। दोनों उपन्यास आकर्षक और मर्मस्पर्शी हैं।

उसके बाद आया 'रामधेनु युग'। 'रामधेनु' पत्रिका के माध्यम से अच्छे-अच्छे लेखक प्रकाश में आए। जिनका नेतृत्व किया 'रामधेनु' के संपादक वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने। रामधेनु युग और उसके परवर्ती काल में प्रफुल्लदत्त गोस्वामी और सैयद अब्दुल-मलिक यद्यपि ये 'आवाहन युग' के ही व्यक्ति थे, फिर भी औपन्यासिक प्रतिभा इसी युग में विशेष रूप से प्रकाश में आई। योगेनदास, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, नवकान्त बरुआ, शीलभद्र, होमेन बरगोहांई, चन्द्रप्रकाश सइकिया, उमाकान्त शर्मा, मेदिनी चौधरी, मामनि रायसम गोस्वामी, लक्ष्मीनन्दन बोरा, मुहम्मद पियार, हितेश डेका, नीलिमा दत्त, निरुपमा बरगोहांई आदि ने निष्ठापूर्वक आधुनिक असमिया उपन्यास का विकास किया। 'रामधेनु' काल के अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण परिवेश, उपन्यासकारों की मननशीलता, विश्वास से प्रदीप्त जीवन-वीक्षा, मानवीय वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, अवक्षय चेतना, सामाजिक वास्तविकता के प्रति जिज्ञासा, राजनीतिक सचेतनता, अनुभव प्राप्ति का आग्रह, विश्व-संस्कृति के तत्वों का ग्रहण, ग्रामीण एवं शहरी शोषितों के प्रति सहानुभूति, शारीरिक संबंधों के प्रति सचेतनता—आदि कारणों से 'इस युग' का उपन्यास पूर्ण रूप से विकसित हुआ था। इसी समय शारीरिक संबंधों को लेकर फ्रायड और मार्क्स की चर्चा चली थी, और टालस्टाय, गोर्की, दोस्तोयेव्स्की से लेकर वर्जिनिया उल्फ, जेम्स जोयेस आदि विदेशी-उपन्यासकारों के विषय में भी चर्चा हुई थी। समाज तत्व जिस तरह आया था उसी तरह मनस्तत्व का भी अनुप्रवेश हुआ था। यह कहा जा सकता है कि इस तरह की चर्चा सत्तर के दशक तक चली। 'रामधेनु युग' के कुछ उपन्यासकारों ने अभी भी कलम नहीं छोड़ी है और किसी न किसी रूप में जीवनी पर आधारित उपन्यासों की रचना में संलग्न हैं।

यद्यपि अस्सी और नब्बे के दशक से पूर्व उपन्यास में गतिशील उद्यम नहीं था फिर भी, युवा पीढ़ी से कुछ प्रतिश्रुति संपन्न उपन्यासकार आए। उनमें फणीन्द्र दत्त चौधरी, भूपेन्द्र नारायण भट्टाचार्य, अरुपा पतिंगिया कलिता, तिलोत्तमा मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

असमिया उपन्यास-साहित्य के इतिहास का बारीकी से निरीक्षण करने पर देखा जाता है कि बेजरुआ और गोहांई बरुआ आदि के द्वारा उपन्यास को जन्म देने के बाद रजनी कान्त वारदोलोई ने असमिया उपन्यास-साहित्य को विश्व-साहित्य के भंडार के साथ संयुक्त किया, विरंचि कुमार बरुआ ने भावात्मकत्व प्रदान किया और रामधेनु युग में वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने उसे परिपक्व करके, उसमें आधुनिकता का समावेश किया। इसके उपरांत सत्तर के दशक तक आधुनिकता की दोनों दिशाएं—अवक्षय चेतना और समाज-चेतना अभिव्यक्त होती रहीं। इन सभी लेखकों में उपन्यासकार की अंतर्दृष्टि और गतिशीलता थी।

आलोच्य पुस्तक 'स्वर्णलता' की लेखिका श्रीमती तिलोत्तमा मिश्र ने अस्सी के दशक के अंत में इस उपन्यास की रचना की। सन् 1991 में यह प्रकाशित हुई। 'स्वर्णलता' उपन्यास यद्यपि गुणाभिराम बरुआ की जीवनी पर आधारित है, पर पाश्चात्य ध्यान-धारणा के संपर्क से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य और शेष भाग में असम के भीतर जो सीमित सामाजिक-राजनीतिक आलोड़न हुआ था, विशेषकर मध्यम श्रेणी के बीच असूर्यपश्या नारी को लांछना मुक्त करने के लिए जो प्रयास हो रहे थे, उनका कलात्मक चित्र भी इस उपन्यास में अंकित हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि धार्मिक और सामाजिक संस्कारों के माध्यम से मनुष्य की विचारधारा को अनुप्राणित करने वाले व्यक्ति थे गुणाभिराम बरुआ। गुणाभिराम को अपने उद्देश्य में प्रेरणा मिली थी कलकत्ता से, ब्राह्म-धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र आदि से। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह के संबंध में जो प्रयास किए थे, वे भी इनकी प्रेरणा के स्रोत बने। कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कालेज में अध्ययन करते समय ही उन लोगों का पूर्ण प्रभाव इन पर पड़ा था। इसके फलस्वरूप इन्होंने स्वयं ब्राह्मधर्म ग्रहण किया और अपनी प्रथम पत्नी के स्वर्गवास के उपरांत विष्णुप्रिया नाम की एक ब्राह्मण-विधवा के साथ विवाह किया। स्वर्णलता उनकी ही बेटी थी और यही 'स्वर्णलता' उपन्यास की नायिका है। उपन्यास में गुणाभिराम ने एक निपुण भास्कर की तरह अपने आदर्शों के अनुरूप स्वर्णलता को गढ़ा है। स्वर्णलता के परंपरागत बंधनों से मुक्त होकर जीवन में सुप्रतिष्ठित होने की योग्यता अर्जित करने के मूल में गुणाभिराम का प्रचुर अवदान है, फिर भी, नाना प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच स्वतंत्र पदक्षेप लेकर एक सुंदर भविष्य के लिए वह स्वयं को तैयार कर सकी। इसीलिए उपन्यास का नामकरण 'स्वर्णलता' सर्वथा उपयुक्त है। 'स्वर्णलता' उन्नीसवीं शताब्दी की पटभूमि पर अंकित नारी-मुक्ति' का जीवंत चित्र है।

उपन्यास में गुणाभिराम का चरित्र पूरी तरह मानवीय और संस्कारवान व्यक्ति का है। यह कहा जा सकता है कि धीर, गंभीर एवं सभी प्रकार की संकीर्णताओं से मुक्त अपने विश्वास में अविचल गुणाभिराम को केंद्र में रखकर उपन्यास की घटनाएं आगे बढ़ी हैं, क्योंकि नगांव में विल्व-कुटीर नामक उनका घर उस समय नवीन विचारधारा का स्नायु केंद्र था। अंग्रेजों के आगमन के उपरांत कलकत्ता के विशिष्ट मध्यम वर्ग में बौद्धिक आलोड़न हुआ था और उसके फलस्वरूप हिन्दू-धर्म को संकीर्णताओं से मुक्त करने के लिए ब्राह्म-धर्म की स्थापना हुई थी। चूंकि असम में इस तरह का कोई आंदोलन नहीं हुआ था, इसलिए यहां के लोग अंधविश्वासी बने हुए थे और परंपरागत शास्त्रीय आचार एवं देशाचार के पंक में फंसकर मानसिक जड़ता को अपनाए हुए थे।

साधारण जनों की तो बात ही क्या, शिक्षित व्यक्ति भी नवीन विचारधारा को नहीं अपना सके थे। रोग होने पर चिकित्सा न करके किसी अपदेवता की पूजा करना, अल्पवयसी कन्या का विवाह कर देना— आदि परंपराओं को बरकरार रखने वाले एक रक्षणशील समाज के विरोध में गुणाभिराम ने ब्राह्मधर्म ग्रहण करके और ब्राह्मण-विधवा से विवाह करके स्वयं

नवीन युग का आह्वान किया था। उपदेश देने की अपेक्षा कार्य करना कहीं अच्छा है इसी कारण उन्होंने साहस-पूर्वक यह कार्य किया था। केवल यही नहीं, गुणाभिराम में और भी कई गुण थे। शिक्षा-दीक्षा देकर स्वर्ण को आत्मनिर्भर बनाना, गरीब असमिया युवक लक्षेश्वर को पढ़ने के लिए कलकत्ता भेजना, धर्मेश्वर की अंग्रेज विरोधी मानसिकता को प्रोत्साहित करना, साहित्य संस्कृति की उन्नति के लिए 'असमबन्धु' पत्रिका का प्रकाशन करना, गरीबी के कारण क्रिश्चियन बनी तारा जैसे लोगों के प्रति सहानुभूति रखना, बाल्यावस्था में विधवा हुई ब्राह्मण-कन्या लक्ष्मी के पुनर्विवाह में आर्शीवाद देना, निमंत्रण पाने पर गिरजाघर में जाना, पत्नी विष्णुप्रिया को उपयुक्त रूप से तैयार करके संसार में मुखर बनाना, असम तथा कलकत्ता के बंधुवर्ग में अपने व्यक्तित्व के बल पर सुप्रतिष्ठित होना आदि गुणों ने उनके चरित्र को गरिमा प्रदान की है। उनके चरित्र में दुर्बलताएं भी हैं—अपने पत्नी-पुत्र और जमाई को खोकर वे मानसिक रूप से विचलित हो गए थे और अपनी मृत्यु के पहले विधवा स्वर्ण से कहा था:

"नहीं माइसना! मेरे लिए अब एक ही घर है, वह है परमानन्द धाम। वहां तुम्हारी मां भी है और करुणा भी है। इस संसार में मेरी सारी आशा समाप्त हो गई है। बड़े शौक से मैंने अपनी गृहस्थी जमाई थी बेटी! पहले ब्रजसुन्दरी मुझे असमय में छोड़कर चली गई। उसके बाद तुम्हारी मां के साथ इतना सुख का संसार बसाया, वह भी छिन्न-भिन्न हो गया। सोचा था, सामाजिक अभिशाप को अनदेखा करके मैं अकेला ही देशाचार के विरुद्ध खड़ा हो सकूंगा, किंतु विधाता ने यह भी नहीं होने दिया।"

गुणाभिराम के स्वप्न भंग की यह वेदना अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि असम के लोगों ने उनकी पुकार नहीं सुनी। अकेले व्यक्ति के लिए संघर्ष से जूझना कठिन होता है। पारिवारिक क्षेत्र में भी उन्हें सुख नहीं मिला। गुणाभिराम के जीवन के इन्हीं दुःखमय स्वरों ने उपन्यास को आकर्षण प्रदान किया है।

विष्णुप्रिया की भूमिका गुणाभिराम की तरह विस्तृत नहीं है। ब्राह्मण की विधवा होकर भी पुनर्विवाह करके अपने समकालीन रक्षणशील समाज में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है उपन्यास में यह कहानी प्रच्छन्न होने पर भी यथेष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है। विष्णुप्रिया निपुणता से अपना संसार चला रही थी और गुणाभिराम की आदर्श-निष्ठा की छाया में रहकर सहयोग और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना उसमें पर्याप्त हो गई थी। लक्ष्मी के बाल-विवाह के समय निमंत्रित अतिथि के रूप में उनका जो अपमान हुआ, उसे उसने धैर्य से सहन किया। उसने इस रक्षणशील समाज और उसके कुसंस्कारों की कहानी को अच्छी तरह समझ लिया था। स्वर्ण के जीवन को सुंदर रूप देने में उसका भी परोक्ष अवदान है। तारा, लक्ष्मी आदि के प्रति उसकी आंतरिक सहानुभूति उसकी उन्नत मानसिकता का परिचायक है।

उपन्यास में स्वर्ण का आकर्षक चरित्र है। शैशवास्था से युवावस्था तक उसके भाव-जगत के परिवर्तन का चित्रण लेखिका ने सुंदरता से किया है। बचपन की संगिनी

तारा और लक्ष्मी के प्रति उसकी स्वाभाविक अनुरक्ति थी। अभिजात परिवार की कन्या होकर भी स्वर्ण; तारा और लक्ष्मी के जीवन में घटित हर्ष-विषाद में भाग लेती है। कलकत्ता के बेथुन कालेज में पढ़ते समय अपने स्वाभाविक गुणों के कारण उसने गुणाभिराम के बंधुवर्ग से आंतरिक स्नेह एवं सहयोग प्राप्त किया। अपनी मां और भाई करुणा की मृत्यु के बाद उसने गृहस्थी का दायित्व स्वेच्छा से अपनाया। नन्दकिशोर के साथ विवाह होने पर उसे दो बेटियां हुईं। इसके बाद की घटनाएं अत्यंत करुण हैं। पति नन्दकिशोर की आकस्मिक मृत्यु और गुणाभिराम का वियोग होने पर गृहस्थी का भारी बोझ स्वर्ण को वहन करना पड़ा। 'आसामबन्धु' पत्रिका के प्रकाशन में धर्मेश्वर के साथ स्वर्ण भी सहायता करती थी और स्वयं भी लेख आदि लिखती थी। धर्मेश्वर और लक्ष्मी के विवाह से वह खुश थी और उसने लक्ष्मी की साहसिकता को सराहा था। विल्वकुटीर में होने वाली ब्राह्म-प्रार्थना में स्वर्ण भी भाग लिया करती थी। अतः स्पष्ट है कि गुणाभिराम ने सभी क्षेत्रों में स्वर्ण को उपयुक्त शिक्षा देकर और सभी प्रकार के कुसंस्करों से मुक्त करके उसे उदारमना बनाया था। उम्र के साथ-साथ उसमें आत्मविश्वास जाग्रत हो गया था। गुणाभिराम की मृत्यु के बाद जब उनके सहयोगी स्वर्ण से बिना पूछे, कलकत्ता के घर का माल-असबाब ब्राह्म लड़कियों के छात्रावास में ले गए तो स्वर्ण को मन ही मन बहुत बुरा लगा और वह हठी हो गई। उसने कहा था, "मैं असहाय अथवा दुर्बल नहीं हूं"। इस तरह की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से स्वर्ण के स्वाभिमान और मानसिक साहस का परिचय मिलता है। कलकत्ता में तारा से मिलने पर स्वर्ण की उदासी बहुत कुछ दूर हो गई और तारा ने भी हेनरी से विवाह करके अपनी सुखी गृहस्थी बसा ली। प्रतिकूल परिस्थितियों में मिशनरी लोगों के बीच पूरे आत्मविश्वास के साथ मानव-सेवा में रत होने की कहानी स्वर्ण को आनंदित कर देती थी।

स्वर्ण के अनेक दायित्व थे। विलायत में भाई ज्ञान को पढ़ाने का खर्च देना, कमला और अपनी दोनों छोटी बेटियों की देखभाल करना आदि सारे काम वह दुःखों के बीच रह कर करती थी। तारा के सान्निध्य से उसकी सारी दुश्चिंताएं दूर हुईं। इसी बीच एक और घटना घटी, स्वर्ण की भेंट क्षीरोद नामक एक युवक से हुई। क्षीरोद के आविर्भाव ने उसे जीवन को पुनः नई दृष्टि से देखना सिखाया। अब तक जीवन में मृत्यु को निकट से देख-देख कर जिस स्वर्ण का मन टूट चुका था, एक वेदना पूर्ण अभिज्ञता ने जिसके जीवन को उदासी से भर दिया था, उस स्वर्ण को जीवन की वाणी सुनाई क्षीरोद ने। अंतिम दृश्य में क्षीरोद और स्वर्ण के अंतरंग आलाप में नवीन प्रेम का उद्भव दिखाई देता है। उस समय एक शताब्दी का अंत और दूसरी शताब्दी का प्रारंभ हो रहा था। विधवा स्वर्ण ने नवीन प्रेम के प्रकाश में आगंतुक शताब्दी के जन्म का स्वप्न देखा और कहा:

"सोचने में कितना अच्छा लगता है। देवता कहा करते थे कि बीसवीं शताब्दी में पृथ्वी पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाएगी। मनुष्य अपने सारे काम मशीनों की मदद से करेगा कलकत्ता से नगांव पहुंचने में दो तीन दिन से अधिक समय नहीं लगेगा और हमारे समाज

के सारे कुसंस्कार दूर हो जाएंगे" "क्या हम भी वे दिन देख पाएंगे"?

यहां शायद उद्योगीकरण तथा उसके प्रभाव से होने वाले सामाजिक परिवर्तन का संकेत दिया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी की मृत्यु-शय्या पर इस प्रकार का आशावादी विश्वास और भावी उन्नति की कल्पना स्वर्ण के लिए स्वाभाविक है क्योंकि मृत्यु की अपेक्षा जीवन को सुंदर बनाने के स्वप्न से उसका मन उद्वेलित है। 'क्या हम वे दिन देख पाएंगे'? इस प्रश्न से उसने संदेह प्रगट नहीं किया वरन् आगंतुक बीसवीं सदी की पटभूमि पर स्वदेश की एक उज्ज्वल मूर्ति की कल्पना करके वह आनंदित हो रही थी। उपन्यास का यह अंतिम दृश्य लेखिका की जीवन-दृष्टि की ओर संकेत करता है।

उपन्यास में और दो उल्लेखनीय नारी चरित्र हैं, वे हैं तारा और लक्ष्मी। स्वर्ण के बचपन की दो सहेलियां तारा और लक्ष्मी के कंटकाकीर्ण जीवन होने के बावजूद वे अपने साहस द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी विजय पाकर जीवन में प्रतिष्ठित हुईं। तारा क्रिस्तान धर्म ग्रहण कर मिशनरियों की सहायता से नर्स बनी; हेनरी से विवाह करके उसने सुखी गृहस्थी बसाई और अंत में मानव-सेवा करते हुए प्राणोत्सर्ग कर दिया। भूकंप से घर गिर जाने पर एक शिशु का उद्धार करने के लिए जाते समय दीवार ढह जाने के कारण वह स्वयं मृत्यु के मुंह में चली गई। इस चरम त्याग का निदर्शन तारा के चरित्र को उज्ज्वलता प्रदान करता है। ब्रनसन साहब को तारा देवतुल्य पुरुष मानती थी और वे थे भी ऐसे ही, किंतु उनके देश के लोग कृष्णवर्ण जनता एवं सभी भारतीयों को मन ही मन हेय मानते थे, तारा ने इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा था। तारा के चरित्र द्वारा गोरी और काली जातियों का प्रसंग भी प्रकाश में आया है। तारा के जीवन की यह विडंबना थी कि उसके पिता गरीब थे। भीषण बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गई। तारा की मां गोलापी ने बीमारी को अपदेवता के प्रति अपराध समझकर झाड़-फूंक किया पर उसका कुछ लाभ नहीं हुआ और पति सेन्दुरा परलोकवासी हो गया। ब्रनसन साहब ने गोलापी को यह बात समझाई थी कि झाड़-फूंक से रोग ठीक नहीं होता है। अंत में गोलापी क्रिस्तान धर्म स्वीकार करके जीवित रहने का उपाय पा गई। तारा के जन्म और मृत्यु का इतिहास बहुत करुण है।

लक्ष्मी का बाल विवाह हुआ था। उसके पिता पंचानन शर्मा यद्यपि समझदार आदमी थे फिर भी समाज की बंकिम दृष्टि के भय से उन्होंने अनिच्छा भाव से लक्ष्मी का विवाह अल्पावस्था में कर दिया। स्वामी के स्वर्गवास के बाद उसने पढ़ना-लिखना प्रारंभ किया और शिक्षिता होकर स्वदेश प्रेमी युवक धर्मेश्वर के साथ विवाह कर लिया। लक्ष्मी की इस उन्नति में गुणाभिराम और स्वर्ण का भी योगदान रहा है। कुसंस्कार से भरे समाज के उत्पीड़न की उपेक्षा कर, प्रकाश की खोज करने वाली नारी-सत्ता की छवि लक्ष्मी के चरित्र में प्रगट हुई है।

ब्रनसन साहब और धर्मेश्वर का चरित्र भी उल्लेखनीय है। ब्रनसन, मंच पर अधिक समय तक नहीं रहे हैं किंतु जितने समय प्रकट हुए हैं, मानव-सेवा में न्योछावर उनके जीवन का आभास हमेशा प्रकाश में आया है। धर्मेश्वर का आगमन कहानी के

मध्य में हुआ है। उच्च शिक्षा प्राप्त इस युवक ने अंत में अंग्रेज-विरोधी नीति अपनाई। खजाना-वृद्धि का प्रतिवाद करने के लिए उसने जनता को सुसंगठित किया। इन्हीं कारणों से बाद में उसे कारावास भोगना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में कांग्रेस का जन्म हुआ था और उस समय तक कांग्रेस ने अपने को आवेदन-निवेदन तक ही सीमित रखा था। किंतु धर्मेश्वर ने उस नीति का विरोध करके जनता को संग्राम करने के लिए सुगठित किया। धर्मेश्वर के चरित्र का यह एक अलग ही आयाम है। बाकी के जितने चरित्र हैं वे कुछ समय दृश्यमान होकर अदृश्य हो गए हैं। इनमें कलकत्ता ब्राह्म समाज के पुरुष और महिला प्रमुख हैं। रवीन्द्रनाथ भी थोड़े समय के लिए कथा में आए हैं। गुणाभिराम के मृतदेह को बाहर निकालते समय बेजबरुआ और हेमगोहांई आदि भी कुछ समय के लिए कथा में आए हैं। ये सारे चरित्र कथानक के केंद्र में न होकर परिधि में अवस्थित हैं।

उपन्यास में अतीत की उज्ज्वलता द्वारा वर्तमान को प्रकाश देकर भविष्य के मार्ग को सुगम बनाने का प्रयास है। उपन्यास के नारी-चरित्र, असमिया नारी को अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों का अतिक्रम कर स्वयं को समाज में प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा देते हैं। श्रीमती मिश्र ने भी परोक्ष रूप में इसी लक्ष्य की घोषणा की है। प्रांजलभाषा एवं वर्णन कौशल से युक्त 'स्वर्णलता' एक सुपाठ्य उपन्यास है।

— नलिनीधर भट्टाचार्य

# प्रथम अध्याय

कलंग नदी के तटवर्ती चौड़े मार्ग के दोनों ओर सोनारु और सेमल के वृक्ष शोभायमान थे। उस समय वैशाख मास था। वृक्षों पर लाल-पीले फूलों की अपूर्व शोभा थी। हवा के झोंकों से थिरकते फूलों के झुरमुट में छुपकर सखियती नामक चिड़िया रह-रहकर चहक रही थी। बीच-बीच में केतेकी अपनी संगिनी को बुला-बुलाकर नील गगन में विचरण कर रही थी। सुबह की स्निग्ध किरणों के प्रकाश में पक्षियों के पंख-झिलमिला उठते थे।

लंबी गली के विभाजित मार्ग पर थोड़ी दूर बढ़ने के बाद ही एक नया गिरजाघर मिलता था। उसके पार्श्व में ही अमेरिकन बेप्टिस्ट मिशन के दो बंगले थे। गिरजाघर के एक कमरे में सुबह सात बजे से नौ बजे तक मिस अरेल कीलार नाम की एक पादरी मेम, लड़कियों को लिखने और पढ़ने के साथ हस्तकला की शिक्षा भी देती थी। उसके बाद सिलाई का प्रशिक्षण होता था। पहले एक घंटे में असमिया, गणित और बाइबिल की शिक्षा दी जाती थी। छोटी-छोटी लड़कियां कपड़ों पर रफू और काज-बटन करना और बड़ी लड़कियां जैकेट, ब्लाउज वगैरह की सिलाई करना सीखती थीं। स्कूल की छुट्टी होने के पहले मिस कीलार आर्गन वाद्य यंत्र पर भजन गाती थी। उनके साथ-साथ दो बड़ी लड़कियां 'जगत मध्येजत लोकगीत' गातीं तथा छोटी लड़कियां केवल 'यीशू ख्रीष्टत-परित्राण' पंक्ति गाती थीं।

छुट्टी के बाद मिशन की सीमा से बाहर निकलते ही लड़कियां लगभग दो घंटों तक अपने को मुक्त अनुभव करतीं। हंसी मसखरी करती हुई, वे जब बाहर राह पर निकल आतीं तो जैसे प्रकृति का अंग बनकर उन्मुक्त हो जाती थीं। स्कूल में छात्राएं मात्र बीस ही होंगी। अधिकांश लड़कियां नगांव और आस-पास के गांवों में रहने वाले गरीब नवक्रिश्चियन परिवारों की थीं।

सन् 1876 के इसी वैशाख महीने में प्रातःकाल नौ-दस वर्ष की दो लड़कियां स्कूल से बाहर निकलकर फौजदारी पट्टी की तरफ जाने वाले रास्ते पर जा रही थीं। उनमें से एक हरे रंग का फूल कढ़ा मेखला और उसके ऊपर केलिको कपड़े पर सूते की कढ़ाई वाला जैकेट पहनी थी और दूसरी लड़की भी उसी तरह का जैकेट और पीले रंग का सूती मेखला पहनी हुई थी। उनके कपड़े स्कूल के सिले हुए लगते थे। 'बड़ा दिन' के उपहार में मेम लोगों ने उन्हें यह केलिको कपड़ा दिया था। दोनों लड़कियों में से एक मिशन स्कूल के शिक्षक की बेटी थी और दूसरी गोलापी की लड़की थी। गोलापी बेप्टिस्ट मिशन की

बाइबिल पढ़ी हुई स्त्री थी। वह मिस कीलार के साथ घर-घर जाकर बाइबिल पढ़कर सुनाया करती थी।

दोनों लड़कियां कुछ दूर स्थित एक सुंदर बंगले के सामने पहुंचने पर धीरे-धीरे चलने लगीं। यह बंगला साहबों के बंगले के सदृश था। इसमें सामने की तरफ एक विस्तृत बरामदा था और उसकी खिड़कियां असमिया घरों की खिड़कियों से कुछ बड़े आकार की थीं। दरवाजों और खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे। घर के सामने एक परम्परागत फुलवारी थी। उसके बीच में एक सघन-बेलवृक्ष था। लगता है इसी वृक्ष के कारण उस बंगले का नाम 'बिल्वकुटीर' पड़ गया था। बेल वृक्ष के नीचे झाड़ पोछकर स्वच्छ किए गए स्थान पर लगभग पांच-छह वर्ष की एक लड़की अपने से उम्र में थोड़ी बड़ी, परिचारिका की एक लड़की के साथ भात रांधने का खेल, खेल रही थी। छोटी लड़की की वेशभूषा साहबों की लड़की की भांति थी। वह गले और हाथ में लेस लगा हुआ फ्राक पहनी हुई थी। उसके केशों में लाल रिबन बंधा था। उसका रंग गोरा, नेत्र बड़े-बड़े और नाक नुकीली थी। उसकी दोनों भौंहें काली और तिरछी थीं। उसकी सुगठित मुखाकृति से उसके भावी रूप-लावण्य का परिचय मिलता था।

स्कूल से आती हुई दोनों लड़कियां 'बिल्व कुटीर' के सामने खड़ी होकर छोटी लड़की को बहुत देर तक देखती रहीं। नगांव के साधारण लोगों के लिए यह घर अनेक कारणों से कौतूहल का स्थान था। घर के मालिक गुणाभिराम बरुआ कुछ वर्षों पहले असिस्टेंट कमिश्नर के रूप में बदली होकर यहां आए थे। असमिया समाज में उस समय इस तरह के सरकारी उच्चाधिकारी व्यक्ति बहुत कम थे। लगभग बीस वर्ष पूर्व नगांव के ही आनंदराम ढेकियाल 'फूकन' उपसहायक के पद पर अवश्य रह चुके थे। किंतु, सबों को अपार दुख में डालते हुए असमय ही उनका निधन हो गया था। गुणाभिराम ने उनके शिशु पुत्र राधिकाराम को गोद में लेकर मुखाग्नि दिलवाई थी। उस हृदय विदारक घटना की स्मृति आज भी लोगों की आंखों को आंसुओं से भिगो देती है। इसलिए नगांव नगर के पुराने निवासियों के लिए गुणाभिराम अपरिचित नहीं थे। किंतु उनके विचार और क्रिया कलाप उस समय के असमवासियों के लिए नए थे। नगांव में बदली होकर आने के पहले ही उन्होंने ब्राह्म धर्म स्वीकार कर लिया था। उस समय अधिकांश हिंदुओं की दृष्टि में ब्राह्म-धर्म ग्रहण करने और क्रिश्चियन धर्म में दीक्षित होने में कोई अंतर नहीं माना जाता था। ब्राह्म-धर्म की उदारता, आडंबरहीनता आदि बातों का क्रिश्चियन-धर्मावलंबियों की रीति-नीति के साथ बहुत मेल खाता था। जब आनंदराम ढेकियाल के चाचा यज्ञराम खारधरियां 'फूकन' ने कलकत्ता जाकर राजाराममोहन के सान्निध्य में ब्राह्म-धर्म ग्रहण किया तो उनके बड़े भाई हलिराम ढेकियाल 'फूकन' अपने भाई को क्रिस्तान बनने से रोकने के लिए शीघ्र ही कलकत्ता पहुंचे। तभी से टियोक नगर निवासी अध्यापक का वंश ब्राह्मधर्म से सुपरिचित था और गुणाभिराम

कलकत्ता में अपने अध्ययन-काल से ही अनेक शुभाकांक्षी ब्राह्मण परिवारों के संपर्क में आए थे।

ब्राह्म धर्म ग्रहण करने से भी अधिक दुस्साहस और चंचलता पूर्ण एक और काम गुणाभिराम ने किया था। जिसके कारण असमिया नैष्ठिक ब्राह्मण समाज, उनके जैसे अन्य व्यक्ति को समाजच्युत कर देता। विधवा-विवाह के समर्थन में उन्होंने केवल 'रामनवमी' नाटक ही नहीं लिखा अपितु नगांव में बदली होकर आने के एक साल पहले उन्होंने विष्णुप्रिया देवी नाम की एक ब्राह्मण-विधवा से विवाह भी कर लिया था। किंतु, उनके व्यक्तित्व, पांडित्य और विशेषकर सरकारी पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें प्रकट रूप में समाजच्युत करने का साहस किसी को नहीं हुआ। फिर भी हाकिम बरुआ का व्यक्तिव और कार्यकलाप सबों की अलोचना के शिकार होने से बचे नहीं रह सके और साथ ही उनका परिवार भी सभी के लिए कौतूहल का पात्र बन गया था। इसलिए गुणाभिराम की छोटी बेटी स्वर्णलता का सामान्य लड़कियों की भांति भात रांधने के खेल का दृश्य भी दर्शनीय हो उठा था।

जब मिशन स्कूल की दोनों लड़कियां स्वर्णलता को देख रही थीं, उसी समय उसने भी सिर घुमाकर उनकी तरफ देखा। उसके बाद वह धीरे-धीरे अपना खेल बंद करके खड़ी हो गई। इन दोनों लड़कियों को स्वर्णलता अपने घर के सामने से निकलकर स्कूल आते जाते समय प्रायः देखा करती थी। उसे उनके विषय में जानने की उत्सुकता होती थी किंतु स्वयं उनके पास जाकर बातचीत करने में वह संकोच का अनुभव करती थी। दोनों लड़कियां भी कुछ समय तक स्वर्ण को देखती रहतीं और फिर धीरे धीरे वहां से चली जातीं। उनके, आंखों से ओझल होते ही स्वर्णलता थोड़ी देर कुछ सोचने के बाद दौड़कर घर के भीतर चली जाती।

## 2

'बिल्व कुटीर' शब्द मन में किसी ऋषि मुनि के आश्रम की छवि अंकित कर देता है, किंतु वास्तव में उस घर की निर्माण-कला से उस युग के गोरे शासकों के निर्माण-कौशल के व्यावहारिक ज्ञान का परिचय मिलता था। अंग्रेज जब असम में आए थे तो वर्षा और बाढ़ के कारण प्रायः वर्ष के अधिकांश समय में भू अंचल जल मग्न रहता था। तभी उन्होंने यह तय किया कि यहां बसने के लिए ब्रह्मदेश के घरों की तरह ऊंचे-ऊंचे खंभों पर बनाया गया चांघर उपयुक्त रहेगा। असम के ग्रामवासी वर्षाकाल में इतना कष्ट क्यों उठाते हैं? वे ऊंचा घर क्यों नहीं बनाते और मिसिंग लोगों की तरह चांघर क्यों नहीं रखते। ये सब बातें सोचकर विदेशियों को बहुत आश्चर्य होता था। 'अरुणोदय' पत्रिका में एक अमेरिकन पादरी ने लिखा था कि दूसरे देशों के लोग ऊंचा घर बनाते हैं, यदि असमवासी भी उसी

प्रकार तीन-चार हाथ ऊंचे घर बनाए तो यह उनके लिए अत्यंत उपयोगी होगा और उन्हें ज्वर आदि रोग भी कम होंगे। जाति-कुल की दृष्टि से वे रसोई बनाने के लिए एक रसोई-घर नीचे धरती पर बना सकते हैं किंतु, रहने, सोने और सामान रखने के लिए चांघर ही उनके लिए उत्तम होगा।

गुणाभिराम बाल्य काल से ही चांघर की उपयोगिता को जानते थे। उनके अभिभावक और बाद में उनके साढ़ू आनंदराम ढेकियाल 'फूकन' नगांव में रहते समय पहले साहब के बंगले में और बाद में अपनी सुविधानुसार निर्मित्त चांघर में रहते थे। गुणाभिराम भी उनके साथ कई वर्षों तक ऐसे बंगले में रहे थे। पादरियों और कमिश्नर जेनकिनस् साहब के साथ फूकन परिवार का संपर्क होने के कारण बचपन से ही उन पर विदेशी रहन-सहन, रीति-नीति और विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए बिल्व कुटीर में चांघर और असमिया कुटीर का सुंदर सम्मिश्रण हुआ था। चांघर में सामने बैठक खाना, शयनकक्ष और अध्ययन कक्ष था और पीछे की तरफ बरामदे के दोनों ओर रसोई घर, गोशाला, मंदिर और नौकर के रहने का कमरा आदि था। बरसात के दिनों में चांघर से रसोई घर में आने जाने में बड़ी असुविधा होती थी किंतु निष्ठा की दृष्टि से बरुआ और उनके परिवार के सभी लोग इन असुविधाओं को सहन कर लेते थे। बाद में चांघर में रसोई घर तक के रास्ते को ऊंचा बनाकर, उसके ऊपर फूस की छाजनी कर दी गई थी।

स्वर्णलता बेलवृक्ष के नीचे से अपनी मां को खोजती हुई आई और पीछे के बरामदे में ही उसे मां मिल गई। यद्यपि वह बाहर से दौड़ती हुई आई थी, किंतु बंगले के भीतर पैर रखते ही वह यथासंभव धीरे धीरे चलने लगी। बंगले का फर्श काठ का था इसलिए उस पर जोर देकर चलने से आवाज होती थी। स्वर्ण को मां ने सीख दी थी कि वह कभी बंगले के भीतर धप्-धप् करके न चले। पिता के अध्ययन में इससे बाधा पड़ती है और पढ़ते समय किसी को बाधा देना बहुत बुरी बात है। इसी कारण इस विषय में घर के सभी सदस्य सावधान रहते थे।

जब बालिका स्वर्णलता, बैठकखाना पार करके भीतर के बरामदे में पहुंची तो उसके पिता गुणाभिराम वहां नहीं थे। कचहरी जाने का समय हो जाने के कारण वे कमरे में भोजन करने के लिए बैठे थे। रसोई घर के तीन खंड थे—एक भोजन कक्ष, दूसरा चाय, जलपान बनाने वाला कक्ष और तीसरा भात रांधने वाला कक्ष। रसोई तैयार करने के लिए एक ब्राह्मण रसोइया था। क्योंकि बरुआ के घर में खाने वाले कई लोग थे। उनके संबंधियों के अतिरिक्त अतिथिगण भी प्रायः आते रहते थे।

विष्णुप्रिया देवी जब तब कुछ न कुछ विशेष व्यंजन बनाती थीं और परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की थाली में अपने हाथों से भोजन परोसती थीं। आज भी वह अपने पति की थाली में भात परोस कर पास में बैठी थी। इसी समय स्वर्ण मां से गले लगकर बोली "मां, मैं

भी स्कूल जाऊंगी। क्रिश्चियन लड़कियों को स्कूल जाते देखकर कितना अच्छा लगता है। क्या ! हम भी क्रिश्चियन नहीं हो सकते?"

विष्णुप्रिया अवाक् होकर कन्या का मुंह देखने लगी और धीरे से उसे धमकाती हुई बोली "छिः, माइसना ! ऐसा नहीं बोला करते।" किंतु गुणाभिराम बरुआ अकस्मात् एक स्तंभित व्यक्ति की भांति अपने हाथ का ग्रास नीचे रखकर, अपनी पुत्री की ओर देखते हुए कोमल स्वर में बोले, "बेटी ! क्रिश्चियन न होकर भी तुम लिख पढ़ सकोगी। कल से ही तुम्हारा विद्यारंभ हो जाएगा।"

उसी दिन शाम को गुणाभिराम बरुआ के कचहरी से लौटकर चाय जलपान करने के बाद, उनके विश्राम करते समय विष्णुप्रिया ने उनसे पूछा, "माइसना के मिशनरी स्कूल में पढ़ाने के विषय में क्या कुछ सोचा है? आपके जाने के बाद से उसने प्रश्न पूछ-पूछ कर मुझे परेशान कर दिया है।"

बरुआ ने कुछ देर सोचकर कहा, "क्रिश्चियन लोगों के पास स्वर्ण को पढ़ने भेजने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। शिक्षा-दीक्षा के प्रति मानव को उदार होना चाहिए। मिशनरी लोग पाश्चात्य नियम से ही शिक्षा देते हैं। उस शिक्षा द्वारा भी हमारा बहुत हित हो सकता है। अब तक हमारे असम में स्त्री शिक्षा का अभाव है। क्रिश्चियनों ने इस दिशा में हमारा ध्यान आकर्षित किया है। यह हमारे लिए बड़े आनंद का विषय है।"

इस विषय में स्वामी की बातों से विष्णुप्रिया पूरी तरह सहमत नहीं हो सकी। सरकारी कामों और पठन-पाठन में व्यस्त रहने के कारण जो समस्याएं गुणाभिराम को स्पर्श नहीं करती थीं, विष्णुप्रिया को पग-पग पर उनका सामना करना पड़ता था। वह अपनी समस्याओं का समाधान अधिकांशतः स्वयं करने का प्रयास करती थी। पति के कार्यों में व्याघात उत्पन्न करने वाली किसी प्रकार की परिस्थिति का सृजन करना उसका अभीष्ट न था। किंतु जिस प्रकार असीम साहस और दृढ़ता के साथ सामाजिक अपवादों और कुसंस्कारों के विरुद्ध वह संघर्ष करती आई है, उसकी संतान, वैसी परिस्थितियों से अपनी रक्षा कर सकें, यही उसकी अभिलाषा थी। स्वर्णलता का भोला मुख देखकर विष्णुप्रिया हृदय से यह प्रार्थना करती, "हे प्रभु, जीवन में उसे कोई दुःख न हो।" इस प्रार्थना में सामाजिक संस्कारों और सैकड़ों वर्ष पुराने जटिल बंधनों का प्रभाव था जो सभी समाज सुधारकों को रह-रहकर विचलित करता रहता है। इसके कुछ कारण भी हैं। जब सारा समाज एक संकीर्ण मार्ग पर चलता रहता है तो उस मार्ग को तजकर यदि एक दो व्यक्ति उदार-मार्ग पर चलते हैं तो उनके लिए जीवन-यात्रा अत्यंत कठिन हो जाती है। ऐसा देखने में आया है कि दृढ़ मनोबल वाले, सहयात्रियों के अभाव में नवीन मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को पुनः सामाजिक संकीर्णता के मार्ग पर वापस आ जाना पड़ता है। गुणाभिराम बरुआ के हृदय में अटूट दृढ़ता थी क्योंकि वे जिस वातावरण में रह रहे थे उसमें उन्हें सहयोगियों का अभाव

नहीं था। नगांव जैसे अंचल में भी अनेक ऐसे देशी विदेशी लोगों से उनका संपर्क था, जो विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक संकीर्णता को मिटाने में समर्थ हुए थे।

किंतु, विष्णुप्रिया की समस्याएं अलग तरह की थीं। गुणाभिराम से विवाह होने के पूर्व जिस समाज से उसका घनिष्ठ परिचय था, विवाहोपरांत उस समाज ने उसे सहज रूप में स्वीकार नहीं किया था। अभी भी वह मानसिक रूप में अपने उस समाज से अपने को अलग नहीं कर पाई थी। असमिया नैष्ठिक ब्राह्मण समाज की रीति-नीतियों एवं अंधविश्वासों से उसे अभी मुक्ति नहीं मिली थी। वह अपने को अकेला अनुभव करती थी। गुणाभिराम बरुआ के अलावा उसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला था जो उसके खोए हुए आत्मविश्वास को जाग्रत कर सके। इसलिए रह रहकर वह अपने को बहुत असहाय और अपराधी समझने लगती थी। उस समय वह एकाग्र मन से ईश्वर से यही प्रार्थना करती थी कि वह उसके स्वामी और संतान की रक्षा करे। उसकी चार संतानें जीवित थीं। पहले विवाह से उसे दो कन्याएं थीं—कालीप्रिया और दमयंती। दोनों का विवाह अल्पवयस में ही हो गया था। दूसरे विवाह से उसे दो संतानें थीं—स्वर्णलता और करुणाभिराम। सत्याभिराम नाम का एक पुत्र बाल्यकाल में ही चल बसा था।

स्त्री-शिक्षा के विषय में गुणाभिराम के दिए मंतव्य के उत्तर में विष्णुप्रिया ने कहा, "सुना है कि आजकल कलकत्ता के अनेक शिक्षित हिंदू भी स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूक हो गए हैं। हमारी स्वर्ण, मिशनरी स्कूल में न जाकर स्वदेश वासियों द्वारा स्थापित स्कूल में नहीं पढ़ सकती क्या?"

कलकत्ता में स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिए महामना ईश्वर चंद्र विद्यासागर के नेतृत्व में अनेक ज्ञानी-गुणी लोगों के द्वारा किए गए कामकाज के प्रति सजग रहने वालों में गुणाभिराम से बढ़कर उस समय असम में कितने लोग थे? अपनी किशोरावस्था से ही उन्होंने ईश्वर चंद्र को अपना परमाराध्य गुरु मान लिया था और वे उनके सभी कार्यों से अत्याधिक प्रभावित थे। उन्होंने कलकत्ता के अपने अध्ययन काल में ही 'अरुणोदय' पत्रिका को पत्र लिखा था कि बालिकाओं को भी बालकों के साथ समान रूप से शिक्षा दिया जाना उचित है। भारत के अन्य भागों की तुलना में असमवासी इस दिशा में अभी बहुत पीछे हैं। 'अरुणोदय' के सभी पाठकों को गुणाभिराम ने यह समझाने की चेष्टा की थी कि लड़कियों को अशिक्षित रखने की कुप्रथा यदि शीघ्र दूर न की गई तो असम की उन्नति कदापि नहीं हो सकती।

किंतु, यह पत्र लिखने के बीस वर्ष के बाद भी गुणाभिराम ने लक्ष्य किया कि स्त्री-शिक्षा की उन्नति के लिए असमवासी विशेष प्रयत्नशील नहीं हैं। इसीलिए अपनी कन्या को अच्छी शिक्षा दिलाने के लिए वह और विष्णुप्रिया दोनों अत्यधिक चिंतित थे। पादरी लोगों द्वारा संस्थापित मिशनरी स्कूल के सिवा लड़कियों के लिए कोई स्कूल नगांव में उस समय नहीं

था। पादरी लोगों के साथ बातचीत करने के बाद गुणाभिराम ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि मिशनरी शिक्षा-नीति का प्रधान लक्ष्य धर्म-प्रचार है। सुदूर अमेरिका से इतना कष्ट सहकर भारत आने और दुर्गम अंचलों में रहकर पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार करने के पीछे उनका मूल उद्देश्य है कि क्रिश्चियन धर्म-प्रसार द्वारा अविश्वासी जनमानस को एक मात्र शुद्ध मार्ग की ओर आकृष्ट किया जाए। इसीलिए शिक्षा के प्रति उदारमना होने पर भी धर्म-प्रचार के उद्देश्य से कार्य करने वाली संस्था के हाथों अल्प वयसी कन्या की शिक्षा का भार सौंपने में गुणाभिराम को तनिक दुविधा हो रही थी। पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से आधुनिक जगत का परिचय पाने और संकीर्ण मनोभावों का परित्याग करके जीवन-जगत के प्रति एक उदार दृष्टिकोण अपनाने में उनकी गहरी आस्था थी। किंतु, इसके लिए हिंदू-धर्म को त्यागने का कोई प्रयोजन न था। उनके विचारों में ब्राह्मधर्म भी हिंदू धर्म का ही एक उदार रूप था। इसमें प्राचीन वैदिक धर्म और आधुनिक विचारधाराओं का समन्वय है। इसीलिए गुणाभिराम अपनी संतानों को पाश्चात्य शिक्षा एवं वैदिक धर्म-परंपरा का सम्यक् ज्ञान कराना चाहते थे। किंतु समस्या थी कि नगांव जैसी जगह में ऐसी शिक्षा की समुचित सुविधा क्या उन्हें मिल पाएगी?

सब कुछ सोचने-विचारने के उपरांत गुणाभिराम ने अंत में यही निर्णय किया कि स्वर्ण को पहले एक गृह शिक्षक, प्राथमिक शिक्षा दे। बाद में भावी योजना के बारे में धीरे-धीरे विचार किया जाए।

## 3

उस समय नगांव की अदालत में कानून की परीक्षा उत्तीर्ण किए बिना, वकालत करने वाले कई असमिया और बंगाली सज्जन थे। उन्हें सरकार ने पुराने नियमानुसार वकालत करने की अनुमति दे दी थी। उन्हें पक्का वकील नहीं माना जाता था। पंचानन शर्मा उन्हीं में से एक थे। यद्यपि वे अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं बोल पाते थे किंतु, असमिया, बंगला और संस्कृत तीनों भाषाएं लिखना और पढ़ना जानते थे। गुणाभिराम बरुआ के 'असम बुरंजी' लिखते समय शर्मा प्रायः आकर पुस्तक के पन्नों की नकल करने में उनकी सहायता कर देते थे। इसीलिए बरुआ के अध्ययन-कक्ष में प्रतिदिन संध्या-समय वे दिखाई पड़ते थे। बरुआ के पांडित्य का वे आदर करते थे। विष्णुप्रिया के प्रति भी उनका आदर-भाव था। किंतु, तांबूल को छोड़कर बरुआ के घर की कोई चीज वे सेवन नहीं करते थे। शर्मा की यह बात विष्णुप्रिया और बरुआ को बुरी लगती थी। इसका रंचमात्र भी आभास वे दोनों नहीं होने देते थे। क्योंकि उनके अपने निकट संबंधी भी उन्हें अब तक सामाजिक रूप से नहीं अपना पाए थे। इसीलिए नवपरिचित जन के मन में यदि अपने जातिच्युत होने

का भय था तो यह उनके लिए आश्चर्य की बात नहीं थी।

जो भी हो, गुणाभिराम ने पंचानन शर्मा को स्वर्णलता का गृह शिक्षक बनाने का निश्चय कर लिया। जिस दिन बेटी की शिक्षा के विषय में विष्णुप्रिया के साथ उनकी चर्चा हुई थी, उसी दिन संध्या को उपासना के बाद बैठक खाने में बैठकर गुणाभिराम ने शर्मा से अपनी बात कही। यह सुनकर शर्मा को पहले अपार विस्मय हुआ। लड़की को पढ़ाने के लिए गृह शिक्षक? क्या बेटी को क्रिश्चियन स्कूल में मास्टरनी बनाना है? रामायण, महाभारत पढ़ने के लिए जितनी शिक्षा आवश्यक है, वह मां-बाप ही अपनी लड़की को घर पर दे सकते हैं। आज नहीं तो कल, लड़की को तो विवाह के बाद पराए घर भेजना ही होगा, उसे पाक-कला, तांत-सूत बुनना आदि गृहकार्य सिखाने चाहिए। व्यर्थ ही उसे गणित-व्याकरण आदि सिखाकर समय नष्ट करने को शर्मा नितांत अनावश्यक मानते थे। उनकी अपनी भी एक पुत्री है—लक्ष्मी प्रिया। वह स्वर्ण से आयु में मात्र दो वर्ष बड़ी है, उसकी शिक्षा के विषय में शर्मा ने कभी कल्पना तक न की थी। हां, आस-पास के लोगों से उसने असमिया अक्षर पहचानना अवश्य सीख लिया है। प्रातःकाल और संध्या को वह अपनी मां और दादी से भजन, देवी स्तुति और विवाह के लोक गीत गाना सीखती है। 'लक्ष्मी पांचाली' के कई पृष्ठ भी उसे मुखस्थ हैं। रसोई घर के काम में, कपड़े बुनने और छोटे भाई-बहनों को नहलाने-धुलाने आदि कामों में लक्ष्मी सदा व्यस्त रहती है। यदि वह पढ़ना-लिखना करने लगेगी तो फिर गृहकार्य कैसे पूरे होंगे?

अपने मन की इन सब बातों को पंचानन शर्मा ने गुणाभिराम से नहीं कहा। गुणाभिराम के स्त्री-शिक्षा के प्रति उदार विचारों से वे अच्छी तरह परिचित थे फिर भी, आश्चर्य व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "अपने भद्र घरानों में लड़की को पढ़ाने की बात कभी नहीं सुनी गई। अपनी उदारता के कारण ही आप एक नवीन कार्य का श्री गणेश करना चाहते हैं। इसके प्रत्युत्तर में गुणाभिराम ने जो कुछ कहा पहले भी वे सब बातें उन्होंने अनेक बार कही थीं। पत्र-पत्रिकाओं में भी उन्होंने लिखा था, ''शर्मा ! मैं। कोई नया काम करना नहीं चाहता, बालिकाओं के लिए बालकों के समान शिक्षा-दान करने का विधान शास्त्रों में भी है। प्राचीन समय में लड़कों की भांति लड़कियों का भी उपनयन संस्कार कराकर उन्हें गुरु-गृह में विद्यार्जन के लिए भेजा जाता था। बाल-विवाह की प्रथा प्रारंभ होने के बाद से ही यह नियम समाप्त हो गया। यदि परमपिता की यह इच्छा न होती कि स्त्रियां भी पुरुषों के समान ज्ञानी बनें तो वे उन्हें विचार-बुद्धि एवं शक्ति प्रदान न करके पशुवत ही बनाते। किंतु, प्रगतिशील देशों की महिलाएं पढ़-लिखकर सुंदर-सुंदर पुस्तकों की रचना कर रही हैं। हमारी महिलाएं भी यदि इसी प्रकार ज्ञानार्जन करें तो यह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए कल्याणकारी होगा।"

हाकिम बरुआ के मुख से इस तरह की बातें पंचानन शर्मा ने पहले भी सुनी थीं किंतु,

शर्मा को यह विश्वास नहीं था कि मात्र सत्यकथन से ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। उन्हें लगता था कि बरुआ महाशय की सारी बातें पृथक ही होती हैं जो असमिया-समाज के अनुकूल नहीं है। बरुआ अपनी बात पर दृढ़ रहेंगे, ऐसा समझकर शर्मा ने उनसे तर्क-वितर्क नहीं किया। फिर भी वे भद्रता से बोले—आपके समान ज्ञानी जन द्वारा मार्ग-दर्शन कराने पर दूसरे लोग भी वही मार्ग अपनाएंगे, मैं कल से ही स्वर्ण को पढ़ाना आरंभ कर दूंगा।

## 4

स्वर्णलता के लिए पिता के साथ सुबह की सैर का समय सर्वाधिक आनंद का समय था। गुणाभिराम सुबह की सैर में बहुत नियमित थे। जिस दिन वर्षा नहीं होती थी वे नदी-किनारे घूमने जाते थे और रास्ते भर स्वर्ण को अनेक बातें समझाते रहते थे। किस तरह वृक्ष के पत्ते झर जाते हैं; किस पक्षी की बोली कैसी होती है; कलंग नदी लोहित से निकलकर बहती हुई पुनः लोहित में ही समाविष्ट हो जाती है आदि आदि बातें सुनाते रहते थे। स्वर्ण कुछ बातें समझ पाती थी और कुछ नहीं। किंतु न समझने पर भी उसे पिता के साथ बहुत सारी बातें करने में अच्छा लगता था। पिता के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा थी। 'बिल्व कुटीर' में आने वाले बड़े-बड़े ज्ञानी-गुनी जन के साथ अपने पिता को वार्तालाप करते देखकर कोमलवयसी स्वर्ण के मन में गहरा विश्वास होता था कि उसके पिता सबसे अधिक ज्ञानी हैं और उसके मन में उद्भूत अनेक प्रश्नों का सटीक उत्तर वे ही दे सकते हैं।

एक दिन प्रातः साहबों के कई सुंदर बंगलों के सामने से गुजरते समय स्वर्ण ने अपने पिता से हठात पूछा "देउता ! साहब लोग गिरजा में जाते हैं न?"

गुणाभिराम ने अन्यमनस्क भाव से सिर हिलाया। वे उस समय विचारमग्न थे। इसीलिए बहुत समय तक बिना बातचीत किए चल रहे थे किंतु स्वर्ण के दूसरे प्रश्न ने गुणाभिराम को सजग कर दिया, "गिरजा में जाने से जात चली जाती है क्या देउता? " गुणाभिराम ने आश्चर्य से बेटी के मुख की ओर देखकर पूछा, "तुम्हें ये सब बातें कौन सिखाता है, माइसना?"

"कल पंचानन चाचा ने कहा था,'' स्वर्ण ने डरते-डरते कहा। किंतु बाल-सुलभ जिज्ञासा दबा न पाने के कारण उसने फिर पूछा ''देउता ! जात कैसे जाती है?"

गुणाभिराम कुछ देर चुप रहे। उन्हें पंचानन शर्मा पर मन ही मन क्रोध आया। दो दिनों में ही उन्होंने अल्पवयस्का कन्या को इतनी बुरी बात सिखा दीं। उसके बाद उन्हें अनुभव हुआ कि पुराने खयालात के लोग जाति-पांति के बात-विचारों को देशाचार समझते हैं, इसलिए उन पर क्रोध करना व्यर्थ है। हां, वे अपनी संतान को इन सब कुसंस्कारों से

दूर रखना चाहते थे। वे उन्हें बुरी बातों से अलग रखते थे; वे उन्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान कराने का उपाय करते थे। इसलिए उन्होंने स्वर्ण के प्रश्न का उत्तर गंभीरता से देना चाहा।

"जाति-पांति, यह सब हमारे देश का कुसंस्कार है। मनुष्य का स्वभाव ही असली जाति है। सत्स्वभावी की जाति ऊंची होती है। वही नीच जाति का है जो हमेशा बुरा काम करता है। गिरजा में जाने से किसी की जात कैसे जाएगी? गिरजा में भगवान की ही उपासना होती है। उपासना करना कोई बुरा काम है क्या? ईश्वर की उपासना किस धर्म में नहीं होती? उपासना से बढ़कर पवित्र काम कुछ नहीं है" अपनी बात कहने के बाद गुणाभिराम ने बेटी की तरफ देखा कि उसकी सुंदर मुखाकृति पर एक असहाय भाव अंकित थे। गुणाभिराम ने समझ लिया कि स्वर्ण अभी बहुत नादान है, वह इन गूढ़ बातों को क्या समझेगी? वे बड़े प्यार से बोले, "अगले रविवार को तुम्हें गिरजा में उपासना दिखाने ले जाऊंगा, ठीक है?" स्वर्ण के होठों पर आनंद की मुस्कान झलकने लगी। उसने समझ लिया कि पिता को क्रोध नहीं आया है।

रविवार को सुबह, नए रूप में सजाए गए गिरजाघर के सामने एक उत्सव जैसा गंभीर परिवेश था। नगांव और आसपास के सभी क्रिश्चियन परिवार के लोग उस दिन अत्यंत साफ-सुथरी पोशाक पहने वहां उपस्थित थे। उनमें से अधिकांश साधारण आदमी थे। उनके चेहरे को देखकर लगता था कि उनमें से ज्यादातर लोग मिकिर थे। उनमें एक दो बंगाली और असमिया परिवार के भी थे। प्रत्येक व्यक्ति जूते अथवा सैंडिल पहने हुआ था। लगता था मानो उन्हें रविवार को छोड़कर अन्य दिन जूते पहनने का अभ्यास न हो क्योंकि वे बड़ी सतर्कता से कदम बढ़ा रहे थे। पुरुषवर्ग ने हाफपैंट अथवा पतलून और कमीज पहन रखी थी। स्त्रियां साड़ी अथवा सूती रिहा-मेखला पहनी थीं। उनके सिर ओढ़नी से कुछ ढंके हुए थे।

गुणाभिराम बरुआ और स्वर्ण जब गिरजा घर पहुंचे तो उपासना आरंभ होने का समय हो गया था। वहां अपने दो एक परिचितों को देखकर उनकी स्वीकृति लेते हुए वे सामने आसन पर बैठ गए। स्वर्ण एक सुंदर फ्राक पहनकर गई थी। सिर पर चिकन का स्कार्फ था। गुणाभिराम कुर्ता-पायजामा और सिर पर काले मखमल की टोपी पहने थे। उनके बैठते ही तुरंत उपासना प्रारंभ हो गई। बेदी के सामने खड़े होकर उपासना आरंभ करने वाले का नाम था सोनाराम अर्थात् चार्ल्स सोनाराम। स्वर्ण ने उन्हें इससे पहले भी देखा था किंतु गिरजा घर में इतने सारे साहबों और मेमों की उपस्थिति में सोनाराम ही क्यों उपासना में अगुआ थे, यह बात स्वर्ण नहीं समझ पाई। सोनाराम बाइबिल की पुस्तक से जो कुछ पढ़ रहे थे, वह सब असमिया में भी लिखा गया था। तब क्रिश्चियन धर्म सिर्फ साहबों का धर्म किस तरह हुआ, स्वर्ण को कुछ समझ में नहीं आया। सोनाराम की कही बातों को

स्वर्ण ने विशेष ध्यान से नहीं सुना था। किंतु, एक साधारण निरीह व्यक्ति इतने सारे बड़े-बड़े लोगों के सामने एक बार भी रुके बिना किस तरह से सारी बातें पढ़ता गया, उसे देखकर स्वर्ण आश्चर्यचकित थी।

सोनाराम का कथन समाप्त होते ही गिरजाघर के एक कोने में रखे एक बड़े ऑर्गन के सामने बैठकर मिस कीलार ने गंभीर, मधुर स्वर बजाना शुरू कर दिया। स्वर्ण मिस कीलार को पहचानती थी। वे विष्णुप्रिया के साथ बातचीत करने के लिए एक दो बार 'बिल्व कुटीर' में आई थीं। ऑर्गन के स्वर में स्वर मिलाकर कुछ लड़के-लड़कियों के एक समुदाय ने धर्म संगीत गाना शुरू कर दिया। स्वर्ण ने उनके बीच एक लड़की को देखा जिसे उसने पहले भी देखा था वह बिल्व कुटीर के सामने से निकलकर स्कूल आती जाती थी और यह भी जानती थी कि वह गोलापी की पुत्री है। उसका असली नाम उसे ज्ञात न था। गाना गाते समय स्वर्ण उसका चेहरा मंत्रमुग्ध होकर निहारती रही। हरे रंग का सूती मेखला पहनी हुई वह साधारण लड़की आज स्वर्ण की नजरों में महत्वपूर्ण लग रही थी।

उपासना के पश्चात जब सभी लोग गिरजाघर से बाहर निकल आए तब स्वर्ण उत्सुकता से उस भीड़ में गोलापी की लड़की को ढूंढती रही। इसी बीच मिस कीलार और दो पादरी गुणाभिराम के साथ वार्तालाप करते हुए आगे बढ़ रहे थे। भीड़ में से निकलते हुए स्वर्ण जिसे ढूंढ रही थी, वह उसी की तरफ हंसती हुई आगे बढ़कर आई।

उसने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"स्वर्णलता, तुम्हारा?"

"तारा"

स्वर्ण ने कहा, "तुम इतना अच्छा गा सकती हो।" तारा की आंखों और मुखाकृति पर संतोष की एक मुस्कान बिखर गई। उम्र में अपने से छोटी होने पर भी एक हाकिम की बेटी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर तारा को अपार खुशी हुई। प्रत्युत्तर में स्वर्ण को कुछ अच्छी बात कहने के लिए उसका बहुत मन हुआ। बालसुलभ स्वाभाविक स्फूर्ति से वह कह उठी, "तुम बहुत सुंदर हो"। स्वर्ण का गुलाबी चेहरा लाज से लाल हो गया। इधर-उधर देखकर आगे जाते हुए अपने पिता के पास वह दौड़कर चली गई।

तभी तारा को उसके साथ की लड़कियों ने घेर लिया। हाकिम की बेटी के साथ वह क्या बात कर रही थी, सबको यह जानने की उत्सुकता हुई। बिल्व कुटीर के साहबी कायदों और स्नेह के बीच पली कन्या को उन्होंने दूर से ही देखा था। किसी को उसके साथ बातचीत करने का साहस नहीं हुआ था। किंतु तारा की बात अलग ही है। वह किसी बात में पीछे नहीं रहना चाहती, उसे जो करना होता है, करती ही है। इसीलिए सभी पादरी और मेम उसे अच्छा मानते थे। तारा की अनुपस्थिति में उनका कुछ काम चलता भी नहीं था।

# 5

तारा का पिता सेंदुरा उसके बचपन में चल बसा था। वह कमिश्नर साहब के घोड़ों का साइस था और बंगले के एक तरफ कोने में एक छोटे से मकान में अपनी पत्नी गोलापी के साथ रहता था। असल में गोलापी के साथ विवाह होने पर गांव वालों ने उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया था। इससे नाराज होकर वह नगांव में भागकर आ गया था और साहब के बंगले पर काम में लग गया था। वह कलिता जाति का लड़का था और गोलापी मछुआरे संप्रदाय की लड़की।

सेंदुरा बहुत हंसमुख था। साहब की बग्घी के पीछे-पीछे एक मील दौड़ने पर भी उसका मुख मलिन नहीं होता था। इसीलिए साहब उसे प्यार भी करते थे। जब वह हैजे की बीमारी से रुग्ण होकर बिस्तर पर पड़ा था तो साहब ने स्वयं उसके पास जाकर गोलापी को बार्ली का डिब्बा दिया था और वह बार्ली कैसे बनाए, यह भी समझा दिया था। उन्होंने सरकारी डाक्टर को सेंदुरा के पास भेजा था, पर सारी चेष्टाएं विफल हो गई थीं। महामारी संहार मूर्ति का रूप धाारण कर पशुओं और मानवों के प्राण ले रही थी। नगांव की जनता ने 'बूढ़ा डांगरिया' को रोग के कोप से छुटकारा दिलाने के लिए मिन्नतें कीं और दिन-रात नाम-कीर्तन, पूजा-पाठ करना शुरू किया। किंतु, साहब ने गोलापी को सचेत कर दिया था कि अगर वह भी नाम कीर्तन में सहयोग देने जाएगी तो सरकारी डाक्टर, सेंदुरा का इलाज नहीं करेगा। इसीलिए उसने पहले इन सब कामों में सहयोग नहीं दिया किंतु, जब उसने देखा कि डाक्टर की दवा कुछ काम नहीं कर रही है तो वह साहब को न बताकर, दो रुपए लेकर और अपनी तीन महीने की बच्ची को छाती से बांधकर चुपचाप नजदीक के गांव के बरसवाह में आर्शीवाद लेने चली गई। रात को कीर्तन समाप्त होने पर सभी ने केले के पत्ते की नाव पर मूंगदाल, चावल, गुड़, घी आदि अनेक तरह की चीजें रखीं और कलंग नदी में चढ़ा दीं। गोलापी ने साष्टांग नमस्कार कर इष्ट देवता से प्रार्थना की कि भूर के साथ-साथ दुष्ट ग्रह समाप्त हो जाएं और उसका पति स्वस्थ हो जाए।

इधर बरसवाह के नाम कीर्तन की आवाज सुनकर ब्रनसन साहब चिंतित होकर घर से निकलकर बाहर आए। वे कुछ समय पहले ही घर-घर में जाकर हैजे के रोगियों की खबर ले आए थे और उन्होंने दो एक रोगियों को अमेरिका से लाई हुई औषधि भी दी थी। उनकी दवा से मिशन स्कूल के कई मरणासन्न छात्रों को लाभ हुआ था। घर से दो कदम आगे बढ़कर कमिश्नर साहब के बंगले के सामने पहुंचने पर उन्होंने देखा कि कोई आदमी बंगले के फाटक को खोलकर उनकी तरफ जल्दी-जल्दी आ रहा है। पहचाने जाने पर उन्होंने पूछा, "क्या हुआ बापूराम?"

बापूराम कमिश्नर साहब का नौकर था। ब्रनसन साहब को देखकर थोड़ा घबराते हुए

उसने कहा, "कुछ नहीं हुआ हुजूर। सेंदुरा की हालत बहुत खराब है। मैं गोलापी को बुलाने जाता हूं।"

"किंतु, इतनी आधी रात में गोलापी गई कहां?" साहब ने आश्चर्य से पूछा।

"बूढ़ा डांगरिया को प्रसन्न करने के लिए लोगों ने बरसवाह का नाम कीर्तन किया है। वह वहीं गई है।" बापूराम ने थूक घोंटते हुए कहा। वह जानता था कि बरसवाह की चर्चा करने से साहब लोगों को बहुत गुस्सा आता है।

"God save these people" बोलकर ब्रनसन साहब कुछ कुछ बुदबुदाते हुए सेंदुरा के घर की ओर चल पड़े।

सेंदुरा का सारा शरीर शून्य और ठंडा पड़ गया था। ब्रनसन साहब ने उसकी पलकें उठाकर देखा और समझ गए कि सेंदुरा का अंतिम समय आ गया है। फिर भी उन्होंने बापूराम से जल्दी तेल गर्म कराया और स्वयं सेंदुरा के हाथ-पैरों में मालिश करना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद उसने आंखें बंद किए हुए बड़े कष्ट से धीरे-धीरे गोलापी को बुलाया। साहब की आंखें आश्चर्य से भर गईं। उन्होंने सेंदुरा के सिर पर हाथ फेरकर करुणा भरे स्वर में आश्वासन दिया, "गोलापी, तुम्हारे लिए प्रभु से प्रार्थना करने गई है तुम भी भगवान का नाम लो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा।"

ब्रनसन साहब का शांत-सौम्य चेहरा बहुत समय तक देखने के बाद लगा कि सेंदुरा ने उन्हें पहचान लिया है। उनकी गरम हथेली को अपनी ठंडी हथेलियों से दबाकर वह विह्वल होकर बोला, "साहब ! मुझे बचा लीजिए।"

दया और ममता के प्रतीक ब्रनसन साहब साधु-पुरुष की तरह सेंदुरा के सिर पर हाथ रखकर प्रभु ईसा का नामोच्चारण करने लगे। सेंदुरा के प्राण-पखेरू धीरे-धीरे उड़ गए।

तभी गोलापी ने आकर घर में प्रवेश किया। बरसवाह के बाद उसका मन थोड़ा शांत हो गया था। उसे हार्दिक विश्वास था कि नाम-कीर्तन के पश्चात् सेंदुरा की हालत में अवश्य सुधार होगा। घर के दरवाजे पर पैर रखते ही उसने देखा कि बिछावन के समीप बैठकर ब्रनसन साहब प्रार्थना कर रहे हैं और बापूराम एक कोने में खड़ा हुआ फूट-फूटकर रो रहा है। गोलापी को देखकर ब्रनसन साहब धीरे-धीरे बाहर आए। जीवन में अनेक बार उन्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। दुःख के पहाड़ से दबी अभागिन को पति की मृत्यु के बाद तनिक शांति-प्रदान करने की उन्होंने चेष्टा की। अपने जीवन में आए रोग, शोक, निराशा, दुःख आदि यातनाओं की अभिज्ञता ने ही अग्नि में तपाए सुवर्ण की तरह इस त्याग वीर के जीवन को उज्ज्वल बना दिया था। फिर भी, दूसरों के दुःख को देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। जीवन की कटुता, उन्हें कठोर नहीं बना पाई थी। सेंदुरा के निष्प्राण शरीर पर पड़कर गोलापी के विलाप करने का हृदय विदारक दृश्य देखकर वे पुनः कमरे के भीतर चले गए। गोलापी के सिर पर हाथ रखकर वे उसे सांत्वना देने लगे।

जीवन में कभी किसी अच्छे मनुष्य से इस तरह का स्नेह-पूर्ण व्यवहार न पाने के कारण गोलापी को अपनी असीम विपदा में ब्रनसन साहब साक्षात भगवान के अवतार प्रतीत हुए। उस दिन से ही उसने ब्रनसन साहब को अपना और अपनी बाल-कन्या का रक्षक मानकर उन्हीं के निर्देशानुसार अपने अवशेष जीवन की गतिविधि को चलाने का निश्चय कर लिया।

सेंदुरा के मरणोपरांत ब्रनसन साहब और उनकी मेम ही गोलापी की खोज खबर रखती थीं। गोलापी का कोई स्वजन न था, अगर होगा भी तो उसके भरण-पोषण का भार वहन करने के भय से कोई सामने नहीं आया। ब्रनसन साहब ने उसके भरण-पोषण के लिए उसे मिशन स्कूल में चौकीदारनी का काम दे दिया और उसके रहने के लिए क्रिश्चियन पट्टी में एक घर बनवा दिया। ब्रनसन साहब की मेम (पत्नी) अपने घर पर दो प्रौढ़ा स्त्रियों को लिखना पढ़ना सिखाती थी। उन्होंने गोलापी को भी उन्हीं के साथ पढ़ाना शुरू किया। गोलापी की बुद्धि तीव्र थी। अपनी इच्छा से अधिक पादरी साहब और मेम को आनंद देने के लिए वह बहुत कम समय में अच्छी तरह असमिया पढ़ना और लिखना जान गई। 'बारे मतरा', 'फूल मणि' और 'करुणा' आदि दो एक छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़ने लायक होने के बाद उसे पादरी और मेम साहब ने 'अरुणोदय' की पुरानी प्रति पढ़ने को दी।

क्रिश्चियन धर्म की दीक्षा लेने में गोलापी के मन में कोई दुविधा न थी। दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व से ही क्रिश्चियन पट्टी के आसपास रहने वाले पड़ोसी उसे स्वजन जैसे लगते थे क्योंकि आपत्ति-विपत्ति में वे ही उसके सहायक थे। इसके अतिरिक्त, धर्म क्या चीज है, इस विषय का प्रथम बार ज्ञान गोलापी ने ब्रनसन दंपति के संपर्क से ही पाया था। इसके पूर्व किसी भी अजान, अबूझ देवता व उपदेवता की कोप दृष्टि से बचने के लिए वह बिना समझे बूझे पूजा-पाठ में जाती थी। किंतु, अब वह अपनी भाषा में धर्मकथा पढ़ने लायक हो गई थी। अपने मन की शंकाओं को दूर करने के लिए वह पादरी साहब से पूछकर प्रश्नों का हल कर सकती थी। इन सब कारणों से गोलापी का क्रिश्चियन धर्म स्वीकारना स्वाभाविक था। दीक्षा-ग्रहण करने के बाद से ही पादरी और मेम उसे गांव की स्त्रियों में धर्म-प्रचार-कार्य में साथ ले जाने लगे। इस बीच तारा की अवस्था भी पांच वर्ष की हो गई थी। उसे मिशन स्कूल में भर्ती कर दिया गया और गोलापी के धार्मिक क्रिया-कलापों का क्षेत्र भी विस्तृत होने लगा।

बिल्व कुटीर का वातावरण हरेक शाम मधुर संगीत से मुखरित रहता था। इस संगीत के उद्‌गम का कारण सांसारिक प्रेम-विरह वेदना न था, वरन् चिरंतन ब्रह्म की उपासना हेतु ही यह संगीत होता था। रसोई घर के समीप स्थित गोंसाई घर की भूमि पर गलीचा बिछा कर, गुणाभिराम और उनके परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर उपासना करते थे। यह उनका नित्य का नियम था। किसी कारण से भी यह नियम भंग नहीं होता था। उपासना गृह में किसी देवी, देवता की मूर्ति अथवा चित्र नहीं थे। खाली कमरे के एक कोने में दीया रखने के लिए एक बेंच थी और पास में एक छोटी मेज रखी हुई थी।

इस छोटी मेज पर, गीता, बाइबिल, उपनिषद कीर्तन, भागवत, महर्षि देवेन्द्रनाथ द्वारा रचित ब्राह्मधर्म आदि धर्मग्रंथ सजाकर रखे गए थे। उपासना-गृह की नींव स्वयं गुणाभिराम ने रखी थी। पहले मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करके वे गंभीर स्वर से वेद-उपनिषद के श्लोकों का पाठ किया करते थे। इसमें वे 'असतो मा सद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' श्लोक हमेशा पढ़ा करते थे। विष्णु-प्रिया और स्वर्णलता भी कुछ श्लोकों का पाठ साथ-साथ करती थीं। संस्कृत श्लोक पढ़ने के बाद गुणाभिराम कभी-कभी क्रिश्चियन लोगों का 'लौर्ड प्रेयर' गाते थे और उसका अर्थ असमिया में अनुवाद करके सबको समझाया करते थे। तत्पश्चात् गुणाभिराम और विष्णुप्रिया दोनों मिलकर श्री शंकरदेव या माधवदेव का एक बरगीत गाते थे। 'पारे परि हरि' गाते-गाते विष्णुप्रिया की आंखों में अक्सर आंसू आ जाते थे। उस समय स्वर्णलता समझ नहीं पाती थी कि मां गाना गाते समय क्यों रोने लगती है? बहुत दिनों के बाद उसे समझ में आया कि मां के हृदय के गहरे कोने में कोई आघात व सामाजिक लांछना का ताप है। ये आंसू उसकी दुर्बलता के चिह्न न थे। इन आंसुओं में उसके दृढ़ मनोबल और आत्मविश्वास से भगवान के चरणों में समर्पण होने का आनंद व्यक्त होता था। स्वर्ण तन्मय होकर अपने माता-पिता के युगल कंठ से निसृत गान सुनती थी और जब उसके पिता "ब्राह्म कृपाहि केवलम्" बोलकर उपासना संपन्न करते थे तो उसका मन एक अपूर्व आध्यात्मिक संसार में विचरण करने लगता था।

संध्या की उपासना के बाद घर में एक शांत-वातावरण छा जाता था। विष्णुप्रिया दो वर्ष के लड़के करुणा के सब काम निपटाकर पीछे के बड़े बरामदे में बैठकर पत्र-पत्रिकाएं अथवा कोई पुस्तक पढ़ा करती थी। गुणाभिराम अपने कमरे में काम करते रहते थे। स्वर्णलता भी इस समय पंचानन शर्मा से पढ़ा करती थी। उसने बहुत कम समय में 'वर्णमाला' पढ़कर समाप्त कर दी और अब वह पिता के द्वारा शिवसागर प्रेस से लाए 'बारे मतरा' और अंक की पुस्तक पढ़ने लगी। पाठशाला में लड़के जितने समय में जितनी बातें सीखते हैं, स्वर्ण ने प्रायः उससे आधे समय में ही उतनी बातें पढ़कर समाप्त कर दीं। इस अल्पवयस्का

कन्या का पढ़ने-लिखने के प्रति लगन देखकर पंचानन शर्मा आश्चर्यचकित थे। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में बुद्धि-दिमाग कम होता है, ऐसी धारणा रखने वाले पंचानन शर्मा को अपने विचार बदलने पड़े। उन्होंने स्वर्ण को जब से पढ़ाना शुरू किया उनके मन में एक बात और आई। उन्होंने अपनी कन्या लक्ष्मी प्रिया को कभी एक भी ब्रह्म अक्षर नहीं सिखाया था। वे अपने दोनों लड़कों को डांट-डपट कर हमेशा सुबह और शाम पढ़ने बैठाते थे और उनके स्कूल की क्षति एक दिन भी नहीं होने देते थे। शर्मा की एकमात्र इच्छा थी कि लड़कों को एन्ट्रेंस परीक्षा पास कराकर सरकारी काम में लगा दें। किंतु जितनी जल्दी हो सके अच्छा वर देखकर लड़की का विवाह कर देने के अतिरिक्त, उसके बारे में उन्होंने अन्य कोई चिंता न की थी। शर्मा के हृदय में अपनी बेटी के प्रति स्नेह था किंतु, उसे विद्या और शिक्षा से वंचित रखकर, उसके प्रति वे कुछ अन्याय व अनुचित कर रहे हैं; ऐसा विचार उनके मन में अब तक एक बार भी नहीं आया था। अब धीरे-धीरे उनके विचारों में परिवर्तन आना शुरू हुआ। उन्होंने सोचा कि अगर स्वर्णलता के साथ लक्ष्मी को भी पढ़ाने बैठाएं तो विवाह के पहले उसके प्रति उनके कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाएगी। स्वर्ण को पढ़ाने के बाद उसी दिन उन्होंने विष्णुप्रिया से कहा, "बहू। मैं कल से स्वर्ण के साथ लक्ष्मी को भी दो चार दिन पढ़ने के लिए बैठाने की सोच रहा हूं। लड़की है, कितने दिन घर पर रह पाएगी? दो चार अक्षर सिखा देने पर भविष्य में उसके काम आएगा।"

विष्णुप्रिया के चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी। उसने भी सोचा कि एक अच्छे घर की समवयस्का लड़की के साथ स्वर्ण का परिचय होगा। अब तक सिर्फ ब्राह्म परिवार के लड़के-लड़कियों के साथ स्वर्ण का परिचय है और ज्यादातर वे बंगाली हैं। असमिया परिवार में बरुआ लोगों का विशेष आना-जाना नहीं था। ब्राह्म-धर्म स्वीकार करने के कारण सभी उच्च वर्ण के असमिया जन उन्हें म्लेच्छ समझते थे, फिर विष्णुप्रिया ने ब्राह्मण विधवा होकर दुबारा विवाह किया था। इस तरह के काम को समाज कैसे स्वीकार करता? यद्यपि ब्राह्य रूप में सभी बरुआ और उनकी पत्नी का सम्मान करते थे किंतु, अपने बच्चों और स्त्रियों को बिल्व कुटीर से दूर ही रखते थे। विष्णुप्रिया को इन सबका अनुभव था। उन्हें अपनी लड़की का अकेलापन, अपने अकेलेपन से अधिक खटकता था। इसीलिए पंचानन शर्मा के प्रस्ताव से उसे बड़ी खुशी हुई और उसने नई व्यवस्था के लिए सहर्ष अपनी सम्मति दे दी।

## 7

लक्ष्मी को पढ़ाने की चर्चा विष्णुप्रिया से करने के पहले पंचानन शर्मा ने अपने घर पर किसी से इस संबंध में बात नहीं की थी। बिल्व कुटीर से वापस आते ही उन्होंने बड़े गंभीर स्वर

में लक्ष्मी को बुलाकर कहा—कल से सुबह में तुम मेरे साथ चलना। तुम भी स्वर्ण के साथ लिखना-पढ़ना सीख लेना।

लक्ष्मी आनंद से गद्गद् हो गई और दौड़कर घर में सबको इस बात की खबर दे आई किंतु इसके साथ ही घर में तूफान खड़ा हो गया।

पंचानन शर्मा की बात का समर्थन करने वाला घर में कोई न था। लक्ष्मी की दादी, विधवा बुआ, चाची और मां सभी स्त्रियों ने शर्मा के विचार की निंदा की। उनके लिए यह एक अभूतपूर्व और अश्रुत घटना थी। उनके विचारों से, ब्राह्मण की कन्या को लिखने-पढ़ने की जरूरत नहीं थी। इसके अतिरिक्त हाकिम के अपवित्र घर में लड़की को भेजने के बारे में लोगों को पता चलेगा तो किसी अच्छे घर में उसकी शादी नहीं हो पाएगी। शर्मा के दो भाई थोड़े पढ़े-लिखे थे किंतु उनके और स्त्रियों के विचारों में कोई अंतर न था। ज्येष्ठ भ्राता भोलानाथ शास्त्रों के वचनों का प्रमाण देकर अपने भाई शर्मा को समझाते हुए बोले कि स्त्रियों को सांसारिक गृह-गृहस्थी के काम-काज में कुशलता प्राप्त करनी चाहिए और पारिवारिक सुख-शांति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए। पढ़ी-लिखी स्त्रियां शीलवती नहीं होतीं। वे अवकाश मिलने पर बुरी-बुरी पुस्तकें पढ़कर अपना समय बर्बाद करती रहती हैं। इस प्रकार की अनेक युक्तियां उन्होंने अपने भाई के सामने व्यक्त कीं। किंतु, सब तरफ से जितनी आपत्तियां उठाई गईं, पंचानन शर्मा की जिद भी उतनी ही बढ़ती गई।

नाना तर्क-वितर्क, गाली-गलौज और रोना-धोना होने के पश्चात् पंचानन शर्मा की बात होकर रही। उन्होंने आदेश दिया कि प्रतिदिन सुबह लक्ष्मी उनके साथ हाकिम के घर जाएगी। किंतु पढ़ते-लिखते समय वह अपने घर से ले गए आसन पर बैठेगी। हाकिम के घर की कोई चीज वह कभी नहीं खाएगी। वहां से वापस आने पर घर के बाहर ही नहा धोकर घर में प्रवेश करेगी। ये सारी शर्तें पंचानन शर्मा ने मात्र अपने घर की शांति बनाए रखने के लिए ही रखी थीं। यद्यपि वे इन सब कठोर नियमों को आवश्यक नहीं मानते थे। कन्या के लिए इन सारे नियमों का पालन जरूरी है, पुरुषों को घर से बाहर घूमघाम कर काम-काज करना चाहिए। किंतु महिलाओं के नियम-नीति के अनुसार चलने से ही समाज सुचारु रूप से परिचालित हो सकता है, शर्मा की ऐसी धारणा थीं।

पहले दिन से ही स्वर्ण और लक्ष्मी के मध्य स्वाभाविक बंधुत्व स्थापित हो गया। स्वर्ण शर्मीली प्रकृति की थी। इसीलिए किसी नए व्यक्ति के साथ उसकी आत्मीयता जल्दी नहीं हो पाती थी किंतु लक्ष्मी का स्वभाव उससे विपरीत था। घर की बड़ी कन्या होने के नाते वह अपने छोटे संसार में कुशल गृहिणी के समान आचरण करती थी। अपने छोटे-छोटे भाई और बहन को भजन गाकर सुनाते समय और उन्हें मसलकर भात खिलाते समय उसकी मुखाकृति पर मातृ-सुलभ रूप अंकित हो जाता था। रसोई घर में शाक-भाजी बनाते और अपने पिता के गोसाईं घर की चीजें सजाते समय वह एक निपुण गृहिणी के समान प्रतीत

होती थी। वास्तव में एक गृहिणी और मातृ रूप में ही लक्ष्मी का जन्म हुआ था। बाल सुलभ चंचलता, खेलकूद आदि बातें उसके स्वभाव में नहीं थीं।

स्वर्ण को देखने के बाद से ही लक्ष्मी ने अपने को उसकी बड़ी बहन मान लिया था। हाकिम की बेटी और पढ़ाई-लिखाई में आगे होने के कारण स्वर्ण में कर्त्तव्य ज्ञान अधिक होना चाहिए था। किंतु लक्ष्मी के व्यवहार ने यह निश्चित कर दिया कि वह आयु में ही नहीं, ज्ञान में भी स्वर्ण से अधिक है।

पढ़ाई शेष होने पर जब दोनों बेल वृक्ष के नीचे खुली जगह में पहुंचती तो लक्ष्मी के मुंह से लगातार निकलती बातों को सुनकर स्वर्ण को आश्चर्य होता था। प्रथम दिन ही लक्ष्मी की दृष्टि स्वर्ण के भात रांधने और चीजों को सजाकर रखने आदि पर गई। स्वर्ण के साज-संवार में उसे थोड़ा छिद्र नजर आया और वह मुंह ढककर हंसने लगीं, "ए राम! चौके में इस तरह आग जलाने से भात कब बनेगा? देखो, मैं अच्छी तरह कर देती हूं"— ऐसा कहकर लक्ष्मी ने अपनी छोटी छोटी परिपक्व अंगुलियों से कुछ मिनटों में चौका सुंदर तरीके से सजा दिया। उसके बाद रसोई बनाने के बर्तनों को एक तरफ लाइन से सजा दिया।

"भात और चाय के बर्तन साथ में मिलाकर मत रखना। एक तरफ भात के बर्तन और दूसरी तरफ चाय के बर्तन," इस प्रकार अनर्गल बातें कर-करके उसने स्वर्ण के खेलने के लिए उसके छोटे रसोईघर को सजा दिया। उसके ढंग को देखते हुए स्वर्ण को लगता था जैसे सचमुच कोई सुगृहिणी रसोईघर में व्यस्त होकर काम कर रही थी। स्वर्ण के लिए जो खेल था, लक्ष्मी के लिए मानो वह सब उसके दैनिक जीवन का कार्य था।

एक दिन भात रांधने के खेल में मन न लगने पर लक्ष्मी ने पूजा-पूजा का खेल खेलने का प्रस्ताव किया। नए खेल का नाम सुनकर स्वर्ण ने उत्साह से दौड़-भाग करके लक्ष्मी के निर्देशानुसार चीजें जुटानी शुरू कर दीं। लक्ष्मी ने मिट्टी का ढेर बनाकर उस पर फूलपात चढ़ाकर उसे गोंसानी देवी बना लिया। उसके बाद शेवाली फूल से पूजा की वेदी सजाई।

"इस जगह पर पुरोहित बैठेगा हां ! और इस जगह पर बलि देगा" ऐसा कहकर लक्ष्मी ने एक बलिवेदी बनाई।

"बलि कैसे दी जाती है?" स्वर्ण ने विस्मयपूर्वक पूछा। "बकरी को खच से एक बार में काटना होगा" लक्ष्मी ने अपना हाथ ऊपर उठाकर दिखाया।

स्वर्ण के मुख पर भय और वितृष्णा के भाव अंकित हो गए। अविश्वास के स्वर में उसने कहा, "तब तो बकरी मर जाएगी" लक्ष्मी खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"बलि देने पर नहीं मरेगी क्या? क्या बुद्धू लड़की है" स्वर्ण तुरंत गंभीर हो गई।

"मैं पूजा-पूजा नहीं खेलूंगी, मुझे बलि अच्छी नहीं लगती"

"हे राम ! बलि देखने में बुरा लगता है, ऐसा नहीं बोलना चाहिए। देवी मां का पाप

लगेगा" लक्ष्मी ने एक ज्ञानी की तरह कहा।

भय से स्वर्ण का मुंह विवर्ण हो गया। बिना किसी प्रतिवाद के स्वर्ण लक्ष्मी के निर्देशानुसार काम करती गई। किंतु, उसे उस दिन खेल में थोड़ा भी आनंद नहीं आया। बेलवृक्ष के नीचे का स्थान एक अज्ञात भय का केंद्र बन गया—वही आदिम मानव का भय।

पंचानन शर्मा के जाने का समय होने पर खेल समाप्त हो गया किंतु, दूसरे दिन सुबह जब तक नौकरानी ने खेलने की जगह को झाड़ पोंछकर साफ नहीं कर लिया तब तक स्वर्ण को एक बार भी बेल-वृक्ष के नीचे जाने का साहस न हुआ।

## 8

माइलस ब्रनसन को जब ऊपरी असम में धर्म प्रचार की विशेष सुविधा नहीं मिली, तब उन्होंने नगांव को अपना कर्मक्षेत्र बना लिया। तभी से वहां वैप्टिस्ट मिशनरी लोगों का समागम बढ़ गया और धर्म-प्रचार के कार्य में गति आई। ब्रनसन साहब ने एक साथ धर्मप्रचार और शिक्षा विस्तार का कार्य नगांव में करने का संकल्प किया। सुदूर अमेरिका से आए सभी पादरी स्त्री और पुरुषों ने अपने को धर्म-प्रचार के कार्य में लगा दिया। उस समय यह गहरा विश्वास था कि असम में शिक्षा-प्राप्ति के साथ-साथ सभी लोग क्रिश्चियन धर्म के सिद्धांतों के प्रति भी अवश्य आकृष्ट होंगे। इसी आशा में सभी विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए वे लोग अपने काम में संलग्न रहे। जब सभी अंग्रेज अफसरों ने गर्मी से छुटकारा पाने के लिए शिलांग, दार्जिलिंग और शिमला में आश्रय लिया था तो नगांव की भरी दुपहरी के ताप में मिस ब्रनसन, मिस कीलार आदि सभी पादरी मेम घर-घर में जाकर धर्म-प्रचार का कार्य करती थीं। इस काम को वे सीधा जनाना काम मानती थीं।

मात्र धर्म-चर्चा करने पर कोई उसे जल्दी स्वीकार नहीं करेगा, इसीलिए अपने गत अनुभव के आधार पर उन्होंने पहले स्त्रियों को ऊन-सिलाई का काम अथवा अन्य आवश्यक काम सिखाना शुरू किया था। फिर धीरे-धीरे वे धर्म की बातें निकालनी शुरू करती थीं। किंतु, इतनी सावधानी से आगे बढ़ने पर भी अधिकांश हिंदू घरों से पादरी महिलाएं निराश होकर लौटती थीं। कभी घर के 'गृहस्थ ने मना किया है' ऐसा कहकर चौताल से ही पादरी मेमों को विदा कर दिया जाता था। कभी-कभी उन्हें बैठक खाने में बैठाकर घर की महिलाएं उनसे कह देती थीं कि "तुम्हारा धर्म तुम्हीं को मुबारक हो, हमारे लिए तो हमारा धर्म ही ठीक है। तुम्हारी धर्म-कथा हमारे मस्तिष्क में नहीं आतीं; इसलिए ये सब बातें कहकर तुम हमारा समय नष्ट मत करो" इस तरह की कठोर बातें सुनकर भी पादरी निराश नहीं होते थे। उनका अटल विश्वास था कि एक दिन में तो सहज काम भी नहीं होता, किंतु

प्रयास से एक दिन दुर्भेद्य दीवार को भी ढाया जा सकता है।

बिल्व कुटीर का दरवाजा सभी पादरियों के लिए हमेशा खुला था। गुणाभिराम बरुआ और विष्णुप्रिया दोनों, ब्रनसन साहब और बैप्टिस्ट लोगों का बहुत आदर सम्मान करते थे। वे असमिया भाषा और शिक्षा के प्रति पादरियों का प्रेम देखकर मुग्ध थे। उनके मन में क्रिश्चियन धर्म के प्रति तनिक भी विद्वेष-भावना न थी। ब्राह्मधर्म के प्रवर्त्तक राजा राम मोहन राय भी विश्व-धर्म समन्वय और एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उन्होंने लिखा था कि "ईसा की वाणी आज के युग के लिए महत्वपूर्ण है।" अतः उदारपंथी ब्राह्म लोगों को किसी तरह की धार्मिक आपत्ति नहीं थी। जब कभी दोपहर में पादरी महिलाएं विष्णुप्रिया के निकट आती थीं तो वह उनसे धर्म के विषय में बातचीत करतीं और उनके द्वारा दी हुई नीति-कथा और धर्म की पुस्तकें पढ़ा करती थीं।

गोलापी भी बिल्व कुटीर में कभी अकेली तो कभी पादरी मेमों के साथ आया करती थी। विष्णुप्रिया उनसे ऊन और सिलाई का काम सीखती और स्वर्ण को भी सिखाती थी। गिरजाघर में तारा और स्वर्ण के पारस्परिक परिचय के उपरांत गोलापी बीच-बीच में अपने साथ तारा को भी ले जाती थी। स्वर्ण, तारा का सम्मान करती थी। तारा का गाना, सिलाई करना और पढ़ना-लिखना आदि कोई काम ऐसा न था जो स्वर्ण की आंखों से छुपा हो। जब तारा आती थी तो स्वर्ण उससे बहुत सारी बातें किया करती थी। तारा के स्कूली जीवन की जानकारी के प्रति स्वर्ण की बहुत उत्सुकता थी। तारा के मुंह से मेम के स्कूल की बात सुनकर स्वर्ण का मन भी उस तरह के स्कूल में पढ़ने का होता था। लक्ष्मी के साथ एक कोने में बैठकर पढ़ने की अपेक्षा एक उम्र की बहुत सारी लड़कियों को साथ पढ़ने में निश्चय ही अधिक अच्छा लगता होगा, ऐसा स्वर्ण सोचती थी। स्वर्ण उसकी बात पर बहुत गौर करती है यह जानकर तारा उसके सामने अपने कल्पना जगत को वास्तव जगत में परिवर्तित करने की चेष्टा करती थी, अपने आप वह उससे कहती कि मिस कीलार अमेरिका जाते समय उसे भी साथ ले जाएंगी। समुद्री जहाज में चढ़कर वह देश विदेश मे भ्रमण करेगी।

'अमेरिका कितनी दूर है?' स्वर्ण ने आश्चर्य से पूछा।

तारा पैरों से जमीन कुरेदती हुई गंभीरतापूर्वक कहती, "इस पृथ्वी के छोर पर है। यहां जब रात होती है, तब वहां दिन होता है। वहां सारी बातें यहां से उल्टी होती हैं। हम यहां जब सोते रहते हैं, वहां के लोग तब उठकर घूमते हैं। वहां के सभी लोग साहब-मेम हैं। हमारी तरह के आदमी वहां नहीं मिलेंगे।"

"तुमसे ये सब बातें किसने कहीं?"

"क्यों? हमारे पास की वायदेव (दीदी) के पिता धनीराम ब्रनसन साहब के साथ अमेरिका नहीं गए थे क्या? वायदेव ने ही मुझसे सारी बातें कहीं हैं। उनके घर में अमेरिका से लाई हुई बहुत सी सुंदर-सुंदर चीजें हैं।"

"तुम अमेरिका तक अकेली जा सकोगी? डर नहीं लगेगा क्या?" स्वर्ण ने पूछा।

"किस बात का डर" तारा ने निर्भीकता से कहा। "मेरे साथ पादरी मेम और साहब जाएंगे। वे सागर की लहरों की भक्ति करते हैं, उनको ईसा भगवान का नाम लेने से कोई आपत्ति नहीं आती।"

"क्रिश्चियन लोगों का पानी से कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता क्या?"

"नहीं ईसा तो पानी के ऊपर पैदल चलकर गए थे। ऐसा कहा जाता है कि क्रिश्चियन लोगों को ईसा डूबने नहीं देते।" तारा की बातों में उसका अटल विश्वास बोलता था। धर्म के विषय में अपनी मां या अन्य लोगों की सुनी बातों में अपनी कल्पना से कुछ और जोड़ देने पर उसे बहुत आनंद आता था। अपने विश्वास की बातों के प्रति स्वर्ण का विश्वास जमाने के लिए उसकी तीव्र इच्छा होती थी। इसीलिए वह बड़ी उत्सुकता से ईसा की लीला-गाथा को अपनी कल्पना के योग से अतिरंजित कर स्वर्ण के आगे कहती थी और स्वर्ण मुग्ध होकर सारी बातें सुनती थीं। बीच में कुछ प्रश्न पूछने पर तारा एक कुशल धर्म प्रचारक की भांति तत्काल उसका उत्तर देती थी।

## 9

गुणाभिराम बरुआ प्रायः मफस्वच तक जाया करते थे। उस समय असम तक रेलपथ का निर्माण नहीं हुआ था। वर्षाकाल में नाव, बैलगाड़ी वा घोड़ागाड़ी के अतिरिक्त यातायात के अन्य साधन न थे। उस समय नगांव से गुवाहाटी जाने के लिए तेरह मील लंबे थल मार्ग से चलकर कलंग नदी पार करनी पड़ती थी। उस समय कलंग नदी पर पुल नहीं बना था। नाव से नदी पार करने के बाद दो मील पैदल चलना पड़ता था और फिर डिमाल नदी पार करनी पड़ती थी। यही नहीं उसके बाद कपिलि, किलिंग और छोटी मोटी बहुत-सी नदियां पार करनी होती थीं। बरसात में नदियों का पानी इतना बढ़ जाता था कि रास्ता दिखता न था। इसलिए मफस्वच तक जाने में नाव के अतिरिक्त कोई साधन न था। किंतु, थलमार्ग से जाने की अपेक्षा नौका-यात्रा अधिक सुखमय थी। थलमार्ग पर कभी गाड़ी कीचड़ में फंस जाती, तो कभी घोड़े के ही पैर फिसलने लगते थे। इसके बावजूद अगर समय पर डाक बंगले तक नहीं पहुंच पाए तो किसी दुर्गम स्थान पर रात बिताने में भी डर था। इसलिए नाव की यात्रा ठीक रहती थी, हां नौका में मच्छरों के काटने और बालू में नाव के धंसने के कष्ट के सिवा और कोई भय नहीं था।

यद्यपि यात्रा में दुर्घटना होने का डर हमेशा बना रहता था, इसलिए प्रत्येक यात्री को खतरों का सामना करने के लिए मानसिक रूप से तैयार ही रहना चाहिए। किंतु, सामान्य रूप से नाविक गण अपने काम में इतने पटु रहते हैं कि सुरक्षा का दायित्व उन्हें सौंपकर

निश्चिंत रहा जा सकता है। खेल नाव के चेर के भीतर अथवा मार नाव के तंबू में बैठ वा लेट जाने पर विशेष कष्ट नहीं होता है।

ये सारी बातें सोचने विचारने के उपरांत गुणाभिराम बरुआ ने इस वर्ष विष्णुप्रिया, स्वर्ण और करुणा को साथ लेकर मफस्वच जाने का निश्चय कर लिया। विवाहोपरांत नगांव में आने पर विष्णुप्रिया कहीं दूसरी जगह नहीं गई थी, इस बार थोड़ा बाहर घूमने-फिरने से विष्णुप्रिया को प्रसन्नता होगी। गुणाभिराम ने विचार किया कि रास्ते में भेलेउगुरी के निकट चाय बागान में कुछ देर ठहरकर कैलाशनाथ राय नामक अपने एक बंगाली मित्र के यहां जाएंगे। राय बाबू बगान के मैनेजर थे। उनकी पत्नी कलकत्ता के एक ब्राह्म परिवार की कन्या थी। उन्होंने स्वयं भी ब्राह्मधर्म स्वीकार किया था। वह स्त्री विष्णुप्रिया को बहुत प्यार करती थी और विष्णुप्रिया भी उसे आत्मीय समझती थी। जब वे लोग नगांव आते थे तो वे प्रायः बिल्व कुटीर में अतिथि की तरह रहते थे। बहुत दिनों से वे बरुआ परिवार को, बागान में आने के लिए आमंत्रित करते रहते थे। अतः गुणाभिराम यमुनामुख आदि जगहों में अपना सरकारी काम पूरा करके वे घोड़ागाड़ी से भेलेउगुरी तक पहुंचेंगे और वहां दो दिन रहकर वापस आ जाएंगे।

नौका यात्रा का प्रसंग आते ही स्वर्ण का हृदय आनंद से झूम गया। उसे याद नहीं कि वह अब तक नगांव से कहीं बाहर दूर घूमने गई हो। उसने आसपास के असम के लोगों से नौका-यात्रा की अनेक आश्चर्य-जनक बातें सुनी थीं। उन दिनों जोरहाट से नगांव तक आए लोगों के मुख से उसने अनेक लोमहर्षक कथाएं भी सुनी थीं।

नामवर जंगल के बीच से आते समय भयंकर यखिनी जंगली जानवर और धनगुलै, यखिनी और "बूदाडांगरिया" आदि दुष्ट देवता यात्रियों को हमेशा भय दिखाते रहते हैं और राह में चुपचाप बैठे रहते है। नौका-यात्रा की कहानियां भी उसने सुनी थीं। कलकत्ता से गुवाहाटी तक नाव से आने पर रास्ते में क्या-क्या दिखता है, स्वर्ण ने अपने पिता से सारी बातें खूब अच्छी तरह सुनी थीं। अतः नगांव के बिल्व कुटीर में रहने पर भी स्वर्ण ने कल्पना-जगत में अनेक जगह भ्रमण कर लिया था।

नौका-यात्रा की बात सुनने के बाद से ही स्वर्ण, तारा और लक्ष्मी को खबर देने के लिए उत्सुक हो उठी। लक्ष्मी ने इस बात पर अपना विशेष उत्साह व्यक्त नहीं किया। एक विज्ञ की तरह वह बोली कि वह कई बार अपने घर के सभी लोगों के साथ कलंग नदी में स्नान करने गई है किंतु, उसे नौका-यात्रा बिल्कुल पसंद नहीं है। उसे बैलगाड़ी की यात्रा बहुत अच्छी लगती है। उसका कहना था कि बैलगाड़ी में चेर के भीतर बैठकर हम सुंदर-सुंदर दृश्यों का अवलोकन कर सकते हैं। नाव से कहीं जाने पर दिन में धूप और रात में मच्छरों के काटने पर प्राण निकलने वाली हालत हो जाती है। लक्ष्मी की बातें सुनकर स्वर्ण कुछ क्षण सोचती अवश्य रही, पर उसका यात्रा का उत्साह रंचमात्र भी कम नहीं हुआ। स्वर्ण

तारा से मिलकर अपनी बात कहने के लिए मार्ग पर उसकी प्रतीक्षा करती रहती। उसने सोचा समुद्र-यात्रा नहीं तो कम-से-कम नौका-यात्रा तो वह तारा से पहले कर सकेगी, उसे इस पर संतोष हो रहा था किंतु जाने से पहले वह तारा से नहीं मिल पाई।

घर के सामने मिशनरी स्कूल की एक छात्रा गुजर रही थी, उससे पूछने पर पता लगा कि तारा कैंप में गई हुई है। कैंप क्या है, वह ठीक से नहीं बता पाई। स्वर्ण ने समझा कि कैंप किसी गांव का नाम होगा।

यात्रा के दिन जब हाकिम, परिवार सहित नाव में चढ़ने वाले थे, उनकी वस्तुओं और साधनों को देखकर ऐसा लगता था कि वे किसी दूर देश की यात्रा पर निकले हैं। बिछावन, रसोई के बर्तन और खाद्य-सामग्री पर्याप्त मात्रा में उनके साथ थी। उनके साथ एक ग्रामीण बालक, एक नौकरानी और एक रसोइया था। नाव के ऊपर बांस का एक सुंदर घर बना दिया गया था। वहां बरुआ परिवार के लिए सोने की व्यवस्था थी। बीच में एक बुनी हुई खाट बिछा दी गई थी। रात में मसहरी लगाने के लिए चाल के ऊपर एक रस्सी बांध दी गई थी। ऐसी परिस्थिति में जितनी सुविधा बैठाई जा सकती थी, उतनी सुविधा उनके परिवार के लिए जुटा दी गई थी। इस नाव के पीछे-पीछे खेल नाव में कचहरी का एक किरानी और एक नौकरानी भी गई थी। खेल नाव भी एक तरफ से ढकी हुई थी। उसके भीतर पुआल के ऊपर बिछौना बिछाकर सोने की व्यवस्था थी। खाने के समय दोनों नावों को एक साथ जोड़ दिया जाता था और सभी बड़ी नाव पर ही अपना खाना-पीना कर लेते थे।

नाव छोड़ने के साथ-साथ स्वर्ण अपने पिता के पास बैठकर अपने मन में जागृत हजारों प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए उत्सुक रहती थी। गुणाभिराम भी शौक से उसके प्रश्नों के उत्तर देते जाते थे। जेइल पार करके खनामुख पहुंचने पर उन्होंने अपनी बेटी को बताया कि किस प्रकार आनंदराम ढेकियाल फूकन ने जेल के कैदियों को हटाकर यरिकलंग के पाक को खुदवाकर दो मील रास्ता छोटा करवा दिया था। आनंद राम की बात भक्ति पूर्वक स्मरण करके उन्होंने बेटी से कहा, "मनुष्य के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है, देखो, इच्छा शक्ति और बुद्धि के प्रयोग द्वारा मनुष्य किस प्रकार एक नदी को वश में कर सकता है।"

"क्या सागर को भी ढका जा सकता है?" स्वर्ण ने कुछ सोचकर पूछा। गुणाभिराम थोड़ा निरुत्तर हो गए। किंतु अपनी युक्ति के समर्थन में उन्होंने कहा, "आज तक यह काम कोई नहीं कर पाया किंतु, भविष्य में मानव की ज्ञान-बुद्धि होने पर इसे भी किया जा सकता है।"

"देउता, कहते हैं ईसा पानी में पैदल चल सकते थे" इस बार स्वर्ण के प्रश्न के झुकाव को गुणाभिराम ने समझ लिया। बेटी के माथे पर हाथ रखकर वे मुस्कुराते हुए बोले—सभी धर्मों में इस प्रकार की छोटी-मोटी कथाएं प्रचलित रहती हैं। ये कथाएं सत्य हैं या मिथ्या, इसका निर्णय मनुष्य को अपने विचार और विवेक के आधार पर करना चाहिए। अतः

मनुष्य को शिक्षा प्राप्तकर अपने ज्ञान का विकास करने की जरूरत है। स्वर्ण, पिता की बात नहीं समझ पाईं किंतु इतनी बात वह जानती थी कि बड़े लोग किन्हीं प्रश्नों का उत्तर सीधे नहीं दे पाते। वहां के प्राकृतिक दृश्य को देखकर वह मुग्ध हो गई और इस प्रसंग का ध्यान ओझल हो गया।

भारी-भरकम नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। नाविक बांस की बड़ी पतवार लेकर नाव खे रहे थे। रोहा तक पहुंचने में पूरा दिन लग गया। फूलगुरी तक पहुंचते-पहुंचते संध या हो गई। हठात् जगमगाते हुए दीप दिखाई पड़े। पहले, सभी ने उसे मछली मारने वाली नाव समझा था। बाद में उन्हें समझ में आया कि यह केले के गाछ का भूर है। मां के प्रसाद, और दीपों को जल में विसर्जित किया गया है।

यह देखकर गुणाभिराम ने सबको चेतावनी दी कि नदी के पानी को उबाले बगैर कोई भी न पिये। भूर को देखकर वे समझ गए थे कि गांव में हैजा फैला हुआ है। ग्रामीण लोग महामारी फैलने पर दुष्ट देवताओं को इस प्रकार की पूजा-सामग्री भेंट किया करते हैं। स्वर्ण, इन सब बातों को सुनकर डर गईं। इसी बीच बहुत सारे मच्छर झुंड के झुंड उड़कर यात्रियों को परेशान करने लगे। मच्छरों के काटने के डर से यात्रीगण अपना खाना-पीना जल्दी समाप्त कर मसहरी के भीतर आराम करने चले गए। पहली रात खाना बनाने की जरूरत नहीं हुई। वे लोग अपने साथ जो खाद्य वस्तुएं लाए थे उसी से उन्होंने अपनी भूख मिटाई।

पहली रात्रि में रोहा घाट पर नाव को बांध दिया गया। घाट पर और भी बहुत सी नावें थीं। अधिकतर नौकाएं मारवाड़ी व्यापारियों की थीं। इन्हीं नौकाओं से नागा पहाड़, उत्तर कछार और दूसरे भीतरी अंचलों से रूई, लाह इत्यादि वस्तुएं लाकर ब्रह्मपुत्र से गोहाटी ले जाया जाता था। गौहाटी से आई हुई नौकाएं भी रोहा से कपिलियेदि भीतरी जगहों में ले जाई जाती थीं। इसलिए रोहा में बहुत सारे व्यापारी पहुंचते थे और इस स्थान पर सप्ताह में एक दिन हाट लगता था। हाट के बाहर कभी-कभी नगांव से आकर साहब और मेम असमिया में लिखी क्रिश्चियन धर्म की पुस्तकें और ईसा की फोटो मुफ्त बांटते थे।

रोहा में गुणाभिराम को कुछ सरकारी काम था। इसलिए घाट पर नाव को छोड़कर वे लोग वहां के डाक बंगले में रहने के लिए चले गए।

रोहा का काम समाप्त होने पर दूसरे दिन सुबह में नाव कपिलियेदि के ऊपरी भाग की ओर बढ़ चली। कपिलियेदि का स्रोत बहुत तेज था। इसलिए दोनों नौकाएं बहुत धीरे-धीरे चल रही थीं। रोहा पार करने पर नदी के दोनों तटों के खेती-पथार की संख्या कम होने लगी।

उस समय आश्विन मास था। यद्यपि बाढ़ का पानी सूखने लगा था फिर भी नदी के दोनों ओर दूर तक घास-सिवार आदि पानी से भरा दिखाई पड़ता था। जहां-तहां केवल धान के खेत थे। किंतु अधिकांश जगहों में सेवार और झाड़-झंकाड़ उगे थे। कुछ दूर उत्तर

जाने पर दोनों तरफ ऊंची-ऊंची घासों से भरे अंचलों के बीच दोनों नावें जाने लगीं। यहां ज्यादातर स्थान जन-शून्य थे। मनुष्यों की बस्ती में कहीं-कहीं कुछ कबूतर दीख पड़ते थे। तब दोनों नाव किनारे लग जातीं और यात्रीगण तट पर उतरकर अपने हाथ पैर धोते थे। कुछ नौकर नाव से उतरकर गांव में चले जाते। किंतु, हाकिम की नौका तट पर खड़ी है, यह खबर पाने पर गांव के लोग कभी-कभी स्वयं आकर दही-दूध-घी, अपनी वाटिका की लौकी, बैगन आदि दे जाते थे। गुणाभिराम बिना मूल्य दिए किसी से कुछ नहीं लेते थे। लोगों के अनुरोध करने पर भी वे कड़े शब्दों में इंकार कर देते और पैसे देकर ही उन्हें जाने देते थे।

गांव के दृश्य देखकर स्वर्ण को बहुत अच्छा लगा। नदी में स्नान करने के लिए आई मिकिर युवतियां पहले दोनों नावों को देखती रहीं और फिर खिलखिला कर हंस पड़ीं। स्वर्ण को बहुत शर्म आई। किंतु, जब लड़कियां उसे और भाई को हाथ उठाकर देखतीं तो उसे उनके ऊपर प्यार आ जाता। जब तक नाव वहां रहती, नंगे लड़के और लड़कियां दल बनाकर उनकी तरफ देखते रहते। स्वर्ण को वे लोग एक दूसरे लोक के प्राणी लगे। ये लोग घर पर कैसे रहते हैं? क्या खाते हैं आदि बातें, उनके बारे में जानने की उत्सुकता स्वर्ण के मन में हुई। उसके पिता ने उसे बुलाकर कहा कि ये सब मिकिर लोग हैं। इनकी अपनी एक विलक्षण सभ्यता है। हम इनके बारे में अच्छी तरह नहीं जानते। इन्हें हम असभ्य समझते हैं। अंग्रेज भी पहले हमारे देशवासियों को असभ्य और बर्बर जाति समझते थे। किंतु, जिन अंग्रेजों ने हमारे देश की सभ्यता का इतिहास पढ़ा है और उसके बारे में सुना है, वे लोग ही समझ पाए है कि हमारी सभ्यता कितनी प्राचीन और सुंदर है।

इसीलिए मनुष्य को समुचित शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा ही हमारे मन में सभी जातियों के प्रति सम्मान के भाव जागृत करती है।

"पर मेरी पुस्तकों में ये सब बातें नहीं लिखीं हैं" स्वर्ण ने कहा।

"बड़ी होने पर धीरे-धीरे सारी बातें पढ़ोगी। घर पर रखी 'अरुणोदय' पत्रिका में ही हमारे पड़ोसी जातियों के बारे में बहुत कुछ लिखा हुआ है।"

दोनों नाव एक विशाल वन प्रांत के बीच से होकर धीरे-धीरे गुजरने लगीं। दोनों तरफ ऊंचे-ऊंचे वृक्ष थे। कुछ वृक्षों की डालें नदी के ऊपर झुकी हुई थीं। पेड़ों की डाल पर अनेक बंदर कूद-फांद कर रहे थे। ये सब देख-देखकर स्वर्ण और करुणा को अति आनंद आ रहा था। रंग-बिरंगी, तरह-तरह की चिड़ियां पेड़ की डाल से उड़कर पानी तक आतीं और फिर उड़कर डाल पर बैठ जाती थीं। धूप के प्रकाश में उन पक्षियों के पंख इंद्रधनुषी रंग के लगते थे। छायादार वृक्ष की सूखी डालों पर झुंड-के झुंड बत्तख बैठे शोभायमान थे। नावों के पास में जाते ही, सारे बत्तख उड़कर आकाश में चले जाते थे। नदी की शोभा देखते-देखते मानो स्वर्ण किसी चंपावती नगरी में उड़कर चली जाती थी। कभी-कभी

हंस-शराली आदि एक लाइन से सिर के ऊपर से उड़ते रहते थे। वे अज्ञात स्वर में शोरगुल करते तो लगता था कि वे स्वर्ण से कुछ कह रहे हैं।

गुणाभिराम शालवृक्ष की तरफ अंगुली से संकेत करते हुए दुख से कहने लगे, "एक दिन ये मूल्यवान वृक्ष लापता हो जाएंगे। दरंग की तरफ के लकड़ी के व्यापारी कुछ वर्षों से मजदूर लगाकर बड़े-बड़े वृक्षों को काटकर नष्ट करते जा रहे हैं। अभी जिन्हें देखती हो उनमें से अधिकांश नए वृक्ष हैं। व्यापारियों की दृष्टि पड़ते ही ये भी अधिक दिन नहीं टिक पाएंगे।"

कामपुर में गुणाभिराम को कुछ सरकारी कामकाज था इसलिए एक दिन वहां के डाक बंगले में रुककर दूसरे दिन उन्होंने फिर यात्रा आरंभ की। दोपहर को नाव चलकर बालिराम नाम के गांव के पास रुकी। उस जगह नाव रोकने की बात नहीं थी। सात दिनों तक यात्रा करने पर यात्री थक गए थे और जल्दी-से जल्दी यमुनामुख तक पहुंचने की फिक्र में थे। किंतु, बालिराम के घाट पर अन्य दो मार नावों को रुके देखकर यात्रीगण अपना कौतूहल रोक न पाए और नाविकों ने भी मार नावों के नाविकों को पहचानना चाहा। नाव के तट पर पहुंचते ही गुणाभिराम को उस निर्जन अंचल को सुमधुर स्वर से मुखरित करने वाला संगीत सुनाई पड़ा। स्वर्णलता ने अवाक् होकर दूर तक देखा। संगीत के स्वर उसे परिचित से लगे और पास आने पर उसे समझ में आ गया कि अरे, यह तो तारा की आवाज है। नाव के किनारे लग जाने के साथ-साथ स्वर्ण को एक अद्भुत दृश्य दिख पड़ा कि एक मार नाव पर मिस अरेल कीलार ऑर्गन बजा रही है और पास में खड़ी होकर तारा और दूसरी दो लड़कियां भजन गा रही हैं। इसी बीच वहां अच्छी खासी भीड़ एकत्र हो गई। गान समाप्त होने पर एक अन्य पादरी महिला लोगों को छोटी-छोटी पुस्तकें बांटने लगी।

अधिकतर लोगों ने पुस्तकें सिर्फ उलट-पलट कर देखीं और वापस कर दीं। किताबें असमिया भाषा में लिखी गई थीं किंतु वहां के लोगों में कोई पढ़ा-लिखा नहीं था। इसलिए नाव से उतर कर दो मेमें उन्हें टूटी फूटी असमिया में ईसा की कहानी सुनाकर बताने लगीं। पहले तो सबने उनकी बातें सुनीं किंतु, जब कई मिशनरी महिलाओं ने उन्हें वहां आने का अपना उद्देश्य स्पष्ट किया कि वे वहां लड़कियों का एक स्कूल खोलना चाहती हैं तो बड़े-बड़े लोगों ने वहां से खिसकना शुरू कर दिया। अंत में उनकी बातें सुनने के लिए कुछ लड़के और लड़कियां ही वहां रह गईं। तभी गुणाभिराम बरुआ, विष्णुप्रिया, करुणा और स्वर्ण भी पहुंच गए। तारा उन्हें देखकर आश्चर्य और खुशी से दौड़कर उनके निकट आ गई।

"इस गांव का नाम कैंप है क्या? स्वर्ण ने उत्सुकता से पूछा।"

"तुम क्या कह रही हो? इस गांव का नाम तो बालिराम है। यहां दो घर क्रिश्चियन के हैं इसीलिए हम यहां तक आई हैं। इस तरह से आने को कैंप तक आना कहते हैं।

लगभग 15 दिनों से हम नाव में ही भ्रमण कर रहे हैं और एक पखवाड़े के बाद ही हम घर लौट सकेंगे।"

"इतने दिन? स्वर्ण तो एक सप्ताह तक नौका-भ्रमण करने में ही परेशान हो गई।"

इसी बीच गुणाभिराम पादरी मेमों के साथ वार्तालाप करने बाहर निकले। गांव की तरफ से भी एक दल लोग वहां पहुंच गए। उस दल में एक अगुआ था। कुछ इधर-उधर करके वे लोग गुणाभिराम और पादरी लोगों के लिए निकट आए। उन्होंने गुणाभिराम को पादरियों में से एक समझकर कहा—हमें क्रिश्चियन लोगों के खिलाफ कुछ नहीं कहना है क्योंकि वे सत्य बात ही कहते हैं, फिर भी लड़कियों का स्कूल खोलने की बात हमें पसंद नहीं है। गांव के एक दो लड़कों ने खुद लिखना-पढ़ना सीखा था, पर खेती के काम में उनकी तनिक भी रुचि नहीं रही। अगर लड़कियां पढ़ लिख लेंगी तो घरेलू काम-धंधे कौन निपटाएगा? कुछ लोगों ने ये बातें बहुत उत्तेजित होकर कहीं।

मिशनरी दल के मुखिया के रूप में गुणाभिराम ने गांव के लोगों को खूब धैर्य पूर्वक समझाना चाहा कि लड़कियां यदि पाठशाला में पढ़ी होंगी तो वे घर का काम पहले से भी अधिक अच्छी तरह कर सकेंगी। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा ठीक होने पर ही गांव के लड़के-लड़कियां अच्छे हो सकते हैं। मां मूर्ख होगी तो उनकी संतान पर अनेक विपत्तियां आ सकती हैं। इस बात को गुणाभिराम ने खूब समझाया। मिस कीलार ने भी टूटी फूटी असमिया भाषा में एक कहानी सुनाई। इस कहानी का सारांश यही था कि एक ज्ञानी और गुणी मां ही अपनी संतान को सन्मार्ग पर ला सकती है। धीरे-धीरे गांव के कुछ बड़े-बूढ़ों का हृदय-परिवर्तन हुआ। उनमें से किसी ने फुसफुसाकर आपस में गुणाभिराम का परिचय लिया और यह बात तुरंत बिजली की तरह चारों तरफ फैल गई। गांव के कुछ लोगों ने बरुआ को आश्वासन दिया कि पादरी मेम और उनके दल को गांव में ठहरने की सभी सुविधाएं कर दी जाएगी। गांव में पाठशाला खुलवाने की भी अनुमति दे दी गई। किंतु, गांव के लोगों ने एक शर्त रखी कि पाठशाला में पढ़ने वाली लड़कियों को अपना धर्म छोड़ने की सलाह नहीं दी जानी चाहिए। गुणाभिराम ने लोगों को बतलाया कि कलकत्ता जैसे बड़े-बड़े नगरों में लड़कियां भी अच्छी तरह उच्चशिक्षा प्राप्त कर रही हैं किंतु उन्होंने अपना धर्म नहीं त्यागा है।

## 10

बगान में एक सप्ताह परम आनंद में व्यतीत हुआ। कैलाशनाथ और उनकी पत्नी ने बरुआ परिवार को अपने स्नेह और सम्मान से मुग्ध कर दिया। पहले दिन गाड़ी भेजकर घाट से ले जाने से लेकर अंतिम दिन तक राय परिवार के अतिथि सत्कार की सीमा न थी। बगान

में अतिथि के रूप में कभी-कभार ही कोई जाता था, इसलिए राय बाबू और उनकी पत्नी गुणाभिरराम के परिवार को जल्दी वापस जाने देना नहीं चाहते थे। किंतु सरकारी काम में रहने के कारण गुणाभिराम चार दिनों से अधिक ठहर नहीं सकते थे। जाते समय विष्णुप्रिया और कैलाशनाथ की पत्नी दोनों की आंखें डबडबा आईं। विष्णुप्रिया को विवाह के पश्चात् इतना आदर-सम्मान किसी से नहीं मिला था।

स्वर्ण वगैरह को मफस्वच से लौटने में लगभग बीस दिन लग गए। इस दौरान लक्ष्मी प्रिया के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ गया था। उसका विवाह तय हो गया था। वर, कलियावर के राम प्रसाद गोस्वामी का मंझला लड़का—गोबिंद प्रसाद था। लक्ष्मी की अवस्था नौ वर्ष की होते ही पंचानन शर्मा ने उसके लिए एक अच्छा वर ढूंढ़ लिया। जब से लक्ष्मी प्रिया बरुआ के घर पर पढ़ने के लिए जाने लगी थी तभी से शर्मा की मां और पत्नी ने उसके लिए वर ढूंढ़ने के लिए अधिक जोर दिया था। कई जगह खबर भी भेजी थी। अंत में कलियावर के गोस्वामी के लड़के के साथ अच्छा संयोग मिल गया। लड़का देखने में सुंदर था। नगांव हाई स्कूल में चौथी क्लास तक पढ़ा भी था किंतु, दूसरों के पास रहकर पढ़ने में कष्ट पाकर घर वापस आ गया था। अभी वह पास के प्राइमरी स्कूल में अध्यापकी कर रहा था। वर पक्ष के यहां से लोगों ने लड़की को भी देख लिया था। माघ महीने में विवाह का दिन ठीक हो गया। यह तय हो गया था कि शांति (रजस्वला) नहीं होने तक लड़की मां के घर पर ही रहेगी।

लक्ष्मी को अपने विवाह के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। सब कुछ ठीक-ठाक होने के बाद जब प्रतिदिन उसके केश रीठा से धोए जाने लगे और कर्ण फूल पहनाने के लिए, उसके कान के छेद को बड़ा किया जाने लगा तथा इन सब बातों पर घर के लोग अधिक ध्यान देने लगे तो उसे समझ में आने लगा कि उसके जीवन में कोई नया परिवर्तन आने वाला है। उसे घर की बुनी चादर और पाट का मेखला पहनना पड़ा। विवाह के उद्देश्य से रिहा, मेखला और सम्मान के योग्य कपड़ा गांव की दो स्त्रियों को बुनने के लिए दिया गया। उस समय शर्मा के घर के सभी कार्यों का केंद्र बिंदु था लक्ष्मी का विवाह। स्वर्ण की अनुपस्थिति में लक्ष्मी प्रिया को कई दिनों तक बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। घर में उसके खाने-पीने, पहनाने-ओढ़ने और उसके रंग-रूप के प्रति अधिक लगाव देखकर उसका भोला मन आनंद से भर गया। स्वर्ण के आने पर अपनी बात कहने के लिए वह उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। स्वर्ण के लौटकर आने पर दूसरे दिन ही लक्ष्मीप्रिया अपने पिता के साथ बिल्व कुटीर गई। किंतु जितनी उत्सुकता से वह स्वर्ण से मिलने के लिए बाट देख रही थी, आज वह इतनी खुश नहीं थी, कुछ उदास सी थी। पंचानन शर्मा तो मफस्वच भ्रमण के समाचार जानने के लिए गुणाभिराम के पास जाकर बैठ गए। लक्ष्मी, स्वर्ण का हाथ पकड़कर वेलवृक्ष के नीचे अपनी क्रीड़ास्थली की ओर चली गई। पहले लक्ष्मी इतनी

मुखर थी कि कुछ न कुछ बोलती ही रहती थी पर, आज स्वर्ण ने अपनी बात की रेलगाड़ी छोड़ दी। नौका-यात्रा की बात, तारा से मिलने की बात और बगान की घटनाएं सुनाते सुनाते वह सोच ही नहीं पाई कि लक्ष्मी इतनी देर से चुपचाप क्यों है। बहुत देर बाद स्वर्ण ने लक्ष्मी से पूछा, "तुम्हें क्या हो गया है? तुम इतना मन मारकर क्यों बैठी हो?" लक्ष्मी ने कुछ जवाब नहीं दिया। स्वर्ण ने अवाक् होकर उसके मुख की तरफ देखा कि लक्ष्मी की आंखें आंसुओं से भरी हुई हैं। स्वर्ण ने पहले कभी लक्ष्मी को रोते हुए नहीं देखा था। थोड़ा घबड़ाकर स्वर्ण ने फिर पूछा, "क्या हुआ, बताओ ना।"

"मैं अब तुम्हारे पास पढ़ने नहीं आ सकूंगी। माघ महीने में मेरा विवाह होने वाला है।" इतना कहकर लक्ष्मी जोर से रोने लगी। उसे अपने विवाह की खबर इस रूप में स्वर्ण को देनी पड़ेगी, ऐसा उसने एक बार भी नहीं सोचा था। किंतु, उसी दिन स्वर्ण के यहां आने के लिए चलते समय मां ने कहा था, "स्वर्ण और आइदेव को निमंत्रण देती आना; विवाह के पहले तुम्हारा वहां जाना नहीं हो सकेगा। हाकिम के घर में तुम्हारा आना-जाना है, ऐसी बात कोई तुम्हारे ससुराल में लगा देगा तो बहुत बड़ी बात हो जाएगी।"

लक्ष्मी इस बार ही समझ पाई कि विवाह का मतलब सिर्फ नए कपड़े पहनना और आभूषण पाना ही नहीं है। उसके जीवन में जो थोड़ी बहुत स्वाधीनता थी, वह समाप्त कर देने की योजना चल रही है। लक्ष्मी बेलगाछ से सिर टिकाए बहुत रोई। स्वर्ण का मुंह भय और दुःख से विवर्ण हो गया। उसे लगा कि विवाह एक भयंकर चीज है। क्या उसके मां-बाप उसका भी विवाह कर देंगे? एक अज्ञात भय से वह आतंकित हो गई। लक्ष्मी रोते-रोते थक गई। उसने देखा कि स्वर्ण भी सिसक-सिसककर रो रही है। वह अपना दुख भूल गई और स्वर्ण को सांत्वना देती हुई बोली, "स्वर्ण ! रो मत। मैं मौका पाकर तुम्हारे पास कभी-कभी आऊंगी। तुम मन लगाकर पढ़ना-लिखना किंतु मेरी शादी में जरूर आना" बाकी की बात कहते समय लक्ष्मी ने हंसने की चेष्टा की। स्वर्ण क्यों रोने लगी, वह इसका कारण नहीं समझ पाई। दूसरों को रोते देखकर अपनी आंखों से भी आंसू निकलने लगते हैं। यह समझने का सामर्थ्य उस अल्पवयस्का कन्या में न थी। स्वर्ण की आंखों में पानी उसके हृदय के प्यार का प्रतीक है, यह मानकर लक्ष्मी बड़ी कृतज्ञता का अनुभव कर रही थी।

## 11

लक्ष्मी का विवाह तय हो जाने के बाद गुणाभिराम और विष्णुप्रिया ने कुछ सोच-विचार कर स्वर्ण के लिए एक दूसरे शिक्षक को घर पर आकर पढ़ाने का बंदोबस्त करना चाहा। उन्होंने सोचा कि जो स्वयं, शिक्षित होने पर भी अपनी फूल सी अल्पवयसी कन्या का विवाह करने की सोच सकता है, ऐसे व्यक्ति से स्वर्ण को उचित शिक्षा नहीं मिल पाएगी। उस

समय भारत के बंग और अन्य राज्यों में बाल-विवाह के पक्ष और विपक्ष में जनता के विचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। गुणाभिराम बरुआ ने स्वयं भी कलकत्ता में शिक्षा-लाभ करते समय 'अरुणोदय' पत्रिका में लिखा था कि विवाह के समय लड़के और लड़की की आयु में अधिक अंतर रहने पर पति-पत्नी के बीच पिता और पुत्री के समान संपर्क रहेगा। उनके बीच समवयस्क की तरह बंधुत्व व प्रेम नहीं पनपेगा। फलतः दोनों एक साथ रहते हुए भी संसार-यात्रा में सुखी नहीं हो सकेंगे।

कलकत्ता के ब्राह्म समाज के प्रभाव से गुणाभिराम की ऐसी विचारधारा बनी थी। प्रारंभ से ही ब्राह्म समाज़ का लक्ष्य था, समाज में विप्लव लाकर हिंदू-विवाह पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन लाना। बाल-विवाह और बहु-विवाह के विरोध और विधवा-विवाह के समर्थन का तीव्र प्रचार केशवचन्द्र सेन और राजनारायण बसु प्रभृति ब्राह्म समाज के शीर्ष नेताओं ने किया था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन, शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्म समाज के प्रत्येक नेता ने नारी-मुक्ति के क्षेत्र में एक दूसरे से बढ़कर उदार-दृष्टि अपनाने की चेष्टा की थी। सर्वप्रथम देवेन्द्रनाथ ने ही अपने बेटे और बेटियों का विवाह ब्राह्म-पद्धति से किया था। केशव चन्द्र सेन नारी-शिक्षा की दिशा में अग्रगण्य थे और शिवनाथ शास्त्री उपासना के समय नारी और पुरुष को साथ-साथ बैठने की पद्धति के लिए प्रयत्नशील थे। नगांव के ब्राह्मसमाजी जन, पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा इस विषय में सारी-खबर रखते थे इसलिए कलकत्ता के बौद्धिक जगत की वायु का स्पर्श इन लोगों को भी हो गया था। ब्रह्मानंद केशवचन्द्र के कंठ के उदात्त स्वर की झंकार सुदूर असम के एक कोने में निवास करने पर भी उन्हें मिल जाती थी। प्राचीन आदि ब्राह्म-समाज की तत्व बोधिनी पत्रिका और अर्वाचीन विप्लवी समाज के इंडियन मिरर के बीच व्यक्त मतभेद ने नगांव के ब्राह्म समाज में आंदोलन का सूत्रपात कर दिया था। गुणाभिराम बरुआ और कई अन्य ब्राह्म समाजी केशवचन्द्र सैन के विप्लवी आदर्श से विशेष रूप से प्रभावित हुए थे।

गुणाभिराम के प्रयत्न से निर्मित ब्राह्म मंदिर में प्रत्येक रविवार को संध्या में उपासना के बाद इन सब विषयों पर चर्चा होती थी। आलोचना में प्रमुख भाग लेने वालों में बंगला स्कूल के प्रधानाध्यापक गुरुनाथ दत्त और गुणाभिराम बरुआ थे। गुरुनाथ दत्त आचार्य रूप में उपासना का काम-काज चलाते थे। देवेन्द्रनाथ के आदि ब्राह्म समाज में ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे किसी को यह दायित्व नहीं दिया गया था। नगांव का ब्राह्म समाज केशवचन्द्र सेन के आदर्श द्वारा परिचालित था।

पंचानन शर्मा ने अपनी कन्या के विवाह का निर्णय लिया, यह बात गुणाभिराम को बहुत खटक रही थी। इसलिए रविवार को उपासना के बाद दत्त और दूसरों के साथ बातचीत करते समय उन्होंने बाल-विवाह की समस्या पर प्रकाश डालना चाहा। कलकत्ता के ब्राह्म लोग चौदह वर्ष पहले ही बाल-विवाह के विरोध में लग गए थे किंतु तब भी क्या समाज

के दूसरे वर्गों में इस बात का समुचित प्रचार संभव हो सका है?

"क्यों नहीं हुआ?" दत्त बाबू ने कहा "हम देखते हैं कि आजकल कितने ही पत्रों में इस विषय पर लेख लिखे जा रहे हैं। सौसिदिना द्वारिकानाथ गांगुली के 'अबला बांधव' में इस विषय पर एक सुंदर लेख प्रकाशित हुआ है। शिक्षित लोग ऐसी पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अवश्य प्रभावित होंगे। हां, अशिक्षितों की बात अलग है। उनके भीतर परिवर्तन आने में बहुत समय लगेगा।"

"शिक्षितों में हम साधारण रूप से ब्राह्मण, कायस्थ आदि उच्च वर्ण के लोगों को ही मानते हैं। किंतु, इन्हीं लोगों से एक बड़ी भूल होती हैं। असम, उड़ीसा आदि राज्यों में नीच-जाति के लोगों में बाल-विवाह, सती दाह प्रथा आदि कुसंस्कार नहीं हैं। उच्चवर्ण के लोगों में ही ये कुरीतियां छुपी हुई हैं। अतः उनके ही कुसंस्कारों को मिटाने की जरूरत है।"

ये बातें गुणाभिराम ने मात्र तर्क के लिए नहीं, बल्कि अपने गहन अनुभव के आधार पर कहीं थीं, यह सभी समझते थे। थोड़ी देर सभी के चुप रहने के बाद दुर्गानाथ राय नाम के एक युवा वकील थोड़ा उत्तेजित होकर बोले, "ब्राह्मण, कायस्थ के बीच, जो वास्तव में शिक्षित जन हैं, में तो ब्राह्म धर्म स्वीकृत हो ही गया। शेष जो लोग अकड़ के साथ कुसंस्कारों को पकड़े हुए हैं, उनसे कोई त्राण नहीं पा सकता। वे लोग ब्राह्म समाजी व्यक्ति को ब्रह्मज्ञानी कहकर व्यंग्य करते रहते हैं। हमें ऐसे संकीर्ण मन वाले लोगों के लिए चिंता करने की जरूरत नहीं है।"

दुर्गानाथ राय एक नए दल के ब्राह्मण थे। इन्होंने कलकत्ता में केशवचन्द्र सेन का तेजस्वी भाषण सुना था। उनकी शिवनाथ शास्त्री के साथ जान-पहचान थी, इसलिए ब्राह्मसमाज के अन्य सभ्य जनों की तरह वे सभी ब्राह्मणों के साथ बुरा व्यवहार करने वालों में नहीं थे। गुरुनाथ दत्त, गुणाभिराम बरुआ आदि प्रमुख जनों के दुर्गानाथ के प्रति भ्रातृसुलभ भाव थे किंतु वे दुर्गानाथ के अत्यधिक उत्साह को नियंत्रण में रखना आवश्यक समझते थे।

"दुर्गानाथ, तुमने एक ज्ञानी की तरह बात नहीं की। हम ब्राह्म समाजी इतने आत्माभिमानी होकर बात करेंगे, तो हमने जिस उद्देश्य से समाज का गठन किया है वह विफल हो जाएगा। हम भारत का ऐसा नव-निर्माण चाहते हैं, जिसमें जाति-पांति के भेदभाव की तरह नाना कुसंस्कार न हों और जहां आधुनिक शिक्षा का विस्तार हो। विश्व के अन्य सभ्य देशों की तुलना में हमें आगे बढ़ना है।" जो लोग हम पर व्यंग्य करते हैं, उन्हें अंधकार से प्रकाश की ओर लाना हमारा कर्त्तव्य है। गुरुनाथ दत्त हमेशा इस प्रकार की आलोचना के प्रवाह को बदल देते थे जब वे देखते थे कि आलोचना के तिक्तता की ओर जाने की संभावना है। उनके इसी विशेष गुण के कारण सब लोग उनका सम्मान करते थे।

उस दिन आलोचना समाप्त होने के बाद गुणाभिराम, गुरुनाथ दत्त को बुलाकर एक तरफ ले गए और उन्हें स्वर्ण के लिए एक घरेलू शिक्षक संबंधी अपनी समस्या बताई। कुछ विचार करने के बाद गुरुनाथ दत्त ने बरुआ को आश्वासन देते हुए कहा कि उनके स्कूल का एक शिक्षक रजनीनाथ दास इस दायित्व को संभाल सकेगा। स्वर्ण को अंग्रेजी की भी कुछ शिक्षा मिलनी चाहिए ताकि वह उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी अच्छे स्कूल में जा सके।

"इसी विषय को लेकर मैं बड़ा चिंतित हूं। हमारे नगांव में बालिकाओं के लिए एक भी अच्छा स्कूल नहीं है" गुणाभिराम ने दुःख से कहा।

"आप चिंता न करें" गुरुनाथ बाबू ने उन्हें आश्वासन देकर कहा। "ईश्वर चाहेगा तो स्वर्ण भी बेथुन स्कूल में पढ़ सकेगी। सुना है एनेट एफ्रीद नाम की एक अंग्रेज महिला ने द्वारिकानाथ गांगुली के साथ मिलकर कलकत्ते में लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की है। नाम है 'हिंदू महिला विद्यालय' इस स्कूल में, सुना है, शिक्षा की पद्धति अलग तरीके की है। इस विषय में केशवचन्द्र सेन के साथ द्वारिकानाथ का कुछ मनोमालिन्य है। जो भी हो, हम अच्छी तरह देखभाल कर स्वर्ण के लिए एक अच्छे स्कूल में पढ़ने की व्यवस्था करेंगे। आपका क्या विचार है?"

गुरुनाथ दत्त की बातों ने गुणाभिराम बरुआ के मन का बोझ हल्का कर दिया। किंतु स्वर्ण को कलकत्ता भेजने की बात सोचकर उनका मन विषाद से भर गया। स्नेहपूर्वक पालिता अल्पवयसी कन्या को वे किसके साथ कलकत्ता भेजेंगे और उसे भेजने के लिए उसकी मां भी तो राजी नहीं होगी। वे और विष्णुप्रिया दोनों स्वर्ण को लेकर कितने स्वप्न संजोते हैं। वे उसे एक नवीन युग के एक आदर्श रूप में गढ़ना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें अपना हृदय कठोर बनाना होगा। गुणाभिराम घर पर वापस आकर बेटी का हाथ अपनी दोनों हथेलियों में लेकर यह सब सोचने लगे।

## 12

कैंप से वापस घर आने पर तारा का समय अति व्यस्तता में निकल रहा था। 'बड़ा दिन' के पहले ही उसे अपनी वार्षिक परीक्षा भी देनी थी। उस समय नगांव में लड़कियों के दो प्राइमरी स्कूल थे। उनमें से एक नवनिर्मित बंगला स्कूल था और दूसरा पादरी लोगों द्वारा संचालित असमिया स्कूल। दोनों स्कूलों की छात्राओं की कुल संख्या पचास से अधिक न थी। इनकी वार्षिक परीक्षा लड़कों के बंगाली-स्कूल के शिक्षक नकुल बाबू के घर पर होती थी। नकुल बाबू की पत्नी स्वयं लड़कियों के स्कूल की अध्यापिका थी। परीक्षा के दिनों में उनके घर में उत्सव सरीखा परिवेश रहता था। परीक्षा एक बड़े कमरे में होती थी, दोनों

स्कूल के कुल परीक्षार्थी लगभग बीस होंगे। परीक्षा में बंगला स्कूल की अध्यापिका के अतिरिक्त एक दो मिशनरी मेम भी वहां उपस्थित रहती थीं। तारा के लिए परीक्षा का बहुत महत्व था। इस बार परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर वह मिशन की तरफ से नार्मल स्कूल में पढ़ने जाएगी। मिस कीलार की तीव्र इच्छा थी कि तारा नार्मल स्कूल में पढ़कर बालिराम के लड़कियों के स्कूल में काम करे। कैंप से लौट आने पर उन्होंने गोलापी और तारा से इस विषय पर बहुत सी बातें कर ली थीं। पहले गोलापी इसे ठीक नहीं समझती थी। पिता की मृत्यु हो जाने के बाद उसने अपनी छाती से लगाकर इस लड़की का लालन-पालन किया है। इतनी दूर अकेले उसे भेजने की बात सोचकर ही उसका मन बैठने लगता था। किंतु, उसकी आनाकानी और आपत्ति पर मिस कीलार ने उससे जो कुछ कहा उसके उत्तर में गोलापी कुछ न कह सकी। नाव में बैठकर सुदूर दिशाओं की ओर देखती हुई अरेल कीलार ने कहा था, "मेरी मां भी ठीक तुम्हारी तरह सोचती थीं गोलापी। मैं भी उनकी इकलौती संतान थी। परमात्मा के प्रति उनके अगाध विश्वास ने उनकी सारी दुर्बलताओं को जीत लिया। मेरे मिशनरी होने की इच्छा को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मैं जानती हूं मेरे आने से उनके हृदय को बहुत आघात पहुंचा था किंतु, फिर भी उन्होंने मुझे कोई बाधा न दी। अब देखो, अमेरिका के वेस्टन शहर से मैं यहां असम में आई हूं। किंतु, मैंने अपने को कभी अकेला अनुभव नहीं किया। तुम लोग यहां मेरे आत्मीयों की तरह हो गए हो। अगर, मैं इतना कर सकती हूं तो तारा क्यों न कर सकेगी?"

मिस कीलार की बातें सुनकर गोलापी, निरुत्तर हो गई। उसने स्वयं अपने विचार बदल लिए। किंतु, तारा कुछ दूसरी चिंता में थी।

"मैं तब आपके साथ अमेरिका नहीं जा सकूंगी" तारा ने निराश होकर कहा।

मिस कीलार ने हंसकर उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, "तुम क्यों चिंता करती हो? मैंने तुमसे कहा है न कि मैं तुम्हें साथ लेकर अमेरिका अवश्य जाऊंगी। किंतु, इसके पहले तुम्हें अपने आदमियों के साथ यहां काम करना होगा। तभी तुम अमेरिका के लोगों के सामने कह सकोगी कि मैं एक मिशनरी लड़की हूं।"

उसी दिन से तारा मिशनरी बनने का स्वप्न देखने लगी। उसके लिए इस संसार में एकमात्र मिस कीलार ही ज्ञानी और गुणी महिला थीं। वह भी उनकी तरह ही ईसा की वाणी का प्रचार करना, स्कूल में पढ़ाना, गाना सिखाना आदि काम करेगी। इससे गौरव की बात और क्या हो सकती है? इसलिए कैंप से वापस आकर वह बड़े मनोयोग से अपने काम में जुट गई थी। एक दिन तारा अपनी मां के साथ स्वर्ण के घर पर गई। स्वर्ण ने उनसे लक्ष्मी की शादी की बात सुनाई। तारा ने लक्ष्मी को देखा था। लक्ष्मी के घर पर भी वह अपनी मां के साथ 'जनाना काम' के उद्देश्य से गई थी किंतु लक्ष्मी की दादी ने उन्हें बाहर से ही विदा कर दिया था। इस प्रकार की घटना प्रायः हुआ करती थी इसलिए

तारा को बुरा नहीं लगा । किंतु लक्ष्मी लाजवश 'मिलने जाऊं' या 'न जाऊं' की दुविधा के बावजूद उनसे मिलने आ गई थी। तारा ने उसे एक नीति कथा की पुस्तक उपहार में दी थी। लक्ष्मी के विवाह की बात सुनकर उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। वह जानती थी कि ब्राह्मण-कन्या का विवाह छोटी उम्र में ही हो जाता है। इस पर अधिक सोचने-विचारने की आवश्यकता उसे महसूस नहीं हुई। चिंता करने के लिए उसके पास बहुत-सी बातें थीं। 'बड़े दिन' को मात्र एक सप्ताह बाक़ी था। अभी उसे बड़े दिन के वृक्ष की सजावट में मेमों की सहायता करनी थी। इसके अतिरिक्त फूल काढ़कर सबको एक-एक अच्छा रुमाल भेंट करना था, उपहार में देने के लिए टेबुल क्लॉथ जुटाना था। नवागंतुक मिकिर ग्रामीण लड़कों और लड़कियों के लिए बड़े दिन का उपहार भेजना होगा। इसलिए स्वर्ण के साथ बैठकर बहुत समय तक बात करने का तारा के पास समय कहां था? बड़े दिन के निमंत्रण के बारे में स्वर्ण को बार-बार याद दिलाकर वह वहां से चली गई।

## 13

नगांव के मिशन में आयोजित बड़े दिन के उत्सव में माइलस ब्रनसन ने गुणाभिराम बरुआ को विशेष रूप से निमंत्रण भेजा था। पहले भी वे इस उत्सव में एक दो बार सम्मिलित हुए थे किंतु वे स्वर्ण को कभी नहीं ले गए थे। इस बार स्वर्ण का आग्रह देखकर वे उसे भी साथ ले गए। इन दिनों नगांव और आसपास के अच्छे खासे क्रिश्चियन परिवारों का समागम मिशन के प्रांगण में होता था। असमिया, बंगाली, मिकिर आदि विभिन्न जातियों के क्रिश्चियन मिलकर बड़े उत्साह से यह पवित्र उत्सव मना रहे थे। गुणाभिराम सभी परिचित जनों को बड़े दिन का अभिवादन देकर अपने आसन पर जा बैठे, स्वर्ण भी अपने पिता की बगल में बैठ गई, पर उसकी आंखें चटाई पर बैठे हुए लड़के और लड़कियों के बीच तारा को ढूंढ़ रही थीं। उसे तारा कहीं दिखाई न दी। इसी बीच सामने सजे हुए बड़े दिन के एक सुंदर वृक्ष को देखकर सभी लड़के-लड़कियों में हर्ष छा गया। असल में क्रिसमस ट्री के बगल में एक दूसरे वृक्ष में रंग-बिरंगे कागजों से बने तारे, फूल और छोटे छोटे पुतले सजा दिए गए थे। स्वर्ण, जब अवाक होकर ये सब देख रही थी, तभी सुमधुर स्वर में ऑर्गन पर गुंजित गान सुनाई पड़ा और साथ ही साथ स्वर्ण ने तत्काल एक सुंदर दृश्य भी देखा कि सिर से पैर तक एक धवल पोशाक पहने तारा, मां मेरी के रूप में आगे बढ़ रही है, उसकी गोद में बाल शिशु ईसा के रूप में एक पुतला था। श्वेत वस्त्र पहने कुछ लड़के और लड़कियां गा-गाकर मेरी को आगे ले जा रहे थे। आगे ले जाकर उन्होंने मेरी को दर्शकों के सम्मुख रखी वेदी पर बैठा दिया। इसके बाद लड़के और लड़कियों ने ईसा के जन्म का एक सुंदर अभिनय किया। जब माता मेरी और शिशु ईसा को स्वर्ग के देवदूतों, गरीब

गड़ेरियों और कुछ प्राचीन राजाओं ने नमस्कार किया तो मेरी के रूप में तारा वास्तव में स्वर्ग की देवी के समान लग रही थी।

स्वर्ण ने पहले भी अभिनय देखे थे। नगांव में यात्रा पार्टी आने पर पिता को लोग घर पर आकर बुलाते थे और वह सबके साथ बैठकर अभिनय देखा करती थी। स्वर्ण को यात्रा-अभिनय देखकर अच्छा लगता था। किंतु, आज के अनुष्ठान का गांभीर्य कुछ और ही था। ऑर्गन के गंभीर और समवेत स्वर में गुंजित गीत के मधुर सुर और धवल वेशभूषा, ये सब देख सुनकर उसके मन में एक पवित्र आनंद के भाव उठने लगे।

अभिनय समाप्त होने के साथ ही छोटे लड़के और लड़कियों की खुशी, किलकारी भरी हर्ष ध्वनि बनकर गूंजने लगीं। पीठ पर एक थैला लटकाए बड़े दिन के काका जल्दी-जल्दी चलकर आए। उनकी बनावटी सफेद दाढ़ी, लाल टोपी और सफेद और लाल रंग की पोशाक देखकर सभी बच्चे, बूढ़े और जवान ताली बजाने लगे। उस वृद्ध ने बड़े दिन के सजे वृक्ष के नीचे थैला फैलाकर उसमें से एक-एक उपहार निकालकर प्रत्येक लड़के और लड़की का नाम ले लेकर बुलाया और उपहार देना शुरू किया। स्वर्ण ये सब आश्चर्य से देख ही रही थी कि उसे अपना नाम भी सुनाई पड़ा। नाम सुनकर भी उसे विश्वास नहीं हुआ किंतु जब दुबारा उस वृद्ध ने जोर से पुकारा "स्वर्णलता बरुआ" और इसी समय तारा भी लड़कियों के बीच में खड़ी होकर हंसती हुई उसे संकेत करने लगी तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर वह पिता की ओर देखने लगी। गुणाभिराम ने हंसकर उसे उठने को कहा और स्वर्ण किसी तरह जाकर अपने उपहार का पैकेट ले आई। लाज से उसके मुंह और कान लाल हो गए। किंतु, वहां पर सबको समान महत्व दिया देखकर उसका मन कृतज्ञता से भर गया। जब वह दोनों हाथों से अपना उपहार थामे हुए घर की ओर जाने लगी तो उसे ऐसा लगा मानो वह किसी मधुर स्वप्न लोक को छोड़कर जा रही है।

बड़े दिन के उत्सव से लौटकर घर के दरवाजे तक आते ही स्वर्ण अपनी मां को उपहार दिखाने के लिए दौड़कर भीतर गई। किंतु, भीतर किसी अतिथि को बैठे देखकर ठहर गई। वहां लक्ष्मी की मां और पिता आए हुए थे। लक्ष्मी की मां पहले बिल्व कुटीर में कभी आई हो, ऐसा स्वर्ण को याद नहीं था। किंतु मेहमान के बैठे रहने पर भी स्वर्ण अपनी उत्सुकता नहीं रोक पाई। लाल कागज में बंधा हुआ अपना उपहार मां को देकर वह बोली "मां ! देखो न, मुझे क्या मिला है? वे लोग मेरा नाम कैसे जान गए?"

विष्णुप्रिया पुत्री की ओर प्यार से मुस्कुराती हुई बोली, "तुम वहां जाओगी, यह जानकर लगता है तारा ने ही तुम्हारे लिए उपहार बांध कर रख दिया था। बहुत स्नेही लड़की है। भगवान उसका मंगल करे।"

स्वर्ण ने अपना उपहार खोलकर देखा तो उसमें फूल कढ़ा एक रुमाल और सूई धागा रखने का एक डिब्बा था। स्वर्ण ने खुशी से रुमाल को चूम लिया। लक्ष्मी की मां ने स्वर्ण

और उसकी मां की बातें सुन ली थीं। उसने कहा, "स्वर्ण तुम क्रिश्चियन घर से आई हो न? अच्छी तरह नहा धोकर शुद्ध हो लो।" स्वर्ण आश्चर्य से आंखें फाड़कर अपनी मां की ओर देखने लगी। विष्णुप्रिया ने उदास होकर स्वर्ण को भीतर चले जाने का संकेत किया। स्वर्ण के चले जाने के बाद शर्मा की पत्नी हंसकर बोली, "अभी छोटी है, अभी से सारी बातें नहीं समझाने पर पीछे संकट होगा।"

विष्णुप्रिया चुप रही। मेहमान से कुछ कहना उचित नहीं लगा। पर उसके मुख पर और नेत्रों में वितृष्णा के भाव थे। शर्मा की पत्नी ने इस तरफ कोई ध्यान न दिया। उनके साथ एक छोटा लड़का भी गया था। शर्मानी अपने हाथ की शराइ को विष्णुप्रिया के सामने रखकर बोली, "तुमने लक्ष्मी के विवाह की बात सुनी ही होगी। माघ में पंद्रह तारीख को विवाह का दिन तय हो गया है। आप लोगों को निमंत्रण देने आए हैं।" शर्मानी के मुख पर गर्व और आनंद के भाव अंकित हो रहे थे। आज उसकी बातचीत में एक नया आत्मविश्वास झलक रहा था। परंतु, यह सुनकर विष्णुप्रिया का आतंरिक उत्साह मंद पड़ गया।

"बहुत छोटी अवस्था में शादी करने जा रही हो। लक्ष्मी की रुचि पढ़ने-लिखने में थी। आजकल लड़कियों को उपयुक्त शिक्षा देने की बात सभी लोग कहते हैं। हमारा युग अलग था।"

"लक्ष्मी को हम छोटी कैसे कहेंगे? दसवें वर्ष में पैर रखते ही लड़की बड़ी हो जाती है। दो एक वर्ष में रजस्वला भी होगी। लड़की को पढ़ाने की बात सोचते रहने पर शादी का समय पार हो जाएगा। आपको भी एक दो साल के भीतर स्वर्ण की शादी करनी होगी न? समय पर लड़की की शादी न करने पर हमारा समाज नुकताचीनी करेगा।"

"मैंने तो स्वर्ण के विवाह के बारे में कुछ सोचा ही नहीं है। इसके पिता का यही मन है कि स्वर्ण पढ़ लिखकर योग्य बने। भाग्य में जब शादी लिखी होगी तभी होगी।" विष्णुप्रिया ने धीरे-धीरे कहा।

शर्मा की पत्नी आंखें तरेरकर और मुख मोड़कर बैठी रही। हाकिम की पत्नी की भावभंगिमा से वह ताड़ गई कि उसकी बात उन्हें भाई नहीं है। पर तर्क-वितर्क करने के लिए मुख खोलकर कुछ कहने का साहस उसे नहीं हुआ। हाकिम परिवार के जाति-बहिष्कार की बात उसने बहुत बार सुनी थी। स्त्रियों में यह चर्चा भी थी कि विष्णुप्रिया का सुंदर चेहरा, सुरुचि पूर्ण वेशभूषा, उसके तौर-तरीके और उसकी बातचीत में जो गांभीर्य प्रकट होता था, उसे देखते हुए किसी प्रकार की निंदा की बात नहीं सोची जा सकती थी। कुछ समय के लिए शर्मानी का मन अस्त व्यस्त सा हो गया। क्या अच्छा है और क्या बुरा उसकी

---

शराइ—निमंत्रण के लिए लाया गया विशेष।

समझ में नहीं आया। उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह इन सब बातों पर विचार कर सके। उसके लिए समाज के अधिकांश लोगों का जो मत है, वही अपना मत है। विष्णुप्रिया के द्वारा दिया गया तांबूल हाथ में दूर से लेकर वह जल्दी-जल्दी बाहर निकलने लगी। विष्णुप्रिया ने लक्ष्य किया कि इधर-उधर देखकर शर्मानी ने दरवाजे से बाहर निकलते समय कोई चीज घास में फेंककर पैरों से कुचल दी। हो सकता है उसका दिया तांबूल ही हो। विष्णुप्रिया बहुत देर तक बरामदे में खड़ी रही। शर्मानी जैसी स्त्री से मिलकर विष्णुप्रिया को अपना अतीत याद आने लगता है। वह अतीत की स्त्री को अपने मन से हटा देना चाहती है। उसके लिए वर्तमान ही मूल्यवान है। गुणाभिराम का हाथ पकड़कर वह विस्तृत संसार में बहुत दूर निकल आई है और उसे अभी बहुत दूर जाना बाकी है। उसे अपने स्वर्गीय पति परशुराम बरुआ से भी यथेष्ट प्यार और आदर मिला था किंतु उस समय वह पंचानन शर्मा की पत्नी की तरह संकीर्णता के गर्त में थी और अन्य विविध विषयों से भी अनभिज्ञ थी। उस अज्ञानांधकार में रहकर भी वह खुश थी। अब यह सब सोचकर उसे हंसी आने लगती है। ज्ञान का प्रकाश-कण पाने के लिए उसे अत्यधिक मानसिक अशांति का भार ढोना पड़ा किंतु, आश्चर्य। इस अशांति के साथ जीवित रहने में ही मानो उसे वास्तविक तृप्ति मिलती है।

## 14

बड़े दिन के बाद ब्राह्म लोगों का माघोत्सव पर्व था। राजा राममोहन राय द्वारा ब्राह्म समाज की प्रस्थापना के बाद से ही प्रत्येक वर्ष माघ महीने की 11 तारीख को यह उत्सव मनाया जाता रहा है। नगांव के ब्राह्म समाजियों में अधिकतर बंगाली थे। बहुत समय से असम में निवास करने के कारण उनकी बोली असमिया लोगों की तरह हो गई थी। विवाह संबंध और उच्च शिक्षा पाने के लिए उन्होंने कलकत्ता के साथ अवश्य अपना संबंध सुदृढ़ बना रखा था। माघोत्सव के अनुष्ठान में विशेषतः वे लोग ही आगे रहते थे। इसलिए गीत और बातचीत वगैरह बंगला में ही होती थी। गुणाभिराम की हमेशा यह इच्छा रहती थी कि असमिया लोगों के हृदय में भी ब्राह्म समाज के प्रति अपनापन आए। इसीलिए इस बार माघोत्सव में असमिया धर्म संगीत आदि का उन्होंने विशेष आयोजन किया था। गुरुनाथ दत्त और अन्य बंगाली सज्जनों ने भी इस बार अपनी सहर्ष सम्मति व्यक्त की। सत्र के शिष्य चंद्रकांत महंत बहुत मधुर वरगीत गाते थे। नगांव के लोग उन्हें जानते थे। गुणाभिराम ने माघोत्सव पर उनसे दो वरगीत सुनाने का अनुरोध किया था। महंत ने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी और अपने प्रयास से स्वर्ण और एक दूसरी लड़की को एक वर गीत सिखा कर उनसे गवाने का दायित्व भी लिया।

इसीलिए बड़े दिन के बाद से स्वर्ण अत्यधिक व्यस्त रही। एक तरफ वरगीत का अभ्यास और दूसरी तरफ घर पर रजनीनाथ शिक्षक से अंग्रेजी और अंक की पढ़ाई। रजनीनाथ बड़े सख्त व्यक्ति थे। पंचानन शर्मा के पढ़ाते समय स्वर्ण कभी कभी आलस्य भी कर जाती थी, किंतु अब थोड़ी देर के लिए भी अन्यमनस्क होने पर रजनीनाथ जोर से किताब बंद करके गुस्सा होकर कहते, "पढ़ने में अगर मन नहीं लगता है तो पिता को एक अच्छा वर ढूंढने के लिए कहना और रो-रोकर ससुराल जाना।"

स्वर्ण के लिए इससे बड़ा दंड कल्पना से बाहर था। क्षण-पल में ही उसकी आंखों में आंसू छलछला पड़ते, गाल और मुंह लाल हो जाते और रजनीनाथ का भी मन खराब हो जाता किंतु, वे अपने शिष्य को छूट नहीं दे सकते थे। अतः फिर पढ़ना प्रारंभ हो जाता था। रजनीनाथ ने स्वर्ण में यथेष्ट बुद्धि देखी थी और उनका विश्वास था कि इस लड़की को उपयुक्त सुविधा मिले तो वह निश्चय एक दिन असम में प्रथम एंट्रेंस पास लड़की होगी।

बड़े दिन के उत्सव में जाने के बाद स्वर्ण का एक काम और बढ़ गया। उपहार में मिले सूई और धागों का डिब्बा उसके आनंद की वस्तुएं थीं। खाली समय मिलने पर वह रुमाल में फूल काढ़ने बैठ जाती। विष्णुप्रिया बहुत धैर्य से उसे सिलाई सिखाती थी। अपनी बेटी की अंगुलियों में सूई-धागा देखकर उसका मातृहृदय ममता और प्यार से भर जाता था।

देखते देखते माघोत्सव का दिन आ गया। प्रातः काल से ही ब्राह्म मंदिर के प्रांगण में लोगों की हलचल थी। मंदिर के बाहर दरी बिछाकर निमंत्रित लोगों के बैठने की जगह कर दी गई थी। निमंत्रित लोगों में नगांव के ब्राह्मसमाज के व्यक्तियों के अतिरिक्त अच्छी संख्या में हिंदू, मुसलमान, और क्रिश्चियन थे। सभी को बैठने के लिए समान आसन दिया गया था। मंदिर में जूते ले जाने की मनाही नहीं थी पर भारतीयों में से कुछ लोग स्वेच्छा से जूते उतारकर भीतर प्रवेश करते थे।

धर्म ग्रंथ के पाठ से अनुष्ठान की शुरुआत हुई। वेद, उपनिषद, कुरान और बाइबिल के विशेष अंशों का पाठ करने के बाद धर्म संगीत आरंभ हुआ।

सर्वप्रथम विष्णुचंद्र चक्रवर्ती का विख्यात बंगला धर्मसंगीत समवेत स्वर में गाया गया। उसके बाद डेविड के दो गीत बैप्टिस्ट समाज के कई छोटे छोटे लड़कों ने गाए। अंत में चंद्रकांत महंत, स्वर्ण और राजू नाम की बंगाली लड़की ने वरगीत और घोषा गाकर दर्शकों का मन मोह लिया।

चंद्रकांत ने स्वयं खोल बजाकर जब "सुन सुन रे सुर बैरी प्रमाना" गाया तो सभा के सभी लोगों ने समवेत स्वर में 'साधु साधु' कहकर प्रशंसा की। वहां समुपस्थित सभी लोगों ने पहले किसी के मुख से वरगीत नहीं सुना था। असमिया में इतना मधुर गीत है, जानकर वे लोग अवाक थे। अंत में जब स्वर्ण और राजू ने पाट का मेखला पहन कर लय

के साथ "हरि नाचे कृष्ण" गाकर सुनाया तो गुणाभिराम और विष्णुप्रिया आनंद और गर्व से अभिभूत हो गए। यह आनंद केवल अपनी बेटी की प्रशंसा सुनने के कारण नहीं था, बल्कि इतने सारे लोगों के सामने असमिया संस्कृति का परिचय होने के कारण उनके मन में एक जातीय गौरव की भावना जागृत हो गई थी।

माघोत्सव के दिन ब्राह्म समाजी सभी एक साथ बैठकर चाय जलपान करते थे। परोसने और खाने में उन लोगों के बीच जाति-पांति और ऊंच नीच का भेदभाव न था। सभी मनोविनोद करते हुए एक साथ खाते थे। विष्णुप्रिया के लिए यह परिवेश नया था। एक पुराने ब्राह्मण परिवार के कठोर नीति नियम के बीच बड़ी होने के कारण अचानक इस प्रकार का मुक्त परिवेश उनके लिए सच में अद्‌भुत था। किंतु, धीरे धीरे इस उदार समाज के अनुकूल अपने को बनाने के कारण उनके मन का संकोच और भय मिट गया था। फिर भी, उनके कुछ विचारों में अभी भी परिवर्तन नहीं आ पाया था। ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरों द्वारा रांधा भात अब तक उन्होंने नहीं खाया था। परिस्थिति की बाध्यता होती तो शायद खा लेती किंतु आदि ब्राह्म समाज के सभ्य लोगों के बीच अभी भी कुछ ऐसी विचारधारा वर्तमान थी, जो जाति पांति के पुराने भेदभावों का पोषण करती थी यद्यपि गुणाभिराम के सभी अंतरंग बंधु इस परिपाटी के थे किंतु फिर भी वे स्वयं पूरी तरह केशवचंद्र सेन की नवीन विचारधारा को आत्मसात् नहीं कर पाए थे। अतः इन्होंने विष्णुप्रिया के कुछ विश्वासों में बाधा नहीं पहुंचाई थी।

## 15

माघोत्सव के दो दिनों बाद ही लक्ष्मी के विवाह का दिन था। स्वर्ण बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। अभी तक वह किसी के यहां विवाह के भोज में नहीं गई थी। किंतु उसकी 'आई' अपने मुंह से विवाह के संबंध मे जितना बता सकती थी, बता चुकी थी। वैसे तो विष्णुप्रिया भी स्वर्ण के अधिकांश प्रश्नों का उत्तर दे सकती थी किंतु वे विवाह के विषय में बेटी को कुछ कहना नहीं चाहती थी। बहुत से प्रश्नों का उत्तर मां से न पाकर स्वर्ण निराश होकर अंत में 'आई' की बातों पर ही निर्भर रहती थी।

नगांव में आने के बाद विष्णुप्रिया और गुणाभिराम एक दो ब्राह्म विवाहों में गए थे किंतु ब्राह्मण विवाह में वे कभी नहीं गए थे। पुराने नैष्टिक ब्राह्मण उन्हें निमंत्रित नहीं करते थे क्योंकि वे ब्राह्म धर्मावलंबियों को क्रिस्तान समझते थे। पंचानन शर्मा ने उन्हें विवाह में निमंत्रित किया था इसलिए गुणाभिराम को थोड़ा आश्चर्य भी हुआ। आजकल लोग कुछ उदार हो गए हैं, इसीलिए उन्हें निमंत्रित किया गया है, ऐसा बरुआ ने मान लिया था। फिर भी उन्हें अपनी पत्नी को विवाह में भेजने में द्विविधा हो रही थी। किंतु, उस दिन

उनकी तबीयत खराब हो गई। सर्दी-जुकाम और सामान्य ज्वर भी था। मां और बेटी को सजधज कर निकलते देखकर उन्होंने चिंतित भाव से कहा, "तुम बग्घी को विवाह गृह के बाहर ही खड़ी रखना और यदि कोई असुविधा महसूस हो तो दोनों साथ साथ वापस आ जाना।"

विष्णुप्रिया आश्चर्य से अपने पति की ओर देखती रही। अचानक ऐसा संदेह पैदा कर देने का कारण वह समझ नहीं पाई। गुणाभिराम ने आगे कुछ और नहीं कहा। विष्णुप्रिया जब लक्ष्मी को उपहार में देने के लिए सोने का एक नया हार बांधने लगी तो उसके मन में संदेह सा होने लगा। स्वामी से स्पष्ट रूप में कुछ पूछने का मन भी उसे नहीं हो रहा था। अगर कोई विशेष बात होती तो स्वामी स्वयं कुछ कहते। ऐसा विचार करके वह स्वर्ण को साथ लेकर घर से निकल गई। स्वर्ण, गुलाबी रंग की चिकन की फ्राक पहनकर पक्षी की भांति, आनंद से कूदती हुई गई। यह फ्राक उसके पिता कलकत्ता से लाए थे। फ्राक उसके ऊपर खूब फब रही थी। घर के सभी ने यह बात कही भी। मन की खुशी ने उसके नेत्रों में और मुख पर चमक ला दी थी। बेटी की भोली मुखाकृति देखकर विष्णुप्रिया का हृदय विह्वल हो गया। वह जिसके विवाह में जा रही थी, उसकी अवस्था स्वर्ण से बहुत अधिक न थी। वह लड़की भी विवाह का क्या अर्थ समझती होगी?

विवाह गृह तक पहुंचते ही कई स्त्रियां विष्णुप्रिया के निकट आईं और उन्हें बुलाकर भीतर ले गईं। उन्होंने उन्हें बैठने के लिए आसन दिया और तांबूल देकर उनका स्वागत किया। मरल के सामने वधू वेश में बैठी लक्ष्मी ने जब स्वर्ण को देखा तो जल्दी से उठकर स्वर्ण से गले मिली। विष्णुप्रिया ने भी लक्ष्मी को प्यार किया और सोने का हार उसके हाथ में रख दिया। दो लड़कियों ने आकर फिर लक्ष्मी को मरल के आगे बैठा दिया। स्वर्ण भी लक्ष्मी के पास ही जाकर बैठ गई। पाट का रिहा, मेखला और सिंदूर का टीका किसी लड़की की मुख शोभा में कितना परिवर्तन ला सकता है? स्वर्ण अवाक होकर लक्ष्मी की मुखाकृति देखती रही।

इसी समय सधवा स्त्रियों ने 'जात-जात बिया नाम' गाना शुरू कर दिया। विष्णुप्रिया का मन अपने अतीत की ओर चला गया। प्रथम विवाह के समय उसकी अवस्था भी लक्ष्मी के बराबर ही थी। रह रहकर उसे अपने विवाह का दिन याद आ रहा था।

भूख-प्यास, नींद और लज्जा के अतिरिक्त दूसरी कोई बात उसे याद नहीं। दूल्हा कौन था? क्या पहने था? कब आया था? विवाह कैसे हुआ आदि उसे कुछ भी याद नहीं। मात्र नींद में आग की लौ और हाथ पकड़कर परिक्रमा करना, याद आता है। उस समय उन्होंने अपने भविष्य के बारे में एक बार भी कुछ नहीं सोचा था। दूसरों ने उससे जैसा करने को कहा, वह निर्विवाद रूप से सब करती गई थीं। विवाह के बाद भी पति-गृह में जाकर उसने

---

मरल-आइना

दूसरों के आदेश का ही पालन किया था। स्वामी, ससुर, सास आदि कुटुम्बी जन के संतुष्ट होने के कारण, उसके पारिवारिक जीवन में कोई अशांति न थी। किंतु स्वामी परशुराम बरुआ की मृत्यु के बाद सभी कुछ मानो उलट पुलट हो गया। दो छोटी छोटी बेटियों को छाती से बांधकर वह कठोर विधवाव्रत का पालन करते करते थक गई। तभी उसके स्वामी के पुराने बंधु गुणाभिराम बरुआ ने उसे नए जीवन की दिशा बताई। पहले तो इस प्रस्ताव को सुनकर वह भय से सिहर गई। किंतु, इसके बाद गुणाभिराम ने जब उसे विद्यासागर की महान वाणियों का तात्पर्य समझाया तो उसका मन पूरी तरह बदल गया। पति के रूप में गुणाभिराम को स्वीकार करने के पहले भी वह उन्हें बंधु और पथ प्रदर्शक के रूप में पहचानती थी। गुणाभिराम ने ही उसे पहले सामाजिक अन्याय के विरोध में प्रतिवाद करना सिखाया था। मात्र तर्क और युक्ति द्वारा नहीं, अपने जीवन में साहसी काम करके। यह जानकर आश्चर्य होता है कि विष्णुप्रिया जैसी एक दुर्बल और भीरु नारी किस प्रकार सारे समाज के विरुद्ध होकर द्वितीय विवाह करने के लिए अग्रसर हो पाई। 'बियानाम' सुन सुनकर वह बहुत समय तक इन्हीं सब बातों में डूबी रह गई। अचानक स्वर्ण के हाथ के स्पर्श से वह जागृत हो गई।

"क्या हुआ, माइसना?

"मां, और सबको भीतर बुला लिया गया पर हमें क्यों नहीं ले गए?" स्वर्ण ने धीरे से फुसफुसाकर पूछा।

"समय सुविधानुसार ले जाएंगे। इतना अधीर मत हो, माइसना" विष्णु प्रिया ने विरक्ति से यह बात स्वर्ण से कही, किंतु तभी आंखें घुमाकर पंडाल के भीतर देखा कि घर के लोगों को छोड़कर बाहर की निमंत्रित सभी महिलाएं भीतर चली गई हैं। यह भी देखा कि कन्या की चाची और बुआ दोनों उनकी तरफ देखकर कुछ जटिल समस्या जैसी बातचीत धीरे धीरे कर रही हैं।

विष्णुप्रिया को अच्छा नहीं लगा। उनके पास बैठी कृष्णा पुरोहित की पत्नी देवेश्वरी भीतर से आकर फिर वहां बैठ गई। किंतु, इस बार अपराधी की तरह दूर हट कर बैठी। वह आंखों की ओट से विष्णुप्रिया को देख लेती थी। विष्णुप्रिया ने इशारे से उसे अपने निकट बुलाया। उसके पास आने पर विष्णुप्रिया उससे धीरे से बोली, "बहुत देर हो गई है, अब जाना चाहती हूं। कन्या की मां को जरा बुला देना तो।" देवेश्वरी आंखें फाड़कर आश्चर्य से बोली, "ऐं, इस तरह कुछ भी बिना खाए-पीए चले जाने से लोग बुरा मानेंगे दीदी। आपके आने से सबको बहुत अच्छा लगा है, भीतर बैठाने की बात को लेकर कुछ असुविधा हो रही है। ब्राह्मण सधवाओं के साथ आपको बैठा नहीं सकते। विधवाओं के साथ बैठाने के लिए आपके धर्म के विषय में कुछ चर्चा हो रही है। आदमी लोग दोष पकड़ते हैं न।"

देवेश्वरी की बात समाप्त होने के पहले ही विष्णुप्रिया धीरे से उठ खड़ी हुई। एक हाथ से चादर का आंचल खींचकर पकड़ा और दूसरे हाथ से स्वर्ण का हाथ जोर से पकड़कर पंडाल से बाहर चल पड़ी। पंडाल के भीतर शोरगुल होने लगा। स्वर्ण और उसकी मां चली गई। ऐसा कहकर कन्या ने रोना शुरू कर दिया। लक्ष्मी की मां और दो अन्य महिलाएं विष्णुप्रिया के पास पहुंची और हाथ जोड़कर वापस आने का आग्रह करने लगीं। किंतु, विष्णुप्रिया नहीं लौटीं। उसने अपने को संभालते हुए भद्रता पूर्वक कहा, "मैं कन्या को आशीर्वाद देने ही आई थी। बिया घर में मैं खाना पीना कभी नहीं करती" यह कहकर वह धीरे धीरे चलकर अपनी बग्घी के पास आई और उसमें बैठ गई। बग्घी के चलने के बाद ही उसने स्वर्ण का हाथ छोड़ा। इतनी देर तक वह जोर से स्वर्ण का हाथ पकड़े हुए थी, इसका उसे ध्यान ही न था। हाथ में दर्द हो जाने के कारण स्वर्ण की आंखों से आंसू निकल रहे थे। बग्घी के चलने के साथ-साथ विष्णुप्रिया की आंखों से आंसुओं की धार बहते देखकर स्वर्ण हतप्रभ थी। अपनी मां को इस प्रकार रोते हुए उसने नहीं देखा था। उसे ऐसा लगने लगा कि खकुआ की तरह विवाह भोज खाने के लिए जाने के कारण ही यह सब हुआ है। यह सोचकर उसे बड़ा अफसोस हुआ। मां से लिपटकर उसने सिसक सिसककर कहा, "मैं अब कभी विवाह का भोज खाने के लिए तुमसे नहीं कहूंगी मां। तुम ऐसे मत रोओ।"

बेटी की बात सुनकर विष्णुप्रिया और नहीं सह पाई और उसके बालों में सिर छुपाकर भग्न स्वर में बोली, "इस तरह के विवाह में अब हम कभी नहीं जाएंगे, भाइसना ! हम अच्छे विवाहों में जाया करेंगे, जहां कोई किसी से घृणा नहीं करता।"

घर के सामने पहुंचने पर विष्णुप्रिया को अपने पति की बातें याद हो आईं, जो उन्होंने उनके जाते समय कही थीं। इसका अर्थ है कि उन्हें अनुमान था कि वहां ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ सकता है। पति के पास पहुंचते ही विष्णुप्रिया जोर से रोते-रोते बोली—आपने जानते बूझते हुए हमें वहां क्यों जाने दिया?"

पत्नी का मुख देखते ही गुणाभिराम सारी बातें समझ गए। उनके चेहरे पर एक गंभीर वेदना की छाया दिखाई दी। गहरा निश्वास लेकर वे बोले, ''मैं समझता था कि समाज में कुछ परिवर्तन आया है। पंचानन शर्मा पढ़े-लिखे शिक्षित व्यक्ति हैं। उनके घर में संकीर्णता कम होगी। ऐसी आशा थी । यही समझकर मैंने तुम्हें वहां जाने दिया था। किंतु, मेरी ध ारणा गलत थी। भविष्य में कभी कहीं इस तरह की शादी में मत जाना। स्वर्ण को भी मत जाने देना। उसके मन को बहुत आघात पहुंचेगा।"

"बेचारी स्वर्ण आज रो-रोकर बेहाल हो रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि कितने दिन उससे सारी बातें छुपाकर रखूंगी।"

"छुपाने की कोई जरूरत नहीं। हमने कुछ खराब काम नहीं किया है। शास्त्रीय विधान

के अनुसार ही हम दोनों ने विवाह किया है। हमारे भीतर किसी तरह के पाप व अपराध की भावना नहीं आनी चाहिए। समाज की संकीर्णता हमें जितनी चोट पहुंचाए, उतना ही हमारा आत्म-विश्वास और मनोबल बढ़ना चाहिए। जब लड़के-लड़की बड़े हो जाएंगे, हम उन्हें सारी बातें समझाकर कह देंगे।"

"किंतु, वे हमारी बातों को सत्य मानेंगे, तभी न।"

"हम अगर उनके सामने सत् आदर्श रख सकेंगे तो वे समझेंगे कि समाज की कौन सी बात अच्छी है और कौन सी खराब। इसीलिए हमें उन्हें उचित शिक्षा देनी होगी और उदार मनोभावनाओं वाले व्यक्तियों की संगति देनी होगी। बंधु-बांधवों के बीच भी ब्राह्म लोगों के अतिरिक्त हमें समझने वाला दूसरा कौन है?''

"हमारे असम में इस तरह के उदारमना लोगों का मिलना मुश्किल है। हमारे अपने संबंधी तक हमारा साथ नहीं देते" विष्णुप्रिया ने ये बातें निराशा के स्वर में कहीं।

गुणाभिराम चिंतामग्न रहते हुए कुछ समय तक चुप रहे। आजकल कुछ दिनों से उनके मन में एक नई चिंता घर कर गई। पत्नी के सम्मुख स्पष्ट रूप से कुछ कहने का साहस उन्हें नहीं हुआ। उनके समान आशावादी व्यक्ति के मन में इस तरह की चिंता होना ही उनकी पराजय की सूचना थी। यह वे अच्छी तरह जानते थे। तो भी, आज हठात् उन्होंने विष्णुप्रिया के सामने अपने मन की शंका प्रकट की।

"मैं भी चिंतित हूं। अंत में, क्या देशांतर में जाकर हमें रहना होगा? असम का समाज ही हमें स्वीकार नहीं करता; यहां देहावसान होने पर लगता है कोई हमारे मृत शरीर का सम्मान भी करने वाला नहीं मिलेगा।'' गुणाभिराम ने हंसने की चेष्टा की किंतु इस हंसी में विष्णुप्रिया कठोर यथार्थ की छवि देख रही थी! निकट भविष्य में तो असमिया समाज में किसी प्रकार का नया परिवर्तन संभव नहीं है। ऐसी जगह पर अपने लिए नहीं तो कम से कम लड़के लड़कियों के भविष्य की बात सोचकर कहीं ऐसी जगह जाना होगा, जहां उनकी तरह की विचारधारा के और बहुत से लोग होंगे। विष्णुप्रिया और गुणाभिराम प्रायः कलकत्ता की बातें किया करते थे। यह विचित्र महानगरी मानो हाथ उठाकर उन्हें सम्मानित कर रही हो। किंतु अपनी जन्मभूमि का मोह तजकर अन्यत्र की पुकार सुनने के लिए अभी भी वे राजी नहीं थे। अभी तक अपनी भूमि को छोड़ने की मानसिक दृढ़ता उनमें नहीं आ पाई थी।

## 16

तारा परीक्षा फल पाते ही बिल्व कुटीर में जाने के लिए आतुर थी। वह नगांव की सारी छात्राओं में द्वितीय हुई थी। बंगाली स्कूल की एक छात्रा प्रथम हुई थी। यह शुभ संवाद

पाकर विष्णुप्रिया ने तारा को अपने पास बुलाकर प्यार किया और उसे शुभाशीर्वाद दिया। विष्णुप्रिया का सरल व्यक्तित्व और उसकी प्यार भरी बातें तारा को बहुत अच्छी लगती थीं। मिशनरी साहब और मेमों के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा भक्ति थी किंतु गुणाभिराम बरुआ और विष्णुप्रिया उसे आत्मीय लगते थे। उनके सामने अपने व्यवहार और बातचीत में अनवरत सतर्कता की आवश्यकता नहीं थी। वे लोग उसके लिए अपने ही संसार के प्राणी थे, साहबों की तरह स्वर्ग के तारे नहीं।

स्वर्ण जाकर जल्दी से अपने पिता को तारा के आने की खबर दे आई। गुणाभिराम ने तारा को अपने पढ़ने के कमरे में बुलाया और पूछा कि वह और आगे क्या करना चाहती है? तारा ने एक ही उत्तर दिया, "मैं नार्मल पढूंगी, उसके बाद बालिराम के स्कूल में पढ़ाने जाऊंगी।"

तारा के उद्देश्य को सुनकर गुणाभिराम उसकी प्रशंसा करते हुए बोले, "तुम्हारी तरह हमारी सारी लड़कियों का जीवन किसी एक लक्ष्य पर चलता तो हमारी जाति की बहुत उन्नति हो जाती। किंतु, हममें एक ही दोष है, हम अपनी लड़कियों को मात्र घर के कामकाज के उपयुक्त बनाना चाहते हैं उनके मन में अन्य काम करने की प्रेरणा नहीं भरते।" ऐसा कहकर वे अपनी किताबों की आलमारी से एक किताब निकाल लाए। यह पुस्तक ब्रनसन साहब की लिखी हुई थी—"असमिया अभिधान"। पुस्तक खोलकर उन्होंने प्रथम पृष्ठ पर सुंदर अक्षरों में लिखा, "कल्याणी तारा के उज्ज्वल भविष्य की शुभ कामनाओं के साथ गुणाभिराम बरुआ।" किताब बंदकर तारा के हाथ में देते हुए उन्होंने कहा, "इससे अच्छा दूसरा उपहार मैं तुम्हें नहीं दे सकता— जिस महापुरुष ने यह पुस्तक लिखी है, तुम भी उनके आदर्शों पर चलकर देश और समाज की भलाई के काम करना।"

तारा ने बड़े प्रेम से अपने हाथ में पुस्तक लेकर सिर झुकाया। यों तो गुणाभिराम बरुआ की बातों का अर्थ वह खूब अच्छी तरह नहीं समझ पाई, पर उस समय उसके मन में यह भाव आया कि मानो वह अन्य साधारण लड़कियों की तरह नहीं हैं। गुणाभिराम बरुआ, ब्रनसन साहब, मिस कीलार सभी को उससे बहुत आशाएं हैं, उसे उन सबकी आशाएं पूरी करनी होगी। एक नए दायित्व का अनुभव करते हुए वह धीरे धीरे बिल्व कुटीर से चली आई। नार्मल स्कूल में भर्ती होने के बाद उसके पहनने, ओढ़ने के ढंग में कुछ परिवर्तन आया। रंगीन मेखला और जैकेट कुर्ता के ऊपर अब वह एक चादर भी लेती। सूती चादर लपेटकर पहनने पर कंधे के पास पिन लगा लेती थी। सारी बहुएं बाहर निकलने पर ऊपर से एक चादर ले लेती थीं इस प्रकार चादर लेने का एक नया नियम आरंभ हुआ था। साधारणतः क्रिश्चियन लड़कियों को इस तरह चादर लेते स्वर्ण ने नहीं देखा था। असमिया युवतियां ही प्रायः रिहा, मेखला पहनती हैं और बहुएं बाहर निकलने पर ऊपर से चादर डाल लेती हैं। गरीब घर की लड़कियां ब्लाउज नहीं पहनती थी। वे मेखला ऊपर तक पहन

कर ऊपर से कभी कभी गमछा व कोई चादर मोड़कर पहन लेती हैं। गरीब होने पर भी क्रिश्चियन लड़कियों के पहनने ओढ़ने का ढंग बहुत अच्छा होता है। मिशन स्कूल की लड़कियां अधिकतर ऊपर जैकेट या टॉप और पैरों में सेंडिल पहनती हैं किंतु, तारा की पोशाक सभी से अधिक सुंदर लगती थी। परम्परागत साधारण सूती पोशाक वह इतनी अच्छी तरह पहनना जानती थी कि रास्ते में जाते समय सभी की दृष्टि एक बार उसकी तरफ चली ही जाती थी। किंतु कभी किसी ने उसको चिढ़ाया नहीं था। इसका कारण उसके भीतर का आत्मविश्वास था। उसकी तरह निडर होकर चलने वाली नगांव में कितनी लड़कियां थीं। नगांव के पुराने अच्छे परिवार के लोग मिशन स्कूल की लड़कियों को, अपनी जाति की लड़कियों से कुछ विशेष प्राणी समझते थे। उनके घर की सयानी लड़कियां छत के नीचे ही बड़ी होती थी। वे क्रिश्चियन लड़कियों की तरह सिर खोलकर स्वच्छंद नहीं घूमती थीं। ऐसा करना उनके लिए कल्पना के बाहर की बात थी। गुणाभिराम की तरह अन्य दो चार लोगों के मुंह से सुनी हुई नारी स्वाधीनता की बातों का वे घोर विरोध करते थे। उनकी धारणा थी कि निम्न जाति के गरीब लोगों को ईश्वर ने ही जी तोड़ परिश्रम करने के उपयुक्त बनाया है। इसलिए धूप और वर्षा में वे खुले रूप में घूम फिर सकते हैं। उनके अपने घर की स्त्रियों का सृजन भी जन चक्षुओं की सीमा से बाहर घर की चहारदीवारी में रह कर गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए हुआ है। सृष्टि के इस नियम का उल्लंघन करना महाप्रलय को आमंत्रित करना है। अतः नगांव के तथाकथित सज्जन गृहस्थ अपने घर की बहू-बेटियों को तारा के आसपास फटकने भी नहीं देते थे।

तारा के दिन व्यस्तता में व्यतीत हो रहे थे। सुबह नार्मल स्कूल जाना, दोपहर में मेमों के साथ जनाना काम पर निकलना, इसी बीच कभी कभी मिशन स्कूल के काम में मिस कीलार की मदद करना, गरीब क्रिश्चियन लड़के और लड़कियों के लिए कपड़े सीना व ऊन बुनना इन्हीं सब कामों में उसका समय व्यतीत हो जाता था। कभी कभी वह मिशनरी साहब और मेमों को असमिया में अनुवाद करने में सहायता कर देती थी। लोकभाषा सीख कर उसमें किताबें लिखने के लिए सभी साहब, मेम तारा को हमेशा उत्साहित करते रहते थे। वह स्वयं भी किसी छोटी पुस्तक का असमिया अनुवाद करने लगती तो साहब मेमों को बहुत आनंद आता था और वे उसे सब प्रकार से लिखने की प्रेरणा देते थे।

इधर अपनी द्वितीय पत्नी और जवान लड़की मेरिया की मृत्यु के बाद से ब्रनसन साहब का शरीर दिनों दिन गिरता जा रहा था। भग्न मन और दुर्बल काया के बावजूद मिशन के सारे कामकाज संभालने के कारण सारे क्रिश्चियन उनसे अभिभूत थे। हर व्यक्ति चाहता था कि किसी तरह उनका कष्ट कम हो और उनके जीवन में कुछ प्रसन्नता आए। गोलापी ने भी उनकी अवस्था को देखकर कहा कि ब्रनसन साहब को परिचर्या और घरेलू कामकाज के लिए किसी व्यक्ति की नितांत आवश्यकता है और इस काम के दायित्व को सुचारु

रूप से संभालने की क्षमता तारा से अधिक किसी में नहीं है। ब्रनसन साहब ने पहले तो इस प्रस्ताव पर आपत्ति की। गोलापी को अकेली छोड़कर तारा को अपने पास रखने में उन्होंने किसी प्रकार अपनी सम्मति नहीं दी। किंतु, उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। इसलिए मेमों ने उन्हें गोलापी का प्रस्ताव मान लेने के लिए बाध्य किया। ब्रनसन साहब के कागजातों से लेकर उनकी औषधि और खानपान आदि सबका ध्यान रखने के लिए तारा जैसी बुद्धिमती और कर्मठ लड़की की ही जरूरत थी। इसलिए, अंत में साहब ने अपने हितैषियों की बातें मानकर तारा को अपने घर में रहने की अनुमति दे दी। जीवन में प्रथम बार मां को छोड़कर जाने में तारा को खराब अवश्य लगा किंतु गोलापी उसके पास प्रतिदिन जाकर उसकी खोज खबर ले आती थी। धीरे धीरे उसने अपने को नई परिस्थिति के अनुकूल बना लिया। अपने ऊपर इतना बड़ा दायित्व सौंपे जाने के कारण, वह गौरव का अनुभव कर रही थी।

दो दिनों के अंदर ही तारा ने साहब के बंगले के सारे नियम जान लिए और आत्म विश्वास के साथ साहब के घर के सारे कामों पर दृष्टि रखने लगी। अल्पवयस्का लड़की की कर्तव्यनिष्ठा और दायित्व बोध देखकर सारे पादरी आश्चर्य करते थे। ब्रनसन साहब ने भी तारा को अपनी लड़की की तरह प्यार देना आरंभ किया और इसीलिए उन्होंने उस कमरे में तारा को रहने की अनुमति दे दी जिसमें उनकी बेटी की अनेक स्मृतियां संचित थीं। तारा को कमरे में अकेली रहने में पहले भय लगा, किंतु मां ने उसे अभय प्रदान करते हुए कहा कि जिसके घर में ब्रनसन जैसे साक्षात ईश्वर के दूत रहते हैं वहां भय को कोई स्थान नहीं। तो भी मेरिया के बिछौने पर सोने में उसे संकोच होता था। अतः उसने नीचे चटाई पर बिस्तर बिछा कर सोने का निश्चय किया।

## 17

नगांव के सरकारी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के लिए आसपास और दूर दूर के भी काफी लड़के आए थे। स्कूल का अपना होस्टल न होने के कारण दूर से आए हुए लड़के लोगों के घरों में रहकर पढ़ा करते थे। गुणाभिराम ने स्कूल के लड़कों के रहने के लिए अपने घर में फूस और बांस के दो कमरे बनवा दिए थे। दस-बारह लड़के वहां रहकर पढ़ते थे। वे स्वयं भात बनाकर खाते थे। यद्यपि गुणाभिराम के घर से शाक-भाजी, जलपान के चावल, दूध आदि चीजें बहुधा भेज दी जाती थीं। हाकिम की पत्नी से स्नेह और आदर पाने के कारण लड़के उनसे अधिक भय नहीं करते थे किंतु हाकिम से डरते थे और उनका आदर भी करते थे। इसी कारण दूर से ही उन्हें देखकर लड़के सिर नीचा करके छुप जाते थे जिस रास्ते से वे आते जाते थे, लड़के जल्दी उस रास्ते से नहीं गुजरते थे। उन्होंने घर के पीछे से एक अन्य

मार्ग बना लिया था। गुणाभिराम ने लड़कों की मनःस्थिति को पहचानकर अपने को उन लड़कों का अभिभावक मान लिया था।

छात्रों में लक्षेश्वर 'कटकी' अन्य लड़कों से कुछ विलक्षण था। उसका घर कलियावर में था। घर की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न थी। यही अपने घर का सबसे बड़ा लड़का था। बचपन में पढ़ने लिखने में चतुर होने के कारण पिता कष्ट करके उसे हाई स्कूल में पढ़ा रहे थे। उनकी इच्छा थी कि एंट्रेंस परीक्षा पासकर लक्षेश्वर किसी सरकारी नौकरी में लग जाए ताकि घर में सुख सुविधा हो।

लक्षेश्वर अन्य लड़कों की तरह हाकिम को दूर से देखकर नहीं भागता था। हमेशा उनसे आदर पूर्वक बातचीत करता था। गुणाभिराम के किसी प्रश्न का उत्तर विनय पूर्वक देता था। अपने मृदुल व्यवहार के कारण वह हाकिम का प्रिय पात्र हो गया था। धीरे धीरे वह उनके प्रातः भ्रमण के समय उनके साथ हो लेता था। साथ के लड़कों को इससे ईर्ष्या होती और यह लक्ष्य करके उसे बड़ी खुशी होती थी। जब लड़के उसे हाकिम का जमाई कहकर चिढ़ाते तो वह मुख से उसका प्रतिवाद करता था किंतु बुरा नहीं मानता था। उसके सहपाठियों ने अपने कटाक्ष से मानो सहसा उसे सीढ़ी के सबसे ऊंचे डंडे पर खड़ा कर दिया था।

एक दिन प्रातःभ्रमण के समय गुणाभिराम लक्षेश्वर से आनंद राम ढेकियाल फूकन के विषय में कह रहे थे कि नगांव में रहते समय फूकन ने उनसे मिलकर किस प्रकार 'ज्ञान सभा'बनाई थी और वहां पर क्या-क्या महत्वपूर्ण चर्चाएं होती थीं। लक्षेश्वर कुछ देर तक बातों को सुनता रहा फिर बोला, "अब, हम भी इस तरह की एक सभा स्थापित करें। आप यदि हमारा मार्ग निर्देशन करें तो हम सभी छात्र इसमें भाग लेने को प्रस्तुत हैं।"

गुणाभिराम के मन में बहुत दिनों से यह बात थी पर, आज जैसे लक्षेश्वर ने उनके मन की बात को व्यक्त कर दिया। नए उत्साह से उन्होंने 'ज्ञान-सभा' की परिकल्पना की। प्रधानाध्यापक से वे स्वयं अनुमति ले लेंगे। मेज, कुर्सी लगाने और अतिथि गण को निमंत्रण देने का भार लक्षेश्वर ने लिया। अग्रिम बुधवार को पहली सभा करने का निर्णय लिया गया। गुणाभिराम ने स्वयं निमंत्रित व्यक्तियों की सूची बनाई। उसमें माइल्स, ब्रनसन, रुद्रराम बरदलै, पद्महास गोस्वामी, रातिया कोच, फटिक चन्द्र बरुआ, जानकी नाथ सेन, रामलोचन सेन और अन्य बहुत से गणमान्य व्यक्तियों के नाम थे।

बुधवार को लगभग तीन बजे सभा का काम प्रारंभ हुआ। स्कूल का कमरा छात्रों और निमंत्रित अतिथियों के लिए था। लक्षेश्वर और अन्य लड़कों ने कमरे को यथाशक्ति सजाया। मेज के ऊपर बिल्व कुटीर से लाकर एक सुंदर टेबुल क्लाथ और गुलदस्ता सजा दिया गया। द्वार मुख से ही निमंत्रित लोगों को साथ लेकर लड़के कमरे में बैठा रहे थे। सर्व सम्मति से गुणाभिराम बरुआ को सभापति चुना गया। स्कूल के एक छात्र ने बरगीत गाकर सभा का उद्घाटन किया। उसके बाद रुद्रराम बरदलै, पद्महास गोस्वामी आदि ने सभा का महत्व

बताते हुए भाषण दिए। लक्षेश्वर ने 'शिक्षा की आवश्यकता' शीर्षक से स्वलिखित रचना का पाठ करके सुनाया। अंत में, ब्रनसन साहब से दो शब्द कहने के लिए अनुरोध किया गया, किंतु शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे अधिक कुछ न बोले। आशीर्वाद स्वरूप उन्होंने ज्ञान सभा के दीर्घायु होने की कामना व्यक्त की। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद वे सभाभवन में उपस्थित रहे, इसके लिए सभी ने उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। अंत में सभापति गुणाभिराम बरुआ ने सभा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए अपने सारगर्भित भाषण से सबको मुग्ध कर दिया। उन्होंने आनंदराम ढेकियाल फूकन के महान आदर्श तथा असमिया भाषा संस्कृति के प्रति नगांव वासियों के पवित्र कर्त्तव्य की कथा दोहराई। श्रीमंत शंकर देव का जन्म स्थान नगांव जिला ही है, इससे अधिक प्रेरणा की बात और क्या हो सकती है। गुणाभिराम बरुआ की वक्तृता ने सभी युवाओं को उत्साहित कर दिया और सभा के उद्देश्य को पूरा करने के लिए सभी दृढ़प्रतिज्ञ हुए।

पहले लक्षेश्वर ने प्रत्येक बुधवार को ज्ञान सभा आयोजित करने का उत्तरदायित्व लिया था किंतु दो बुधवारों के बाद सभा पाक्षिक कर दी गई। फिर भी ज्ञान सभा के माध्यम से छात्रों का बहुत ज्ञानवर्धन हुआ। जो छात्र इस सभा में नियमित रूप से उपस्थित रहते थे, उनमें से कई आगे चलकर सुप्रसिद्ध साहित्यकार बने। यद्यपि लक्षेश्वर साहित्यकार नहीं बन पाया पर कार्यकुशल होकर सन्मार्ग पर अवश्य लग गया। गुणाभिराम बरुआ ने अपनी पुस्तक और पत्रिकाएं आदि देकर लक्षेश्वर को पढ़ने लिखने में हर तरह से मदद की। यदि किसी महीने में लक्षेश्वर के पास हाथ खर्च के लिए पैसे नहीं होते तो हाकिम तत्काल उसे दो चार रुपए निकाल कर दे देते थे। लक्षेश्वर का स्वभाव विनयी होने के कारण विष्णुप्रिया भी उसे प्यार और सम्मान देती थी। उसके द्वारा कही गई मनोविनोद की वातों से स्वर्ण को भी खुशी होती थी। लक्षेश्वर स्वर्ण की किताबों पर कागज चढ़ा देता, कॉपी पर सुंदर अक्षरों में उसका नाम लिख देता और अनेक तरह के बौद्धिक खेलों से उसे आनंदित करता रहता था।

लक्षेश्वर उस समय हाई स्कूल की द्वितीय कक्षा का छात्र था। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर उसे एंट्रेंस परीक्षा देनी होगी। इसलिए वह खूब मनोयोग से अपने अध्ययन में लग गया था। एंट्रेंस परीक्षा अच्छी तरह पास करने पर ही उसे कलकत्ता में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति मिल सकेगी। कलकत्ता में पढ़ने का स्वप्न वह अभी से देखने लगा था। इस बार घर जाने पर उसने यह बात अपने पिता से कही थी किंतु, उसके पिता निःश्वास लेकर बोले थे, "बच्चा, तुम्हें कलकत्ता में पढ़ाने के लिए ढेर सारे रुपए, हम कहां से लांएगे? सरकारी वृत्ति के पैसे ही नहीं जुड़ पाते। इससे अच्छा है कि तुम एंट्रेंस पास करने के बाद कचहरी में क्लर्की के काम में लग जाओ। हमारी स्थिति के लोगों को अधिक की अभिलाषा करना मूर्खता कही जाएगी।"

लेकिन लक्षेश्वर अपने पिता की बातों पर विश्वास करके बैठने वाला लड़का नहीं था। उसने अपने मन में अन्य कल्पनाएं कर रखी थी। वह कलकत्ता जाने का खर्च हाकिम बाबू से ले लेगा। उन्हीं की मदद से वह दो बंगाली लड़कों के साथ मिशन के साहबों से अंग्रेजी सीखने लगा। पादरी साहब को खुश रखने के लिए वह क्रिश्चियन धर्म के प्रति प्रेम दिखाने लगा और वे लोग भी उसे खूब लगन से अंग्रेजी सिखाने लगे।

उस समय कलकत्ता से नगांव तक जहाज से यात्रा करने में कम से कम दस दिन लग जाते थे। भौगोलिक दूरी होने पर भी नगांव के ब्राह्म समाज के लिए कलकत्ता बहुत दूर नहीं माना जाता था। चिट्ठी पत्री पत्र पत्रिकाओं और कलकत्ता आने जाने वाले मित्रों अथवा किसी स्वजन द्वारा कुछ देर से ही सही, उन्हें सारी खबरें ज्ञात होती रहती थीं कुछ खबरों ने ब्राह्म समाज में क्षोभ उत्पन्न कर दिया था और उन्हें लेकर वाक् वितंडा भी आरंभ हुआ था। ब्रह्मानंद केशव चन्द्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ के बीच का मनोमालिन्य गुणाभिराम की तरह बहुतों के मन को दुखी कर देता था। संभव है, इस वाक् वितंडा से स्वयं घिरे होने के कारण कलकत्ता के ब्राह्म समाजियों को गुरु शिष्य के इस मतभेद ने अपने अपने अनुयायियों के साथ और भी अधिक संगठित कर दिया। किंतु दूर दूरांतर में बसने वाले ब्राह्म समाजियों के इस मतभेद और वाक् वितंडा ने संकट की स्थिति पैदा कर दी थी। केशव चन्द्र सेन की तेजस्वी वक्तृता और उनकी उदार प्रवृत्ति ने बहुत से युवा ब्राह्म समाजियों को अपना अनुगामी बना लिया था। उनके सभी अनुयायी हृदय से उनकी भक्ति करते थे। वे उनके इतने भक्त थे कि उनमें से कुछ ने उन्हें भगवान का अवतार मानकर उनकी पूजा आरंभ कर दी थी। केशव चन्द्र सेन के इस तरह के दो एक समर्थक नगांव में भी थे। किंतु, गुणाभिराम अथवा गुरुनाथदत्त एक का पक्ष लेकर और दूसरे को हेय मानते हुए किसी दल में सम्मिलित नहीं हुए थे। अतः नगांव का ब्राह्म समाज विभाजित नहीं था। उसमें आदि ब्राह्म समाज और भारतीय ब्राह्म समाज नामक दो दल नहीं हुए थे। कलकत्ता के, ब्राह्म समाज के एक बार फिर दो भाग हो गए, जब यह सुना गया कि केशवचन्द्र सेन ने 'नेटिव मेरिज ऐक्ट' की उपेक्षा करके अपनी अल्पवयसी कन्या के विवाह की आयोजना की है। ये वही केशव चन्द्र सेन थे जो स्त्री-शिक्षा के आंदोलन में अग्रणी थे, हिंदू विवाह पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन लाने के लिए जिनका देवेन्द्र नाथ ठाकुर से घोर मतभेद हुआ था। ऐसे विप्लवी पुरुष द्वारा उपर्युक्त कार्य किया जाना, निश्चय ही अप्रत्याशित था। सिर्फ यही नहीं, जमाई रूप में भी उन्होंने चुना था कूचबिहार का सोलहवर्षीय राजकुमार। सब दृष्टियों से यह विवाह ब्राह्म आदर्शों के विपरीत माना गया।

नगांव के ब्राह्म समाज में सर्वप्रथम यह समाचार गुरुनाथ दत्त के नाम उनके एक बंधु के पत्र द्वारा मिला। चिट्ठी पढ़ने के बाद दत्त चिंताकुल होकर गुणाभिराम के पास गए। दोनों ने पारस्परिक विचार-विनिमय से यह निश्चय किया कि यह बात झूठी भी हो सकती

है, इसलिए इस विषय में चुप रहना ठीक है किंतु सत्य को कितने दिन छुपाकर रखा जा सकता है? दो महीने के बाद ही पूजा के अवसर पर राधानाथ सेन नाम के एक वकील की लड़की और उनके जमाई ने कलकत्ता से आकर नगांव के ब्राह्म समाज में इस खबर को प्रचारित कर दिया। इसके साथ ही केशवचन्द्र सेन और उनके अनुयायियों एवं अन्य लोगों के बीच अनेक विवाद उत्पन्न हो गए। जब केशवचन्द्र सेन के समान एक नेता ने अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए सभी आदर्शों को छोड़ने में कुंठा का अनुभव नहीं किया तो ब्राह्म समाजियों के मन में आदर्श के प्रति संदेह का जन्म होने लगा। बात बिगड़ती हुई देखकर गुणाभिराम बरुआ और गुरुनाथदत्त ने आपस में सलाह करके ब्राह्म समाज की एक सभा बुलाई। सभा आरंभ होने के पश्चात एक आदमी ने खड़े होकर केशवचन्द्र सेन के विरोध में विचार प्रकट करना शुरू किया, कुछ और लोग भी उत्तेजित होकर अपने विचार व्यक्त करने लगे। गुणाभिराम बरुआ ने खड़े होकर सबसे शांत होने के लिए बार-बार अनुरोध किया। तब सबने शांत होकर धीरे-धीरे अपनी बातें कहनी प्रारंभ की।

## 18

उपस्थित सज्जनो! ब्राह्म समाज सत्य और आदर्श की भित्ति पर प्रतिष्ठित हुआ था। एक ब्राह्म के लिए एकमात्र सत्य ही, परम शक्तिमान, परम पवित्र जगत सृष्टा परमेश्वर है। जिन दो गुरुओं से हम इस परमेश्वर के विषय में जान सकते हैं वे हैं—प्रकृति और मानव मन में प्रविष्ट प्राकृतिक सत्य का आदर्श।

इन दो शिक्षागुरुओं के ऊपर जिसका विश्वास है उसे कोई सामयिक घटना डिगा नहीं सकती। किसी एक विशेष व्यक्ति को धर्म गुरु मानकर उसे सभी दुर्बलताओं और भ्रांतियों से ऊपर मान लेने के समान और कोई भूल नहीं हो सकती। हम इस प्रकार की भूल करते रहते हैं, इसीलिए मन में आघात लगता है किंतु ब्राह्म धर्म का सार-मर्म समझ लेने पर हम हताश नहीं हो सकते। ब्राह्म धर्म के मूल आदर्शों के विषय में उन्होंने और भी अनेक बातें कीं।

गुणाभिराम की बातों ने सभागृह में पुनः शांति के वातावरण की सृष्टि कर दी। उनकी लंबी वक्तृता सुनने के बाद अधिकांश श्रोताओं के मन में फिर से विश्वास और साहस का उदय हो गया। अतल सागर के बीच दोलायमान नौका के यात्रीगण जिस तरह बबंडर के आने पर एक दूसरे को पकड़कर अपने को बचाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार इन थोड़े से लोगों को भी पारस्परिक प्रेम तथा धर्म में अटूट आस्था की आवश्यकता थी। ऐसी परिस्थिति में अपने भीतर मरने-मारने वाले दल न बनाकर भ्रातृभाव से सारी समस्याओं का समाधान करना उनकी अस्तित्व रक्षा का एकमात्र उपाय था।

गुणाभिराम ने उस दिन सभा में बहुत सी बातें कहीं किंतु जब घर वापस आए तो

बरामदे में आराम कुर्सी पर बहुत रात तक बैठे, बहुत कुछ सोचते रहे। भोजन करने के लिए विष्णुप्रिया के बुलाने पर भी वे उठ कर खड़े नहीं हुए। पास की एक चौकी पर बैठकर विष्णुप्रिया बोली, "आज सभा में आपकी बातों ने सभी के मन में साहस भर दिया।"

गुणाभिराम ने निश्वास लेते हुए कहा, "अरे ! सुनो। दूसरों को साहस देने के लिए मेरे पास कहने को बहुत कुछ है किंतु मैं स्वयं अपने को साहस नहीं दे पा रहा हूं। ब्रह्मानंद केशवचन्द्र के समान ज्ञानी पुरुष भी जब लोकाचार के समक्ष पराजित हो गए तो मैं क्या अकेले इन सबके विरुद्ध संघर्ष कर पाऊंगा? कलकत्ता का परिवेश हमारे असम के परिवेश की तुलना में बहुत अच्छा है। वहीं पर यदि ज्ञानी जन अपनी दुर्बलताओं पर विजय नहीं पा सके तो फिर यहां की तरह पिछड़ी जगहों की क्या दशा होगी?

विष्णुप्रिया कुछ देर तक चुप रही। पति को इस प्रकार हताश होते देखकर वह हमेशा अपने को अधिक सुदृढ़ दिखाने की चेष्टा किया करती थी। उसे भय था कि यदि वह अपने को दुर्बल दिखलाएगी तो पति का मन टूट जाएगा। अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक दृढ़ता पूर्वक विष्णुप्रिया ने कहा, "हम अपनी स्वर्ण का विवाह चौदह वर्ष की हो जाने के पहले नहीं करेंगे। कोई कुछ भी कहता रहे। हमें असम के समाज ने वैसे भी त्याग ही दिया है। समाज के भय से अपना विश्वास छोड़ देने पर हम दोनों तरफ से जाएंगे।"

पत्नी की साहस पूर्ण बातों ने गुणाभिराम के मन की अस्थिरता को कुछ मात्रा में कम कर दिया। फिर दोनों ने स्वर्ण के भविष्य के संबंध में अनेक बातें कीं। उसे कलकत्ता के बेथुन स्कूल में पढ़ाएंगे। उसके बाद किसी अच्छे परिवार के सुशिक्षित लड़के के साथ उसका विवाह करेंगे। लड़का ब्राह्मसमाजी होगा। असमिया ब्राह्मण लड़के के साथ वे स्वर्ण का विवाह कभी नहीं करेंगे। इस विषय में विष्णुप्रिया के मन में कोई दुविधा नहीं थी और ब्राह्म समाज के अंतर्गत असमिया घर हैं ही कितने? नगांव में मात्र दो चार ही घर हैं। फिर भी उस दिन पति-पत्नी दोनों इस निर्णय पर पहुंचे कि स्वर्ण यदि एक भारतीय आदर्श नारी हो सके तो निश्चय ही उसे कोई उच्च जाति का शिक्षित और उदारमना असमिया लड़का मिल जाएगा, जो उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लेगा। असमिया समाज भी तो सदा एक जैसा बना नहीं रहेगा, उसमें भी तो परिवर्तन होगा।

## 19

देखते-देखते एक वर्ष निकल गया। बड़ा दिन फिर आ गया। किंतु, नगांव के क्रिश्चियन लोगों के आनंदोत्सव में इस बार जैसे विषाद की छाया दिख रही थी। ब्रनसन साहब शरीर से बिल्कुल अस्वस्थ थे। जब से वे असम में आए, बीमारी ने उनके परिवार को नहीं छोड़ा। एक के बाद एक अपनी दोनों पत्नियों और कन्या के वियोग के कारण, ये असाधारण उद्यमी

पुरुष बहुत उदासीन रहने लगे थे। मानसिक रूप में नहीं तो शारीरिक रूप से द्वितीय पत्नी और पुत्री मेरिया की मृत्यु के बाद वे एकदम टूट गए थे इसीलिए उनकी शारीरिक अस्वस्थता भी बहुत बढ़ती गई। मिशनरी लोगों की सेवा, आदर और प्रार्थना से जब कुछ लाभ नहीं हुआ तो सभी ने आपस में सलाह करके उन्हें फिर अमेरिका भेजने का निर्णय किया, लेकिन ब्रनसन साहब जाना नहीं चाहते थे। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय जिस जगह रह कर व्यतीत किया था, जहां के भाषा-साहित्य और जन जीवन को उन्होंने अपना मान लिया था, उस जगह को छोड़कर सात समुद्र पार अमेरिका में जाकर अपना बुढ़ापा बिताकर शरीर छोड़ें, यह उन्हें रंचमात्र भी स्वीकार नहीं था, फिर भी उनके सभी शुभाकांक्षियों ने उनसे अनुरोध किया कि वे एक बार अमेरिका जाकर अपना स्वास्थ्य सुधार कर वापस आ जाएं। अंत में लोगों के आग्रह को मानकर वे अमेरिका जाने के लिए राजी हो गए। इस बार तारा का हठ काम आया। वह ब्रनसन साहब के साथ अमेरिका अवश्य जाएगी, नहीं तो, जहाज से इतनी दूर की यात्रा में उनकी सेवा शुश्रूषा कौन करेगा? गोलापी ने बेटी की ओर देखकर अविश्वास के स्वर में कहा, "ठीक-ठीक बताओ, तुम साहब के प्रति भक्ति, श्रद्धा और स्नेह के कारण अमेरिका जाना चाहती हो या विदेश-भ्रमण की आशा पूरी करने के उद्देश्य से, वहां जाना चाहती हो?"

तारा की आंखें छलछला पड़ीं। वह बोली, "सच कहती हूं मां। मैं वहां ब्रनसन साहब की सेवा करने के लिए ही जाना चाहती हूं। अमेरिका जाने की मुझे तीव्र इच्छा रही है किंतु, यदि साहब यहीं रहते हैं तो मैं भी बहुत दिनों तक यहीं रहूंगी। वे मेरे पिता नहीं हैं क्या? मेरे पिता के मरते समय इन्होंने उनके पास बैठकर उनकी सेवा नहीं की है क्या? इसीलिए मेरी इच्छा है कि मैं भी उनके अंतिम समय तक पास रहकर उनकी सेवा करूं।" बाकी बातें करते समय तारा की दोनों आंखों से आंसू बहने लगे। इसके बाद गोलापी ने कुछ नहीं कहा। सभी साहबों और मेमों से परामर्श करने के बाद वह अपनी कन्या को साथ भेजने के लिए तैयार हो गई।

तारा ने इस रूप में अमेरिका जाने की बात कभी नहीं सोची थी। उसकी सेवा निष्ठा ने ही अल्पवयसी तारा को जाने के लिए अनुप्राणित किया था। उसे अपने बारे में सोचने विचारने का समय कहां था? बड़े दिन के दो महीने बाद यात्रा की तिथि ठीक हो जाने के साथ-साथ वह ब्रनसन साहब की सारी वस्तुओं को ठीक-ठाक करने में व्यस्त हो गई। एक बड़े काठ के बक्से में सारे कागजात भाग-भाग करके रख लिए। उसके बाद दवा-दारू कपड़े-लत्ते, बिछौना और जहाज पर बैठने के लिए आराम कुर्सी आदि चीजें साहब के निर्देशानुसार ठीक करने लगी। वह स्वयं अपने लिए क्या-क्या ले जाएगी, इसकी चिंता उसकी मां ने ही की। गोलापी ने खूब मेहनत से अपने हाथों से उसके लिए लैस लगाकर दो जैकेट सिलाई कर दिए। सूई से फूल काढ़कर रुमाल और गमछे आदि का बंदोबस्त

कर दिया। मेम साहबों ने भी सोच विचारकर तारा के व्यवहार में आने वाली सारी चीजें इकट्ठी कर दीं। विदेश में मेखला और चादर पहनने में असुविधा होगी। इसलिए उन्होंने उसके लिए स्कर्ट, टॉप और कोट आदि जुटा दिए। जहाज पर और अमेरिका में वह किस तरह कांटा चम्मच से खाएगी, यह भी सिखा दिया। इसके अतिरिक्त विदेश में किस तरह के आचार-व्यवहार की जरूरत है और किस विषय में उसे सावधान और सतर्क रहने की जरूरत है, इसकी सारी जानकारी दो माह के भीतर यथासंभव तारा को करा दी गई। तारा ऐसे ही वहां जाती तो थोड़ा भय हो सकता था, किंतु ब्रनसन साहब की छत्र-छाया में जाते हुए तारा को रंचमात्र भी भय नहीं हुआ। उसे ऐसा लगा मानो, वह धर्म-प्रचार के अभियान पर निकल रही है।

ब्रनसन साहब से मिलने के लिए अनेक व्यक्ति आए। स्वर्ण, विष्णुप्रिया और गुणाभिराम बरुआ भी आए। दिखाने के लिए गुणाभिराम ने खुशी-खुशी वृद्ध पादरी के लिए बिदाई भाषण दिया। किंतु मन में उनको लग रहा था कि यह उनके अंतिम दर्शन हैं। वे नगांव में आनंदराम ढेकियाल फूकन के समय से ही इस कर्मठ पादरी को देखते आ रहे थे। ब्रनसन साहब को छोड़कर नगांव के बौद्धिक जगत की बात सोची नहीं जा सकती थी। प्रायः चार दशक से जिस मनुष्य ने नगांव के जन-समाज की भलाई के लिए अथक रूप से कार्य किए हैं, उसके रिक्त स्थान की पूर्ति क्या अन्य कोई कर पाएगा? स्थानीय लोगों में ब्रनसन जैसे समाजकर्मी को गुणाभिराम ने आज तक नहीं देखा था। मिशन के प्रांगण से वापस आते समय गुणाभिराम बार-बार अपने से यह प्रश्न पूछ रहे थे कि क्या ऐसा दिन कभी आएगा जब इस देश के लोग विदेशी मिशनरी लोगों से अधिक निष्ठापूर्वक अपने देश के लोगों की सेवा करेंगे?

इधर स्वर्ण भी तारा के साथ बातचीत करने में व्यस्त थी। तारा ने अपने बक्से की सारी चीजें उसे खूब चाव से दिखलाई। सारी चीजों को देखने के बाद स्वर्ण ने धीरे से पूछा, "सागर की लहरों में ब्रनसन साहब की बातें सुन पाओगी।" तारा ने पूरे विश्वास से उत्तर दिया, ''अवश्य सुन पाऊंगी''।

"क्या तुम्हें अपनी मां की याद नहीं आएगी?" स्वर्ण ने फिर पूछा। इस बार तारा की आवाज थोड़ा कांपने लगी, "प्रभु ईसा उन्हें देखेंगे। मैं भी मां के लिए हमेशा प्रार्थना करती रहूंगी। मैं तुम्हारे लिए भी प्रार्थना करूंगी। अमेरिका से मैं तुम्हें पत्र लिखूंगी, तुम भी उत्तर देना। अच्छा?"

"इतनी दूर पत्र पहुंच जाएगा?" स्वर्ण ने आश्चर्य से पूछा। "जहाज से जाएगा, जैसे हम जाएंगे" तारा ने हंसते हुए उत्तर दिया। तारा की प्रत्येक बात को स्वर्ण ध्रुवसत्य समझती थी। उसके लिए तारा सचमुच आकाश का तारा थी। स्वर्ण को वह और सब लड़कियों से विलक्षण लगती थी।

## 20

विवाह के बाद से लक्ष्मी प्रिया और स्वर्ण की भेंट नहीं हो पाई। किंतु, लक्ष्मीप्रिया को स्वर्ण की बहुत याद आती थी। विवाह के दिन की बात याद आते ही लाजवश उसके कान और मुंह लाल हो जाते थे, उसे अपने परिवार के लोगों पर क्रोध आ जाता था। "निमंत्रित अतिथियों के साथ उन्हें ऐसा व्यवहार करना चाहिए था?" उस दिन विष्णुप्रिया के अपमान की गंभीरता को उसकी अपरिपक्व बुद्धि समझने में असमर्थ थी। जो उसे अपनी मां की तरह प्यार करती थी" अपना समझकर जिसने उसके विवाह में सोने का हार उपहार में दिया था, उसका इस तरह अपमान किया गया। उसे सबसे बुरा इस बात से लगा कि इतना बड़ा अपराध करने के बाद भी किसी के मन में थोड़ा भी दुःख नहीं था। हां, पंचानन शर्मा को जब इस बात की खबर मिली तो उन्होंने अपनी मां और पत्नी को कड़े शब्दों में डांटा था। कारण कि हाकिम की पत्नी का अपमान करने के कारण हाकिम के साथ उनका संबंध हमेशा के लिए खराब हो जाएगा। किंतु, उसके बाद, अगर कोई पश्चाताप किया गया तो वह मात्र हाकिम के भय से ही, विष्णुप्रिया के प्रति श्रद्धा व स्नेह का अनुभव करके नहीं। लक्ष्मी प्रिया अब समझ गई थी कि मनुष्य इतना स्वार्थी और निर्दयी हो सकता है। लक्ष्मीप्रिया बीच-बीच में सोचती थी कि स्वर्ण के पास जाकर वह अपने मन की सब बातें कह दे और अपने मन का दुख प्रकट करे। पर, विवाहोपरांत उसका घूमना-फिरना बिल्कुल कम हो गया था। साथ में मां या अन्य किसी बड़ी स्त्री के साथ न रहने पर वह कहीं बाहर नहीं निकल सकती थी। बाहर जाने पर ओढ़नी लेकर घूंघट में कहीं जाना होता था। दुर्गा पूजा में मात्र चार दिनों के लिए उसे स्वतंत्र रूप से घूमने-फिरने का मौका मिला था, फिर भी साथ में दूसरी विवाहित लड़की या पास की नववधुएं उसके साथ प्रतिदिन पूजा करने जाती थीं। थोड़ी सी स्वाधीनता पाकर लक्ष्मी आनंद से आत्मविस्मृत हो गई थी। पूजा मंडप में स्वर्ण से भी भेंट होगी। उसे भी देखूंगी, ऐसा उसका विश्वास था, किंतु उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। बाद में उसे पता चला कि ब्राह्म समाजी लोग पूजा में नहीं जाते। लक्षेश्वर ने उसे यह बात बतलाई थी।

कभी-कभी लक्षेश्वर लक्ष्मी के घर आया करता था। लक्ष्मी का पति उसके दूर के संबंध में बड़ा भाई लगता था। इसलिए वह लक्ष्मी को 'नई बहू' कह कर बुलाया करता था और आने पर उसका भी आदर-सम्मान होता था। पहले पहल लक्ष्मी शर्म से बाहर नहीं निकलती थी। किंतु, जब उसे पता चला कि ये स्वर्ण के घर में रहते हैं, तब वह बहुत कहने पर उसके साथ बातचीत करने के लिए बाहर आने लगी थी। लक्षेश्वर ने पहले उसको कलियावर के गृह स्वामी की खबर देनी चाही थी। किंतु लक्ष्मी की इसमें कोई दिलचस्पी न देखकर, बिल्व कुटीर की खबर ही अधिकतर देने लगा था। जब आसपास में घर का

कोई दूसरा सदस्य उपस्थित नहीं रहता था, तभी वह ये सब बातें करता था। इस विषय में वह लक्ष्मी से अधिक सावधान था।

गुणाभिराम बरुआ और उसकी पत्नी किस प्रकार जाति बहिष्कृत हुए, यह जानना लक्ष्मी के लिए जटिल था। घर के बड़े लोग इस विषय पर आपस में फुसफुसा कर बात करते थे। किंतु बच्चों के पूछने पर कह देते थे कि ये सब बुरी बात है। इसे सुनने में भी पाप लगता है। विष्णु प्रिया के समान एक सम्माननीय स्त्री और गुणाभिराम जैसे एक गुणी ज्ञानी पुरुष इस तरह का बड़ा पाप कर सकते हैं यह बात लक्ष्मी सोच भी नहीं सकती थी। एक दिन अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए उसने लक्षेश्वर से इस संबंध में पूछ लिया।

"अरे! क्या तुम्हें यह बात पता नहीं। बरुआ महोदय ने अपनी प्रथम पत्नी की अकाल-मृत्यु के बाद विधवा-विवाह करने के लिए ब्राह्म-धर्म स्वीकार किया था। हाकिम की वर्तमान पत्नी स्वर्गीय परशुराम बरुआ की विधवा पत्नी हैं। पहले पति से इन्हें दो कन्याएं हैं। उनका विवाह हो चुका है" लक्षेश्वर अपनी बात ऐसे फुसफुसा कर कह रहा था मानो कोई अश्लील चर्चा हो रही हो।

लक्ष्मी कुछ देर चुप रहकर इस समाचार की गंभीरता को समझने की चेष्टा करती रही। उसके बाद उसने हठात् पूछा, "अच्छा लक्ष भाई, हाकिम महोदय अगर प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद किसी दूसरी ब्राह्मण कुमारी कन्या से विवाह कर लेते, तब तो उनकी जाति नहीं जाती? विधवा-विवाह करने के कारण ही तो उनकी जाति गई।''

''हां, यह भी कोई पूछने की बात है क्या? प्रथम पत्नी के जीवित रहते हुए भी, इच्छा होने पर वे एक और पत्नी ला सकते थे। पत्नी के वियोग के बाद पुरुषों का द्वितीय विवाह करना तो समाज का प्रचलित नियम है। हाकिम महोदय ने विधवा-विवाह करके ही एक विशेष घटना पैदा कर दी है", लक्षेश्वर ने एक विज्ञ पुरुष की भांति अपनी बात कही। उस समय का उसका कंठ-स्वर बरुआ से बातचीत करने वाले विनयी कंठ स्वर से कोई मेल नहीं खाता था। लक्ष्मी के दूसरे प्रश्न को सुनकर वह अवाक् हो गया था अभी तक उसकी यही धारणा थी कि उसके विचार ही सभी ब्राह्मण समाज के विचार हैं।

"पुरुष के दुबारा शादी करने पर यदि समाज विरोध नहीं करता तो फिर स्त्री के दुबारा विवाह करने पर आपत्ति क्यों की जाती है?" लक्ष्मी ने यह प्रश्न सामान्य रूप में किया था। इस प्रश्न ने ही बंग देश के शिक्षित समाज में उथल-पुथल मचा दी थी, इसका उसको कुछ पता न था।

लक्षेश्वर ने दोनों आंखें मूंद कर घृणा प्रदर्शित करते हुए कहा, "छिः, नई बहू, इस तरह की बात मुंह पर लाना भी पाप है। शायद, तुमने बरुआ महाशय का लिखा, 'राम नवमी' नाटक पढ़ा होगा।"

"नहीं पढ़ा, सच बताओ उसमें क्या लिखा है?" "तुम्हें, यह सब जानने की कोई जरूरत नहीं। मैंने तो उसमें पढ़ा है कि ब्राह्मण विधवा किस तरह भ्रष्टा हो जाती है? अच्छे घराने की लड़कियों को ये सब अनाप-सनाप बातें अपने दिमाग में नहीं रखनी चाहिए। अगर संभव होता तो मैं इस तरह की बेकार किताबों को फाड़कर फेंक देता।" लक्षेश्वर ने वीर की भांति आक्रोश प्रदर्शित करते हुए कहा।

लक्ष्मी का मन पूछने को हुआ कि भ्रष्टा का अर्थ क्या है? क्या विष्णुप्रिया भी भ्रष्टा है। किंतु लक्षेश्वर के बात कहने के ढंग को देखकर वह कुछ न कहकर भीतर चली गई। उसके मन में अनेक बातें अस्पष्ट सी रह गई। उसने एक बार विष्णुप्रिया के चेहरे को याद किया तो उसे चेहरे और व्यवहार से रंचमात्र भी कहीं पाप का चिह्न नजर नहीं आया। उसकी बुआ बाल्यकाल से आजीवन वैधव्य का कष्ट भोगती रही। उससे तो अच्छा है कि विष्णुप्रिया ने अपना एक सुंदर संसार बसा लिया। इसमें पाप की क्या बात हो सकती है? हठात् उसके मन में आया, अगर गुणाभिराम बरुआ और विष्णुप्रिया का विवाह न होता तो स्वर्ण का जन्म भी न होता। उसके मन में द्वंद्व मचने लगा कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। किंतु एक बार भी वह गुणाभिराम, विष्णुप्रिया और स्वर्ण की कल्पना पापी रूप में नहीं कर सकी।

## 21

आजकल बेलवृक्ष के नीचे स्वर्ण के खेलने की चीजें फैली हुई दिखलाई नहीं देतीं। लक्ष्मी के विवाहोपरांत स्वर्ण ने वहां खेलना ही छोड़ दिया था। उसे अकेले खेलने में अच्छा नहीं लगता था, भाई करुणा के साथ वह कभी-कभी खेला करती थी। किंतु करुणा को भात रांधने वाला खेल पसंद नहीं था। पिता का अनुकरण करते हुए "कचहरी जाता हूं, अच्छा" कहकर चला जाता था। इसीलिए स्वर्ण पढ़ने-लिखने का काम पूरा करके सीढ़ी पर बैठकर रुमाल में फूल काढ़ती रहती अथवा आकाश में बादलों के बदलते हुए रूप को निहारती रहती थी। बादलों को देखकर उसे बहुत अच्छा लगता था। नीले आकाश में शुभ्र बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े कितने रहस्यात्मक रूप में ओझल हो जाते थे, यह देखकर वह मुग्ध हो जाती थी। कभी-कभी पूर्व दिशा के आकाश में सफेद बादलों की क्रीड़ा देखते-देखते हठात् काले बादल आकर क्षण मात्र में सारे आकाश पर छा जाते थे। साथ-साथ चलता था मन प्राणों को कंपा देने वाला शीतल पवन। काले बादलों के कितने रूप और कितने रंग थे, यह सब लक्ष्य करके स्वर्ण को बड़ा आश्चर्य होता था। प्रकृति के नित नए रूप को देखकर उसका मन कभी नहीं ऊबता था। समय कैसे निकल जाता था, उसे इसका भान ही नहीं हो पाता था।

इसी बीच विष्णुप्रिया और गुणाभिराम के संसार में एक और नए शिशु ने जन्म लिया। स्वर्ण को एक भाई मिला। अशुचि काल में मां की देखभाल करने के लिए विष्णुप्रिया की पहले पति से जन्मी बड़ी लड़की आई थी। उसका नाम कालीप्रिया था। स्वर्ण उसे काली दीदी कहकर बुलाया करती थी। उम्र में स्वर्ण से बहुत बड़ी होने के कारण वह स्वर्ण की मां की तरह लगती थी। चेहरा भी मां की तरह ही था। उसका नाम काली क्यों रखा गया, स्वर्ण नहीं समझ पाती थी। कालीप्रिया का एक छोटा बच्चा भी था। इस समय घर लोगों से भरा था। धाई बूढ़ी, मिडवाइफ, डाक्टर के अतिरिक्त अड़ोस-पड़ोस के लोग भी कुशल-क्षेम पूछने के लिए आते रहते थे। मां के पास न रह सकने के कारण स्वर्ण को अकेलापन महसूस होता। वह प्रातः अपने भाई करुणा के साथ शेवाली के फूल चुनकर लाती और बेलवृक्ष के नीचे बैठकर माला गूंथती थी। बहुत दिनों के बाद अपनी पुरानी जगह पर बैठकर उसे अच्छा लगता था। शेवाली के फूलों की छोटी-छोटी मालाएं भाई और बहन दोनों बेलवृक्ष पर टांग देते थे।?

दूर से लक्षेश्वर उनका खेल देख रहा था। टेस्ट परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अब वह एन्ट्रेन्स परीक्षा की तैयारी कर रहा था। वह दिन भर अपने कमरे में बैठकर पढ़ता-लिखता था। बीच में मन ऊबने पर बाहर निकलता था। स्वर्ण वगैरह को खेलते देखकर उसने पास आकर पूछा, "क्या तुम भी वृक्ष-पूजा करती हो? अच्छा करती हो। इस गाछ पर ही तुम्हें बूढ़ा डांगरिया (भूत) दिखाई देगा, समझीं।" भय से स्वर्ण और करुणा की आंखें फैल गईं। आई के मुख से इन्होंने 'बूढ़ा डांगरिया' की बहुत सारी कहानियां सुनी थीं, किंतु लक्षेश्वर के समान एक अच्छे आदमी की बातों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। करुणा लक्षेश्वर का हाथ पकड़कर उसे बूढ़ा डांगरिया की कहानी सुनाने का आग्रह करने लगा। किंतु, लक्षेश्वर को उस समय कहानी सुनाने की इच्छा न थी। वह तो स्वर्ण से कुछ कहने के लिए उत्सुक था।

"लक्ष्मी को रजोधर्म हो गया न? तुम्हें मालूम है?" स्वर्ण ने आश्चर्य से उसकी मुंह की तरफ देखकर पूछा, "क्या हो गया?"

स्वर्ण के बालसुलभ मुंह की ओर देखकर लक्षेश्वर को आगे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। उसने फिर धीरे से कहा, "मां से पूंछना। दो महीने के भीतर ही नबौ (नई बहू) को लेने के लिए ककाइ देव (भैया) आएंगे। इस बार घर जाने पर सब सुन कर आया हूं।"

लक्ष्मी अपने विवाह की खबर देने के लिए आई थी तो बेलवृक्ष के नीचे किस तरह सिसक-सिसक कर रोने लगी थी। वह दृश्य याद आते ही स्वर्ण की दोनों आंखें डबडबा आईं। लक्ष्मी के विवाह ने उसके मन पर एक विषाद की रेखा आंक दी थी। "लड़कियों की शादी क्यों होनी चाहिए? सभी लड़कियां तारा की तरह क्यों नहीं रह सकतीं? तारा

ने अपनी पढ़ाई-लिखाई कर ली, अपनी इच्छानुसार अमेरिका तक चली गई, वहां से वापस आने पर स्कूल में पढ़ाएगी। उसके विवाह की बात तो कोई नहीं करता।"

तारा के बारे में सोचकर स्वर्ण को बहुत अच्छा लगता है। दो दिन पहले ही आई तारा की चिट्ठी को उसने कम-से-कम दस बार पढ़ा होगा। पिता ने डाकघर की मुहर देखकर बता दिया था कि चिट्ठी को पहुंचने में दो महीने लग गए। रजनी मास्टर ने पृथ्वी का मानचित्र दिखाकर बताया था कि चिट्ठी किस मार्ग से आई थी। स्वर्ण ने हाथ में लिफाफा लेकर अनुमान लगाया कि मानचित्र के नीचे और हरे रंग के बीच से मार्ग निकालकर किस तरह चिट्ठी उस तक पहुंची है? डाक टिकट जैसे रहस्यमय जगत का रूप प्रकट करता है। तारा ने अपनी चिट्ठी में समुद्र-यात्रा की चर्चा विशेषरूप से की थी कि किस प्रकार एक तूफान के आने से उसका जहाज डूबने वाला था। तारा कुछ दिन अस्वस्थ होकर बिस्तर पर पड़ी थी। जहाज के डाक्टर ने दवा देकर उसे स्वस्थ किया। ये सब बातें लिखने के बाद उसने लिखा था कि सागर की लहरों के शोरगुल में कोई किसी की पुकार नहीं सुन पाता। एक मात्र ईश्वर ही मनुष्य की रक्षा कर सकता है। चिट्ठी के अंत में उसने स्वर्ण के माता-पिता को नमस्कार देते हुए लिखा था कि उसे घर की बहुत याद आती है और ब्रनसन साहब के स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात वह वापस आ जाएगी।

## 22

एंट्रेंस परीक्षा देने के बाद लक्षेश्वर घर जाने लगा। जाने से पहले वह गुणाभिराम बरुआ और विष्णुप्रिया देवी से मिलने के लिए आया। 'ज्ञान-सभा' अनवरत चलती रहे, इसके लिए उसने बरुआ महोदय से बार-बार अनुरोध किया। लक्षेश्वर की कर्त्तव्यनिष्ठा, नम्रता और विनयी स्वभाव ने गुणाभिराम के हृदय का स्पर्श किया। उन्होंने उसे आर्शीवाद देकर आश्वासन दिया कि वे ज्ञान-सभा को चालू रखने के लिए यथासंभव प्रयत्न करेंगे। इसके बाद लक्षेश्वर के भविष्य के विषय में बात निकली। निश्वास लेकर लक्षेश्वर ने कहा, "कलकत्ता जाकर पढ़ने की आशा मैंने छोड़ दी है। दस रुपए सरकारी वृत्ति के सहारे कलकत्ता के बोर्डिंग में नहीं रह सकूंगा। घर से भी आर्थिक सहायता पाने की आशा नहीं है कारण, पिता की आय से परिवार को दो समय दो मुट्ठी अनाज किसी तरह मिल पाता है। अतः एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद नौकरी करने के सिवाय मेरे लिए और कोई गति नहीं है।" उसकी बातों का प्रतिवाद करते हुए गुणाभिराम ने कहा, "प्रिय लक्षेश्वर। मेरे रहते तुम इस तरह की बात अपनी जुबान पर मत लाओ। मैं अपने असमिया बालकों को उच्चशिक्षा दिलाना चाहता हूं। दो वाक्य अंग्रेजी लिखने लायक होकर शिक्षा समाप्त कर देना और नौकरी में लग जाना ही जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। अपने जीवन-काल में तुम्हारी

तरह के छात्रों को उच्च-शिक्षा प्राप्त कराने में मदद करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। तुम चिंता मत करो। परीक्षा-फल अच्छा होने पर मैं तुम्हारे पढ़ने की सारी व्यवस्था कलकत्ता में कर दूंगा। वहां मेरे अनेक परिचित मित्र हैं। वे कम खर्च में तुम्हारे रहने और खाने पीने का बंदोबस्त कर देंगे। जो खर्च लगेगा, मैं दूंगा।"

लक्षेश्वर की मनोकामना पूर्ण हुई। हाकिम महोदय को सादर नमस्कार करके उसने बिदाई ली। जाते समय उसके दोनों नेत्र आनंद से चमक रहे थे। गुणाभिराम के विशाल और उदार हृदय का परिचय पाकर क्षणभर के लिए उसका मन विगलित हो गया। लक्षेश्वर के प्रस्थान करने के दो दिन बाद ही पंचानन शर्मा के घर में एक दुःखपूर्ण घटना घटित हो गई। लक्ष्मी को ससुराल भेजने के लिए बिदाई के कपड़े-लत्ते, खाट-पलंग, बर्तन-भांडे आदि सभी वस्तुओं की व्यवस्था कर दी गई थी। जिस दिन कलियावर से लक्ष्मी के पति गोविंद प्रसाद के पहुंचने की बात थी, उस दिन प्रातःकाल से ही पंचानन शर्मा के घर में चहल-पहल थी। जमाई को कहां बैठाएंगे, क्या खिलाएंगे, उसके साथ में आए लोग कहां रहेंगे, इन सारी बातों पर सोच-विचार किया गया था। विवाह के बाद पहली बार घर में जमाई आने वाला था। किसी प्रकार की त्रुटि न हो जाए, इसी तरफ पंचानन शर्मा का पूरा ध्यान था। इसीलिए वे सुबह से व्यस्त थे और बाहर-भीतर घूम-घूमकर सारी निगरानी कर रहे थे। जमाई को दोपहर में भात खिलाने से लेकर दूसरे दिन सुबह तक का आयोजन किया जाना था। कलियावर से रात को नौ बजे वे लोग प्रस्थान करेंगे। लक्ष्मी को नए वस्त्र पहना दिए गए थे और उसका साज-शृंगार भी हो गया था। किंतु सिंदूर का टीका और सोने के आभूषण उसके म्लान मुख पर कांति न ला सके। दूसरों के सामने दिखावा करने के लिए रोने-धोने का अभ्यास लक्ष्मी को न था। पंचानन शर्मा और उसकी पत्नी कन्या के मुख की ओर नहीं देख पा रहे थे। विशेष रूप से पंचानन शर्मा के मन में यह धारणा थी कि उन्होंने लक्ष्मी के प्रति अन्याय किया है। लक्ष्मी के विवाह के दिन उनको ऐसा नहीं लगा था। उस समय उन्होंने सिर्फ कन्या के दायित्व से मुक्त हो जाने की बात ही सोची थी। लक्ष्मी की करुण और असहाय अवस्था पर दृष्टि जाते ही उनका मन विचलित हो जाता था। मात्र बारह वर्ष की लड़की ससुराल में बहू बनकर परिश्रम कर पाएगी? पंचानन शर्मा अपने को समझाने लगे, सभी लड़कियां करती हैं। लक्ष्मी की भांति कुशल, बुद्धिमती लड़की को सास, ससुर और पति सभी अपना स्नेह देकर उसके सुखी सांसारिक जीवन में सहायक होंगे।

दोपहर में भात खाने का समय पार हो गया। सूर्य पश्चिम की ओर ढलने लगा। तब तक कलियावर से कोई खबर नहीं आई। संध्या के पूर्व दो आदमी समाचार लेकर आए। उस दिन सुबह ही लक्ष्मी के पति गोविंद प्रसाद की मृत्यु हो गई थी। चार दिनों तक उसे तीव्र ज्वर रहा। कविराज से चिकित्सा कराई गई थी पर, उससे रोग का शमन नहीं हो पाया

था। मन खराब होने के कारण लक्ष्मी ने दोपहर को भोजन नहीं किया था। लोगों की हाय-हाय और रोना-धोना सुनकर वह जल्दी से उठकर बाहर जाने लगी। उसकी मां ने उसके पास आकर उसे जाने से रोका और रोने लगी। लक्ष्मी दुःख का रहस्य नहीं समझ पाई। वह भय से 'मां क्या हुआ?' कहते हुए चिल्ला पड़ी। तभी एक दल स्त्रियां आकर उसे अभागिन, काम जली आदि संबोधन से अभिहित करती हुई जोर-जोर से रोने लगीं। लक्ष्मी धीरे-धीरे सब समझ गई पर, उसकी आंखों से एक बूंद आंसू नहीं निकले। जिस पति को उसने अच्छी तरह देखा ही नहीं था, उसके लिए उसे क्या दुःख हो सकता था? वैधव्य की यंत्रणा का यथार्थ बोध करना उसके लिए अभी बाकी था। लोगों का रोना-धोना उसे असह्य लग रहा था।

कृष्ण पंडित की पत्नी ने विष्णुप्रिया को यह खबर दे दी। पंडितानी के साथ जाने पर उसे पंचानन शर्मा का घर मिल गया। इस अवसर पर पिछले अपमान की बात उसके मन में नहीं आई। लक्ष्मी के मुख को याद कर-करके उसका हृदय विह्वल हो रहा था। इतनी कोमल, छोटी-सी लड़की यह कष्ट कैसे सह सकेगी? पंचानन शर्मा का घर उस समय आसपास के लोगों और कुटुंबों से भरा हुआ था। शर्मा माथे पर हाथ रखे चौताल पर बैठे थे। लक्ष्मी भीतर मां से सटकर बैठी थी। उसे नहला-धुलाकर और उसके आभूषण उतारकर उसे सफेद कपड़े पहना दिए गए थे। उस ओर दृष्टि जाते ही विष्णुप्रिया ने अपना मुख फेर लिया। उसे स्त्रियां बड़ी निष्ठुर प्रतीत हो रही थीं। लक्ष्मी ने रोना पीटना नहीं किया। इसलिए वे उसे कोस रही थीं। उसे दुःखी करने के लिए वे उसके भावी जीवन का भयावना रूप उसके सम्मुख स्पष्ट करने की चेष्टा कर रही थी। किंतु, लक्ष्मी निर्विकार भाव से चुपचाप बैठी थी। विष्णुप्रिया धीरे-धीरे जाकर लक्ष्मी के पास बैठ गई। हाकिम की पत्नी को लक्ष्मी के निकट बैठी देखकर दो स्त्रियां तुरंत उसके लिए आसन लेने चली गईं। विष्णुप्रिया लक्ष्मी से लिपटकर बोली, "इस घटना में तुम्हारा कुछ दोष नहीं है बेटी ! जन्म और मरण जगत का शाश्वत नियम है, जिसे कोई नहीं तोड़ सकता। विधवा होने पर लड़की का जीवन शेष हो जाता हो, ऐसी बात भी नहीं है। आज समय बहुत बदल गया है। तुम्हें उत्साहित मन से जीवन जीने के लिए कुछ उपाय निकालना होगा। हम सब हैं न बेटी ! तुम कुछ चिंता मत करो।"

विष्णुप्रिया ने यद्यपि धैर्य-पूर्वक अपनी बातें कहीं थीं, फिर भी बाद में उसकी वाणी कांपने लगी। विष्णुप्रिया की दुःखकातर मुखाकृति की ओर देखकर लक्ष्मी अचानक वेगवती तटभग्ना नदी की भांति विलाप करने लगी। वह क्यों इतना अधीर होकर रोने लगी उसे स्वयं समझ में नहीं आया। संभव है इतनी देर तक अन्य स्त्रियों के कठोर वचनों को सुनने के बाद विष्णुप्रिया की प्यार भरी बातों ने उसे विचलित कर दिया हो।

## 23

पंचानन शर्मा ने अपनी बेटी को ससुराल नहीं भेजा। पहले, उसे भेजने का उनका मन था किंतु जामाता के स्वर्गवास की खबर देने आए लोगों की बातों से उन्हें आभास हुआ कि लक्ष्मी को ससुराल वाले उसे कुलक्षिणी मानकर दोष दे रहे हैं। ऐसे लोगों के बीच लड़की को भेज देने पर उसकी क्या दुर्गति होगी, शर्मा यह अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने सोचा कि इससे अच्छा यही होगा कि वे उसे अपनी आंखों के सामने रखें और उसके दुःख कष्ट में सहभागी बनें। किंतु, ऐसा करना भी उनके लिए कम दुखद न था। नवयौवना कन्या को विधवा का रूखा-सूखा भोजन देकर स्वयं मांस-मछली खाएं, यह शर्मा दंपत्ति के लिए असह्य था। एक दिन शर्मा ने मछली-भात खाते-खाते खिड़की से लक्ष्मी का चेहरा देखा तो उन्होंने अपना भोजन कटोरे में छुपाकर रख दिया। शर्मा की पत्नी फूट-फूटकर रोने लगी। जो लक्ष्मी पहले टेंगा मछली के बिना भात मुंह में नहीं डालती थी, अब उसे मूंग की पतली दाल के साथ भात खाना पड़ता था।

नीति-नियम और व्रत-उपवास की शृंखला को धीरे-धीरे कन्या ने किसी प्रकार अपना लिया। पंचानन शर्मा सब लक्ष्य कर रहे थे। इसके पहले अपने घर की कई बाल-विधवा स्त्रियों को विधवा-व्रत पालन करते देखकर उन्हें रंचमात्र भी चिंता नहीं हुई थी। उन्हें यह दैनन्दिन-जीवन की गतानुगतिक घटना प्रतीत होती थी। किंतु, अब लक्ष्मी को देखते ही उनका हृदय विह्वल हो जाता था। उनके मन में गुणाभिराम बरुआ की बात बार-बार आती थी। शर्मा ने विधवा-विवाह का समर्थन कभी नहीं किया था। किंतु, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने सभी विधवाओं के प्रति जो सामाजिक अन्याय की बातें लिखी थीं, शर्मा को इस समय उसका तात्पर्य समझ में आ रहा था। साधारण मनुष्य अपनी अभिज्ञता के बल पर जिन बातों को समझ नहीं पाते, विद्यासागर के समान मनीषी अपनी दूर दृष्टि से सहज ही उनकी उपलब्धि कर लेते हैं। यों तो गुणाभिराम ने उन्हें ये सब बातें बहुत पहले बतला दी थीं, किंतु परिवर्तित परिस्थिति ने उन्हें फिर से बिल्व कुटीर की ओर उन्मुख होने के लिए विवश कर दिया। अब वे प्रतिदिन संध्या समय हाकिम के बैठक खाने में जाने लगे।

बरुआ महाशय और उनकी पत्नी पूर्ववत् ही पंचानन शर्मा का आदर-सत्कार करते थे। पहले दो तीन दिनों तक शर्मा एक-दो बात करके चुपचाप बैठे रहते थे। गुणाभिराम भी अनाप-सनाप प्रश्न करके उन्हें परेशान नहीं करते थे। किंतु, एक दिन स्वयं शर्मा ने ही लक्ष्मी के संबंध में बातें करनी शुरू कीं। बेटी का दुःख देखकर उन्हें जो आंतरिक वेदना होती थी, उसे तनिक प्रकाश में लाने की उन्होंने चेष्टा की।

"भाग्य में जो था हुआ। अब लड़की को इस नारकीय यंत्रणा से कैसे बचाएं। इसका कोई उपाय बताइए। हमारे समाज में विधवा-विवाह संभव नहीं है। भविष्य में कभी ऐसा

नियम प्रचलित भले हो जाए, किंतु, मेरे जीवन-काल में ऐसा होने की कोई संभावना नहीं है। हमारे समाज में आपके सदृश उदारमना पुरुष कितने हैं? उसके लिए यदि कोई अन्य उपाय मिल जाता तो अच्छा था। लक्ष्मी कुशाग्र बुद्धि है। मेरे कई लड़कों की अपेक्षा, वह कहीं अधिक बुद्धिमती है, यह हमने, स्वर्ण के साथ उसे पढ़ाते समय ही लक्ष्य कर लिया था।"

गुणाभिराम कुछ समय तक दूसरी तरफ देखते रहे। पंचानन शर्मा के समान लोकाचार के प्रति आत्मसमर्पण करने वाले मनुष्य के प्रति उनके हृदय में प्रबल वितृष्णा थी किंतु, जब शर्मा ने एक असहाय पिता की तरह कांपती आवाज में अपनी बात कही तो वे कठोर बनकर नहीं रह सके। उन्होंने अपने स्वर को भरसक कोमल बनाते हुए कहा, "इच्छा करने पर आप सब कुछ कर सकते हैं। केवल साहस की आवश्यकता है। कलकत्ता में आजकल अनेक विधवा कन्याओं को उनके मां-बाप स्कूल में पढ़ा रहे हैं। मेरे परिचित दो व्यक्तियों ने 'भारतीय महिला विद्यालय' नाम से एक स्कूल खोला है। बेथुन स्कूल तो है ही। आपकी इच्छा हो तो लक्ष्मी को किसी एक स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा जा सकता है। मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा। वहां रहने पर उसका मन भी प्रसन्न रहेगा और अच्छे लोगों की संगति पाकर अच्छी शिक्षा भी मिलेगी।"

पंचानन शर्मा तत्काल कुछ उत्तर न दे सके। कलकत्ता में लड़कों को ही भेजना बड़ी बात है। एक लड़की को अकेले इतनी दूर पढ़ने के लिए भेजना शर्मा की दृष्टि में असंभव सी बात थी। इसके अतिरिक्त दो लड़कों के रहते हुए एक लड़की के ऊपर इतने सारे रुपए खर्च करना, उनके प्रति  अन्याय होगा। इसीलिए शर्मा ने "हां, इन सब बातों पर अच्छी तरह विचार करना होगा" कहकर इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर दिया।

किंतु, उन्हें सोच-विचारकर लक्ष्मी के भविष्य के संबंध में जल्दी ही निर्णय लेना पड़ा। एक दिन कचहरी से घर आने पर शर्मा चाय-जलपान करके आराम कर रहे थे। तभी लक्ष्मी एक छाया की तरह धीरे से आकर उनके सामने खड़ी हो गई। वह पहले की अपेक्षा लंबी हो गई थी। स्वादहीन निरामिष भोजन करने पर भी उसके अंग-प्रत्यंग स्वाभाविक रूप से विकसित हो गए थे। प्रकृति विधवा और सधवा के बीच कोई फर्क नहीं मानती। शर्मा बेटी को निकट बैठाकर प्यार से बोले, "बेटी ! क्या बात है?" लक्ष्मी की दोनों आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं। शर्मा ने समझ लिया कि किसी बात से उसके मन को आघात पहुंचा है, इसीलिए वह मेरे पास आई है। नहीं तो वह ज्यादातर यथासंभव उनसे कतराती रहती है। अपने पिता पर उसके मन में एक बड़ा अभियोग था।

"पिता जी, क्या अब मुझे सारा जीवन इसी तरह बिताना होगा? मैंने क्या अपराध किया है? तुम लोगों ने मुझसे जो करने को कहा मैंने वही किया। मेरी बुआ और चाची हमेशा मुझे कुलक्षिणी कहती रहती हैं, मुझे अभी बहुत नरक-यंत्रणा भोगनी बाकी है। पिता

जी, मेरे लिए कुछ कीजिए।"

शर्मा बहुत देर तक चुप रहे। उसके बाद लंबी सांस भरकर कहने लगे, "हाकिम महोदय तुम्हें कलकत्ता के स्कूल में भेजने के लिए कहते हैं। किंतु, हमारे जैसे लोगों के लिए यह असंभव है। समाज हमें अलग कर देगा और तुम्हें बदनाम करेगा।"

पिता की पहली पंक्ति सुनकर लक्ष्मी का चेहरा खिल गया, मानो इतने अंधकार के बीच उसे थोड़ा सा प्रकाश मिला है। बाद वाली पंक्ति उसने अच्छी तरह नहीं सुनी। उनके हाथ पकड़कर बोली, "पिता जी, कहिए मुझे भेजेंगे न? हाकिम, स्वर्ण को भी कलकत्ता पढ़ने के लिए भेजेंगे। तब हम दोनों एक साथ जा सकेंगे"।

शर्मा थोड़ा गंभीर हो गए। बेटी की आशा पर पानी फेरने में उन्हें बुरा लग रहा था।

"बेटी, स्वर्ण बड़े आदमी की बेटी है, उसके पढ़ने-लिखने के बाद, एक अच्छे लड़के के साथ उसका विवाह हो जाएगा। लेकिन, तुम पढ़कर क्या करोगी?"

"मैं शिक्षिका बनूंगी, मेम साहब की तरह", लक्ष्मी ने तत्काल उत्तर दिया, "नहीं तो, डाक्टरनी बनूंगी। क्रिश्चियन पट्टी में सुशीला नाम की एक लड़की कलकत्ता से डाक्टरी पढ़कर आई है। अभी धुबड़ी की तरफ सरकारी नौकरी पर है। पिता जी ! मैं भी उसी की तरह काम करूंगी।"

एक सांस में सारी बातें कहकर लक्ष्मी ने बड़ी आशा से पिता के मुंह की ओर देखा। उसके उत्साह को देखकर विषाद के बीच भी शर्मा का मन प्रसन्न हो गया।

"किंतु, मेम साहब और क्रिश्चियन लड़की की तरह तुम कैसे बन सकोगी लक्ष्मी? हमारी तरह ब्राह्मण के घर की किसी लड़की को कलकत्ता जाकर पढ़ते हुए तुमने कभी देखा है? वहां तुम्हारी तरह लड़की"—शर्मा, 'विधवा' शब्द जबान पर न ला सके और चुप हो गए। लक्ष्मी की दृष्टि उस तरफ नहीं गई। उसका मन तो उन्मुक्त आकाश में विचरण कर रहा था। बहुत दिनों के बाद वह पहले की तरह अनर्गल बात कह गई, "ब्राह्मणों के कई लड़के कलकत्ता गए हैं। क्रिश्चियन और ब्राह्मणों की लड़कियां भी गई हैं। मेरे जाने के बाद ब्राह्मणों की लड़कियां भी धीरे-धीरे जाना शुरू कर देंगी।"

बेटी की बातें शर्मा को ठीक हाकिम बरुआ की बातों की तरह लगीं। उसके मुख की तरफ देखकर उन्होंने उसमें आशा और विश्वास भरने की चेष्टा की। किंतु, सुनहले भविष्य की बात सोचकर वर्तमान की वास्तविकता को भुलाया नहीं जा सकता। हताश स्वर में उन्होंने कहा, "समाज में इतना परिवर्तन आएगा, मेरा मन यह स्वीकार नहीं करता। पुराने नियमों को इतनी आसानी से कोई नहीं छोड़ेगा। कलकत्ता में एक दो आदमियों के हल्ला-गुल्ला करने से कुछ नहीं होता। हमारा यह असम जैसे का तैसा बना रहेगा। यदि तुम्हारा पढ़ने का इतना अधिक मन है तो मैं पूछताछ करके देखूंगा। यहां के बंगाली स्कूल में तुम्हारा दाखिला करा दूंगा।"

सयानी लड़की का नाम स्कूल में लिखाने की बात होते ही शर्मा के घर में हलचल मच गई। एक तरफ बाप और बेटी और दूसरी तरफ सारा घर। पृथ्वी पर जो काम कभी नहीं हुआ, शर्मा को वह काम करते देखकर सभी उन्हें धिक्कारने लगे। लक्ष्मी को अपने पिता के पक्ष की वकालत करते देखकर सभी उस पर चढ़ बैठे। शर्मा भी इस बार अपने हठ पर डटे रहे, उन्होंने किसी की बात नहीं सुनी। बंगाली बालिका-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका चारुशीला सेन से बातचीत करके उन्होंने लक्ष्मी का नाम स्कूल में लिखाने का बंदोबस्त कर लिया। अवस्था में बड़ी होने के कारण उसका नाम लोअर प्राइमरी स्कूल की ऊपर-श्रेणी में लिखवाने का भी शर्मा ने अनुरोध किया। लक्ष्मी अपने घर में भली भांति पढ़ती थी। उसने स्वर्ण के साथ गिनती, पहाड़ा और अंकगणित की पहली किताब पूरी पढ़ ली थी। इसलिए ऊपर की कक्षा में उसे कोई कठिनाई नहीं होगी। चारुशीला सेन की भी यही सलाह थी। हां, उसे बंगला भाषा नए रूप में सीखने में कुछ समय लगेगा किंतु लक्ष्मी को देखकर प्रधानाध्यापिका ने कहा कि उन्हें विश्वास है, लक्ष्मी जल्दी ही बंगला भाषा सीख जाएगी। लक्ष्मी को प्रधानाध्यापिका बहुत अच्छी लगीं। उनकी बातचीत का ढंग अन्य स्त्रियों की तरह न था। उनका मन उदार और उन्मुक्त था। पिता ने बतलाया था कि वे भी स्वर्ण के परिवार की तरह ब्राह्म समाजी हैं। लक्ष्मी ब्राह्म समाज के संबंध में कुछ नहीं जानती थी किंतु अभी तक वह जिन ब्राह्मों से मिली थी, सभी उसे अच्छे लगे थे। चारुशीला सेन ने उसे देखते ही गंभीर स्वर में सिर हिला कर कहा था, "बाल विवाह की करुण परिणति"। किंतु इसके उपरांत उन्होंने किसी दिन यह अनुभव नहीं होने दिया कि वह अन्य  छात्राओं से अलग है। स्कूल की सभी छात्राएं बंगाली थीं किंतु लक्ष्मी के साथ सभी असमिया में बातचीत करती थीं। दो चार दिनों बाद से ही लक्ष्मी भी टूटी-फूटी बंगला बोलने लगी। झोपड़ीनुमा दो कमरों के स्कूल ने लक्ष्मी के मन में अजस्र आशा का संचार कर दिया था। अब उसके जीवन की परिधि मानो सहसा विस्तृत हो गई हो। जिस जीवन-लता को उसने जड़-मूल से उखाड़कर फेंकना चाहा था, वह जैसे पुनः जीवन्त होकर लहलहा उठी।

## 24

एन्ट्रेन्स परीक्षा का परिणाम निकलने के दो दिनों बाद ही लक्षेश्वर नगांव आ गया। नगांव हाईस्कूल में एकमात्र वही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। यह खबर पाकर गुणाभिराम को अपार आनंद हुआ। उनको ऐसा लगा कि उनका ही कोई आत्मीय परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। उन्होंने उसी समय कलकत्ता निवासी अपने बंधु दुर्गामोहन दास को किसी अच्छे ब्राह्मण के घर में लक्षेश्वर के रहने की व्यवस्था करने के लिए पत्र लिखा और उसका सारा

खर्च वहन करने का दायित्व भी स्वयं ले लिया। दुर्गा मोहनदास को उन्होंने एक बात और लिखी की बेथुन स्कूल के बोर्डिंग में स्वर्ण के लिए एक सीट की व्यवस्था कर दें।

पंचानन शर्मा के घर में घटित दुर्घटना के बाद से ही गुणाभिराम बरुआ का मन बहुत अशांत रहने लगा था। शिक्षित जन ही अगर समाज की कुप्रथाओं को दूर करने की कोई चेष्टा नहीं करेंगे तो असमिया समाज की कभी उन्नति नहीं हो सकेगी। इस प्रकार के समाज में उनकी संतान का निर्वाह किस प्रकार हो सकेगा? विशेषतः वे स्वर्ण के लिए चिंतित थे। लड़की है, थोड़ी बड़ी होते ही उसे समाज के कुसंस्कारों का शिकार होना पड़ेगा। नगांव में रहकर वह इन सब विरोधों से संघर्ष कर पाएगी, इसमें संदेह है। यह सब सोचकर उन्होंने यही निश्चय किया कि जितनी जल्दी हो सके स्वर्ण को पढ़ने के लिए कलकत्ता भेज देना चाहिए। लक्षेश्वर को कलकत्ता भेजने की योजना बनाते समय उनके मन में शायद एक बात और भी आई कि स्वर्ण के बोर्डिंग में अकेली रहने पर लक्षेश्वर कभी-कभी उसके पास जाकर उसकी खोज खबर ले सकेगा यद्यपि उनके बहुत से मित्र, आत्मीय जन और शुभाकांक्षी कलकत्ता में रहते थे। किंतु लक्षेश्वर उनके घर के बिल्कुल अपने लड़के के समान था। भगवान चाहेगा तो वह एक दिन सच में अपने लड़के के समान ही हो जाएगा। लक्षेश्वर पर उनकी पूरी आस्था थी। उनको विश्वास था कि लक्षेश्वर पढ़ लिखकर उदार प्रकृति का विद्वान बनेगा और अपनी स्वर्ण के लिए वे ऐसा ही पात्र चाहते थे।

कलकत्ता जाने के लिए लक्षेश्वर को कोई विशेष प्रबंध नहीं करना पड़ा। उसने थोड़े बहुत कपड़े लत्ते बांध लिए। जाति-कुटुंब के लोगों से मिलने जुलने में घूमते-घूमते ही उसका सारा समय निकल गया। बाकी के सारे काम, वहां रहने, खाने से लेकर जहाज के टिकट कराने तक की व्यवस्था हाकिम बरुआ ने ही की। बरुआ सभी के लिए प्रथम श्रेणी का टिकट लेना चाहते थे किंतु लक्षेश्वर ने अपने लिए द्वितीय श्रेणी का टिकट कराने का अनुरोध किया। उसके साथ नगांव का ही एक परिचित लड़का भी कलकत्ता जा रहा था। वह द्वितीय श्रेणी में जाए और लक्षेश्वर प्रथम श्रेणाी में, यह तो अच्छी बात नहीं होगी। जाते समय लक्षेश्वर के माता-पिता ने उससे एक आश्वासन पाना चाहा था कि बिना उनकी अनुमति के वह कहीं अपना विवाह तय न करे। लक्षेश्वर ने उनके संदेह के कारण को समझकर अपनी मां को छूकर शपथ ली कि विवाह आदि के विषय में वह अपने माता-पिता के मतानुसार ही काम करेगा। जाते समय पिता ने दस रुपये उसके हाथ में देकर अपने पितृ-दायित्व का पालन किया। लक्षेश्वर बिना किसी से आर्थिक मदद लिए मात्र सरकारी वृत्ति के बल पर कलकत्ता में किस प्रकार अपना गुजारा करेगा इस संबंध में सोच-विचार करने की उन्होंने जरूरत नहीं समझी। उन्हें विश्वास था कि लक्षेश्वर बहुत कर्मठ लड़का है, वह कोई न कोई उपाय कर लेगा। हाकिम महोदय के साथ किसी प्रकार का नाता न जोड़कर उनसे रुपये पैसे लेने में उन लोगों को कोई बुराई दिखाई नहीं दी।

बिल्व कुटीर में कलकत्ता-यात्रा के लिए तैयारियां पूरे उत्साह से हो रही थीं। स्वर्ण को पहुंचाने के लिए, पूरे परिवार ने ही कलकत्ता जाने की तैयारी की। यद्यपि विष्णुप्रिया ने बेटी को कलकत्ता में पढ़ाने की अनुमति दे दी थी किंतु वह स्वयं जाकर सब कुछ देखभाल लेना चाहती थी। यह किए बिना उसका मन नहीं मानता था। इतनी कम अवस्था में मात्र नौ वर्ष की लड़की को इतनी दूर अकेली दूर देश में छोड़ने की बात मन में आते ही उसका हृदय विह्वल हो जाता था किंतु स्वर्ण के सामने उन्होंने एक बार भी अपनी आंखों में आंसू नहीं आने दिया। इधर कलकत्ता जाने के लिए की गई तैयारियों को देखकर स्वर्ण को लगा कि पहले की तरह कहीं घूमने के लिए जाएंगे। अपने पिता के मुंह से कलकत्ता नगर का जैसा वर्णन उसने सुना था, उससे उसने यही कल्पना की कि कलकत्ता नगरी एक विचित्र स्वप्नपुरी है। माता-पिता को छोड़कर अकेले रहने में कैसा लगेगा, इन सब बातों को सोचने लायक उसकी उम्र अभी नहीं हुई थी।

यात्रा-दिवस निकट आने के साथ-साथ सबसे भेंट-साक्षात्कार करने का काम शुरू हुआ। नगांव के कई ब्राह्म घरों के साथ बरुआ परिवार का मैत्री-भाव था। इसके अतिरिक्त दो एक संभ्रांत असमिया और मारवाड़ियों के साथ भी उन लोगों का आना-जाना था। उनमें से बहुत लोगों ने स्वर्ण की विदाई के उपलक्ष्य में बरुआ परिवार को जलपान और भोजन के लिए आमंत्रित किया। प्रत्येक व्यक्ति ने स्वर्ण को आशीर्वाद दिया और शिक्षाएं भी दीं।

गुरुनाथदत्त की एक लड़की, दो मास पूर्व कलकत्ता में पढ़ने के लिए गई हुई थी। वह कलकत्ता के 'भारत आश्रम' में अपनी बुआ के घर में रहती थी। केशवचन्द्र सेन और उनके अनुगामी साधारण ब्राह्म-समाज के सभ्य जनों ने एक महान आदर्श लेकर 'भारत आश्रम' की स्थापना की थी। इस आश्रम में भी ब्राह्म एक परिवार की तरह रहकर खाना-पीना, उपासना और पठन-पाठन आदि के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा के प्रचार और प्रसार का काम करते थे। किंतु, कुछ दिनों पहले कलकत्ता से आए पत्र द्वारा गुरुनाथदत्तको यह पता चला था कि 'भारत आश्रम' की हालत बहुत अच्छी नहीं है। ब्रह्मानंद केशवचन्द्र सेन और भारत आश्रम के महिला-स्कूल के शिक्षक शिवनाथ शास्त्री और उनके साथियों ने जो समादर्शी दल बनाया था, उससे ब्राह्म-समाज की युग चेतना का परिचय मिलता है। कभी केशवचन्द्र सेन को सभी के द्वारा सारे समाज सुधारकों का नेता मान लिया गया था किंतु अब उनके क्रिया-कलापों ने प्रमाणित कर दिया कि मुनियों, त्यागी और व्रती लोगों को भी मतिभ्रम होता है। नवगठित ब्राह्मदल अब समाज को आधुनिक भाव धारा के पथ पर अग्रसर करना चाहता है, इसमें निराश होने का कोई कारण नहीं।

"किंतु, स्त्री-शिक्षा और नारी-मुक्ति को लेकर दोनों दलों के बीच जो रस्सा कशी चल रही है यह क्या कोई अच्छी बात है? स्त्री-शिक्षा को लेकर विश्व के विकासशील देशों में भी बहुत तर्क-वितर्क चल रहे हैं। केशवचन्द्र सेन की तरह ही पश्चिम के बहुत से लोग

यह मानते हैं कि स्त्रियों और पुरुषों को समान शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक विचार संपन्न पुरुष की उपयुक्त पत्नी होने के लिए जितनी शिक्षा आवश्यक है, उतनी ही स्त्रियों के लिए पर्याप्त है। दूसरी तरफ समादर्शी ब्राह्मों की तरह बहुत से लोगों का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र में नारी को पुरुष के साथ समान रूप से आगे बढ़ना चाहिए। दो वर्ष पहले दो लड़कियों ने लड़कों के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेन्स परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण करके हमें चमत्कृत कर दिया था। इसलिए स्त्री-शिक्षा के विषय में हमें नए रूप से विचार करना होगा। केशवचन्द्र सेन की विचारधारा अब पुरानी पड़ चुकी है।"

गुणाभिराम बरुआ के साथ बातचीत करते हुए गुरुनाथ दत्त ने ठीक किया कि राजू को बेथुन स्कूल में ही भर्ती कराना अच्छा होगा। पर, वह होस्टल में न रहकर अपनी बुआ के घर रहकर ही पढ़ेगी। दत्त ने स्वर्ण को भी राजू की बुआ के घर में रखने के लिए कहा किंतु गुणाभिराम और विष्णुप्रिया ने किसी के घर पर स्वर्ण को रखना उचित नहीं समझा। बोर्डिंग में किसी अच्छी अध्यापिका के अधीनस्थ रखना ही उन लोगों को उपयुक्त लगा। दत्त ने कहा कि वहां खाने पीने आदि का कष्ट होगा। किंतु उन लोगों ने इन बातों को विशेष महत्व नहीं दिया। बेटी का मानसिक विकास ही उनकी दृष्टि में महत्वपूर्ण था, सुस्वादु भोज्य पदार्थ नहीं।

स्वर्ण भी अपने परिचित एक आदमी के घर जाकर भेंट करने को उत्सुक थी। तारा की मां को उसने बहुत दिनों से नहीं देखा था। पुत्री के अमेरिका जाने के बाद से गोलापी ने बाहर घूमने-फिरने का अधिकतर काम अपने ऊपर ले लिया था। घर में रहने पर उसे अकेलापन खटकता था। इसीलिए वह कई बार मेमों के साथ कैंप में चली जाती थी, रहा और फूलगुड़ी के बाजारों में जाकर उसने एक दो बार धर्म प्रचार भी किया था। हाट में एक छप्पर के नीचे बैठकर गोलापी और पादरी मेमों ने ईसा की फोटो और असमिया भाषा में लिखी छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें लोगों में बांटी थी। दो चार लोग कीमत के रूप में एक दो पैसे भी दे जाते थे, पर कुछ न देने पर भी कोई बात न थी। लोगों के एकत्र होने पर मेम लोग उन्हें फोटो दिखातीं, कहानी सुनातीं अथवा छोटी सी वक्तृता देती थीं। असमिया के कोई शब्द भूल जाने पर वे गोलापी से पूछ लेती थीं। गोलापी को इन्हीं सब कारणों से विष्णुप्रिया के पास जाने का समय नहीं मिलता था। किंतु, विष्णुप्रिया उसे याद किया करती थी। स्वर्ण ने जब गोलापी से मिलने की इच्छा व्यक्त की तो विष्णुप्रिया बड़े चाव से बेटी को साथ लेकर क्रिश्चियन पट्टी में स्थित गोलापी के घर की ओर चल पड़ी।

उस दिन रविवार था। रविवार को गोलापी प्रायः अपने घर पर ही रहती थी। सुबह में गिरजा से आने पर वह उस दिन अपनी बेटी तारा को पत्र लिखती थी, सिलाई करती

थी और कुछ काम न होने पर अकेली बैठी रहती थी। हाकिम की बग्घी को घर के सामने खड़ी देखकर गोलापी आश्चर्यपूर्वक कुछ देर उसी ओर ताकती रही। स्वर्ण और विष्णुप्रिया को देखकर वह जल्दी से आगे बढ़ी और उन्हें साथ में भीतर ले आई। करीने से सजे अपने छोटे से बैठक खाने में उन्हें बैठाया। कमरा खूब साफ-सुथरा था। खिड़कियों में, साहब के बंगले में लगे लैस, लगे पर्दो की तरह छोटे पर्दे लगे थे। दीवाल पर मैरी की गोद में शिशु ईसा का एक चित्र था। उसके नीचे मेज के ऊपर रखे एक पौधे पर मोमबत्ती जल रही थी और पास में बाइबिल की एक पुस्तक रखी थी। मेज के ऊपर फूल कढ़ा एक टेबुल क्लाथ था। तारा ने इसे अपने हाथों से बनाया था। कमरे में काठ की दो पुरानी कुर्सियां थीं, जिन्हें देखकर ही आभास हो जाता था कि इन्हें साहब के बंगले से लाया गया है। ब्रनसन साहब अमेरिका जाने के पहले ये कुर्सियां गोलापी को दे गए थे।

गोलापी ने बड़ी प्रसन्नता से स्वर्ण के कलकत्ता जाकर पढ़ने की बात सुनी। वह स्वयं कभी कलकत्ता नहीं गई थी पर साहबों और मेमों से वहां के बारे में बहुत कुछ सुना था। इसलिए शिक्षा और परामर्श के रूप में उसने एक दो बातें स्वर्ण और विष्णुप्रिया से कही। छोटी-छोटी बातें एक अभिज्ञ व्यक्ति की तरह गोलापी को कहते देखकर विष्णुप्रिया को भीतर ही भीतर हंसी आ रही थी। किंतु उसके व्यवहार से हंसने का कुछ आभास नहीं मिलता था।

तारा का प्रसंग आते ही गोलापी के मुख पर चमक आ गई। तारा अमेरिका में नर्स का प्रशिक्षण ले रही थी। ब्रनसन साहब के स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हुआ था किंतु वे जल्दी वापस नहीं आ सकेंगे। इसलिए असम आने वाले अन्य एक क्रिश्चियन परिवार के साथ तारा दो महीनों के भीतर वापस आ जाएगी। पुत्री को शीघ्र देख पाने की आशा में गोलापी दो वर्ष के अंतराल को भूल गई थी। विष्णुप्रिया गोलापी के मन की हालत समझ रही थी। स्कूल बंद होने पर जब स्वर्ण भी कलकत्ता से वापस आएगी तो उसका मन भी ऐसा ही उद्वेलित होगा।

थोड़ी देर गोलापी के पास बैठने के बाद दोनों उठकर जाने लगीं। गोलापी उनसे थोड़ा ठहरने के लिए कहकर भीतर गई और फूल कढ़ी एक सुंदर तकिये की खोली लाकर स्वर्ण के हाथों में देती हुई बोली, "बेटी ! बोर्डिंग में रहते समय इसे तुम अपने तकिये पर लगा लेना। इसे देखकर तुम्हें हमारी याद आती रहेगी। मैंने यह तारा के लिए बनाया था किंतु तुम भी मेरे लिए तारा के समान हो" स्वर्ण ने शरमाते हुए सहर्ष वह उपहार ले लिया। विष्णुप्रिया ने भी गोलापी को धन्यवाद देते हुए बिदाई ली।

# 25

नगांव से सिलघाट तक लगभग बत्तीस मील का रास्ता है। घोड़ागाड़ी से जाने पर दस बारह घंटे लगते हैं। रास्ते में दो बार घोड़े को खोलना पड़ता है। हाकिम बरुआ के परिवार ने सुबह यात्रा प्रारंभ की और संध्या छः सात बजे तक सिलघाट पहुंच गए। भाग्यवश, 'राजमहल' नाम का जहाज उनके पहुंचने के साथ ही साथ कोकिला मुख से चलकर सिलघाट पहुंच गया था। सिलघाट पर जहाज ने रातभर के लिए लंगर डाल दिया। बहुत से बंगाली और असमिया यात्री उस पार से इस पार आकर परिचित यात्रियों के साथ बातचीत करते हुए शोरगुल कर रहे थे। दो एक यात्री पास ही रहने वाले परिचित लोगों के घर रात बिताने चले गए। किंतु अधिकांश यात्री जहाज पर ही रहे क्योंकि सबेरा होते ही जहाज को चल देना था। जो लोग भोजन के विषय में नियम पालन करते थे और जहाज का खाना नहीं खाते थे, उन्होंने कपड़े का पर्दा लगा कर अपना भोजन स्वयं बनाया। बरुआ परिवार के पहुंचते ही लक्षेश्वर ने आकर खबर दी कि बड़ी दीदी के लिए भात बनाने के सारे आयोजन कर दिए गए हैं। किंतु, विष्णुप्रिया ने हंसते हुए कहा—भाई ! तुम सब छात्र एक साथ अपना खाना पीना करो। मेरे लिए खाना, साथ में आया ब्राह्मण ही बना देगा।

लक्षेश्वर पहले दिन ही बैलगाड़ी से चलकर सुबह को सिलघाट पहुंच गया था। साथ में नगांव से धरणीकांत का एक लड़का भी सरकारी वृत्ति पाकर कलकत्ता जाने के लिए आया था। अतः दोनों एक साथ आए थे। लक्षेश्वर और उसके साथी के पास द्वितीय श्रेणी के टिकट थे। जहाज पर सीट सुरक्षित कराने के लिए जाते समय शिव सागर से आगे दो असमिया विद्यार्थियों से उनका परिचय हुआ। इस प्रकार कलकत्ता जाने वाले छात्रों की संख्या चार हो गई। बरुआ परिवार के टिकट प्रथम श्रेणी के थे। इसलिए उन्हें अपना एक केबिन मिला था। केबिन में प्रथम श्रेणी के अन्य सभी यात्री प्रायः विदेशी थे। उनमें से दो एक को गुणाभिराम पहचानते थे। उनसे उन्होंने बातचीत की। विष्णुप्रिया ने बेटों को खिला-पिलाकर केबिन में सुला दिया और स्वयं भी घाट पर खाना पीना करने के बाद जहाज पर आ गई। स्वर्ण अपने पिता के साथ जहाज पर भोजन के लिए गई। चारों ओर बैठे हुए मेम साहबों के बीच कांटा-चम्मच से खाने में स्वर्ण को बड़ी परेशानी महसूस हो रही थी। किंतु गुणाभिराम अपनी बेटी को इस प्रकार की परिस्थिति के लिए तैयार करके घर से लाए थे। उसने मात्र एक महीना पहले ही कांटा-चम्मच से खाना इसीलिए सीखा था कि कलकत्ता में उसे परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालने का अभ्यास हो जाएगा।

जहाज में रात्रि भोजन के पहले स्वर्ण ऊपर डेक के जंगले को पकड़कर ब्रह्मपुत्र के वक्षस्थल पर सूर्यास्त के बाद की शोभा देखने में तन्मय थी कि एक आश्चर्य जनक घटना घटी। एक यूरोपीय महिला स्वर्ण के गोरे रंग, सुंदर मुखाकृति और कीमती पोशाक को देखकर

उसे भूल से यूरोपीय बालिका समझ बैठी और उससे अंग्रेजी में कुछ-कुछ पूछने लगी। फिर बरुआ को पहचानने के बाद् उसे अपनी भूल समझ में आई।

खाने के समय उन्होंने स्वर्ण की मेज की तरफ से गुजरते हुए बरुआ से कहा, ''आपकी लड़की बहुत सुंदर है। मेरी लड़की भी इसी उम्र की है, वह इंग्लैंड में पढ़ रही है।"

गुणाभिराम ने उस महिला से कहा, "स्वर्ण भी कलकत्ता के बेथुन स्कूल में पढ़ने के लिए जा रही है।" यह सुनकर उस भद्र महिला ने प्रसन्न होकर कहा कि उसकी मित्र मिस निकोलस उसी स्कूल में अध्यापिका है। अगर वे चाहें तो मिस निकोलस के नाम स्वर्ण के संबंध में उन्हें वे एक परिचय-पत्र दे दें। स्वर्ण के प्रति भद्र महिला का अप्रत्याशित स्नेह देखकर गुणाभिराम अभिभूत हो गए और उन्होंने पत्र देने का अनुरोध किया। गोवालन्द नामक स्थान तक रास्ते में मिसेज स्पेन्सर नामक वह अंग्रेज महिला प्यार से स्वर्ण और करुणा को खाने के लिए बिस्कुट और टॉफी देती रहीं।

दूसरे दिन सुबह ही सिलघाट से जहाज चल पड़ा। दिन का अधिकांश समय स्वर्ण ने अपने भाई करुणा के साथ जहाज के डेक पर बैठकर ब्रह्मपुत्र की जलराशि तथा उस पार के मनोरम दृश्यों को देखने में बिताया। तेजपुर के पास पहुंचने पर गुणाभिराम और विष्णुप्रिया ने आग्रह करके अंगुली के इशारे से उस पार का दृश्य दिखलाना शुरू कर दिया। कलियाभोमोरा पहाड़, अग्निगढ़ पर्वत, महाभैरव आदि की कहानियां स्वर्ण ने मां से सुन रखी थीं। तेजपुर के साथ मां और पिता की पुरानी स्मृतियां किस रूप में जड़ित हैं, यह स्वर्ण नहीं जानती थी। फिर भी, उसे प्रत्येक नाम परीदेश की कथा से लिया हुआ लगता था। मां के मुंह से सुने उषा-अनिरुद्ध उपाख्यान के साथ स्वर्ण उस पार के दृश्यों का मिलान कर रही थी।

तेजपुर में जहाज थोड़ी देर के लिए रुका रहा। सभी यात्रियों ने वहां दोपहर का भोजन बनाकर खाया। तत्पश्चात् सब लोग गुवाहाटी की ओर रवाना हुए। संध्या समय सूर्यास्त के बाद ही जहाज गुवाहाटी के शुक्लेश्वर घाट पर जाकर लग गया। यात्रियों ने गुवाहाटी पहुंचने के पूर्व ब्रह्मपुत्र की जल तरंगों का जैसा अद्भुत सौंदर्य देखा उसकी कल्पना स्वयं देखे बिना नहीं की जा सकती। सामने उमानंद पर्वत और उसके पीछे नील-आकाश तक उत्तुंग नीलाचल पर्वत था। लगता था कि काला पहाड़ और नरकासुर उसी के चरणों में दंडवत कर रहे हैं। नेत्रों को चकाचौंध करने वाले लाल स्तंभ की भांति सूर्य लोहित के वक्षस्थल पर अस्त हो रहा था और चतुर्दिक् एक अपरूप शोभा की सृष्टि कर रहा था। ऐसा लगता था कि वह सप्तरंगी इन्द्रधनुष की भांति क्षितिज पर विविध रंगों की छटा बिखेर रहा हो। जिसने पहले से यह दृश्य नहीं देखे थे, उसके लिए वास्तव में यह एक अपूर्व उपलब्धि थी। 'राज महल' के देशी और विदेशी सभी यात्री प्रकृति की इस अपरूप लीला को देखने में तन्मय थे।

कलकत्ता तक जाने वाले अधिकांश यात्री घाट पर उतरकर अपने मित्रों के घर चले गए। गुणाभिराम ने पहले ही भराली मुख के फूकन महाशय को अपने आने का समाचार दे दिया था। उन्होंने घोड़ागाड़ी भेजकर उन्हें अपने घर बुला लिया। विवाहोपरांत विष्णुप्रिया पहली बार यहां आई थी। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद गुणाभिराम इसी घर में बड़े हुए थे। मौसी और सौतेले भाई से मिले अनादर और अवहेलना के विपरीत आनंदराम ढेकियाल फूकन से मिले स्नेह और प्यार को गुणाभिराम कभी भूल नहीं पाते थे। फूकन के घर में प्रवेश करते ही उन्हें पुरानी बातें स्मरण हो आईं। आनंदराम का आदर-स्नेह न पाने पर शायद वे अपने जीवन में इतनी उन्नति नहीं कर पाते। आनंदराम की साली, अपनी पहली पत्नी ब्रजसुंदरी को लेकर इस घर में आने की बात गुणाभिराम को याद आ रही थी। उस बेचारी को वे जीवन में कोई सुख नहीं दे पाए। यद्यपि पति के रूप में वे अपने सारे कर्त्तव्य पालन करने की चेष्टा करते थे। किंतु, ब्रजसुंदरी के भाग्य में सुख न था। परिचित परिवेश ने गुणाभिराम के हृदय में हर्ष-विषाद की अनेक स्मृतियां जाग्रत कर दीं किंतु, विष्णुप्रिया, स्वर्ण और करुणा के लिए सब कुछ नया था। आनंदराम के छोटे पुत्र अन्नदा ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपने घर पर निमंत्रण दिया।

स्वर्ण को घर के सभी सदस्यों में पद्मावती देवी सर्वाधिक प्रिय लगीं। वह आनंदराम की ज्येष्ठ कन्या थी और नंदेश्वर कटकी की पत्नी थी, उसका चेहरा सुंदर था, स्वर मधुर था। लिखने-पढ़ने के प्रति उसकी रुचि देखकर स्वर्ण अवाक् थी। गुणाभिराम और अन्नदा के साथ बैठकर उन्होंने धर्म, साहित्य और देश-विदेश की अनेक बातों पर चर्चा की और स्वादिष्ट बंगाली भोजन बनाकर उस दिन स्वर्ण आदि सबको खिलाया। रात का समय आनंदपूर्वक गुवाहाटी में बिताकर वे दूसरे दिन सुबह ही जहाज पर वापस आ गए।

गुवाहाटी में बहुत से नए यात्री कलकत्ता जाने के लिए जहाज पर आ गए थे, उनमें अधिकांश व्यापारी वर्ग के थे। वे लोग कलकत्ता से माल लाकर असम के विभिन्न जिलों में व्यापार करते थे। जहाज से यात्रा करने वालों में कुछ देवी कामाख्या के दर्शन करने के लिए गुवाहाटी आए हुए तीर्थयात्री भी थे और उनमें अधिकतर बंगाली थे। दो एक उड़िया भी थे। यात्रियों में साधारणतः असमिया लोगों की संख्या कम रहा करती थी किंतु उस दिन जगन्नाथ पुरी के दर्शन करने के उद्देश्य से निकले असमिया तीर्थ यात्रियों का एक दल गुवाहाटी में जहाज पर आ जाने के कारण असमिया लोगों की संख्या बहुत अधिक हो गई थी। जहाज छूटने के साथ-साथ सभी तीर्थयात्री ढोल, मृदंग बजाकर नामकीर्तन करने लगे। जहाज के नीचे तल से सुनाई पड़ता संगीत, स्वर्ण को बहुत प्रिय लग रहा था किंतु ऊपर डेक पर बैठे हुए दो एक साहबों और मेमों को कतई अच्छा नहीं लगा। उन्होंने एक खलासी को बुलाकर कहा कि कौन लोग इतना शोरगुल कर रहे हैं तो उसने कहा कि वे लोग भगवान का नाम ले रहे हैं। अभी उन्हें बाधा देने से अमंगल हो सकता है।

"क्या भगवान का नाम मन ही मन नहीं ले सकते?" भुनभुनाते हुए साहब लोग शांत हो गए।

स्वर्ण ने समझ लिया कि जहाज के यात्रियों की अपनी अपनी अलग अलग रुचि है। एक को रुचिकर लगने वाला गाना-बजाना दूसरे के लिए शोरगुल होता है।

गुवाहाटी से आगे बढ़ने पर दोनों तरफ के दृश्यों में परिवर्तन आने लगा। पर्वत पहाड़ के बदले बहुत दूर तक हरी हरी घास से सुशोभित अंचल था। नदी के बीच-बीच में असंख्य छोटे-बड़े बालू के टापू थे। इन सबों के जल की गहराई मापकर नाव टेढ़े मेढ़े रास्ते से आगे बढ़ी। वर्षाऋतु में जब नदी में बहुत जल हो जाता था तो नाव चलाने में कुछ सुविधा होती थी किन्तु पानी कम होने पर जहाज के अटक जाने की आशंका बनी रहती थी। ग्वालपाड़ा पहुंचने के पहले, इस पार के हादिरा चौकी के पुराने कई गोदाम-घर का एक भाग झलकने लगता था। गुणाभिराम, पत्नी और स्वर्ण को अंगुली से दिखाते हुए बोले, "एक समय इसी चौकी से बंग के साथ हमारा व्यापार चलता था। उस समय यहां की अवस्था बहुत उन्नत थी। एक समय हमारे पूर्वज लक्ष्मी नारायण ब्रह्मचारी हादिरा चौकी के प्रबंधकर्ता थे। मेरे भाई परशुराम बरुआ ने उनके साथ रहकर सभी काम सीखे थे और फिर इस हादिरा चौकी का दायित्व सुचारु रूप से वहन किया था।"

आनंद राम ढेकियाल फूकन से सुने अपने इस वंश-वृत्तांत को गुणाभिराम ने विष्णुप्रिया से कई बार कहा था। किंतु, उस दिन जब जहाज की रेलिंग को पकड़कर उन्होंने हादिरा चौकी के इतिहास की पुनरावृत्ति की, तो विष्णुप्रिया को लगा मानो वह अतीत में यात्रा कर रही हो। गुणाभिराम जब आंखों देखे वर्णन की तरह, हादिरा चौकी के युद्ध, कैप्टेन इस्कर्ट साहब के असम-अभियान, मान के आक्रमण से हुई असमिया लोगों की दुरवस्था आदि घटनाओं के विषय में बतला रहे थे तो स्वर्ण उनसे पूछ बैठी, "देउता, हादिरा चौकी का युद्ध क्या आपने अपनी आंखों से देखा है?"

गुणाभिराम ने हंसते-हसंते उत्तर दिया, "अगर, उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष अधिक होती तो मैं अवश्य देख लेता।" ग्वालपाड़ा पहुंचते-पहुंचते रात हो जाने के कारण जहाज ने उस दिन वही लंगर डाल दिया। उस पार उतरकर जाते समय बरुआ परिवार को एक परिचित मारवाड़ी सज्जन मिल गए। उन्होंने बरुआ को अपने घर जाने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु, गुणाभिराम को जाने की इच्छा नहीं थी। तब उस सज्जन ने अपने घर से शुद्ध दूध की मिठाई इन लोगों के लिए भिजवा दी। इस तरह की स्वादिष्ट मिठाई स्वर्ण को नगांव में कभी खाने को नहीं मिली थी।

रात में यात्रियों के सोने के समय बाहर कुछ कोलाहल सुनाई पड़ा। सभी ने यही अनुमान लगाया कि पास के दूसरे जहाज ने वहां लंगर दिया है। किंतु, रात के अंधेरे में कोई, कुछ नहीं देख सका। दूसरे दिन सुबह देखने में आया कि वह जहाज चाय बगान में काम करने

के लिए गिरमिटिया कुली लाया था। 'राजमहल' के सभी यात्रियों ने कौतूहल पूर्वक दूसरे जहाज के आदमियों को देखना शुरू किया। उस जहाज में आदमी भरे हुए थे। अधिकांश आदमी भील, संथाल, मुंडा आदि जातियों के मालूम पड़ते थे। उनमें, पुरुष, स्त्रियां, लड़के और लड़कियां सभी थे। देखकर लगता था कि किसी को जहाज से उतरने नहीं दिया गया था। इसीलिए वे लोग रेलिंग पकड़कर दूसरे पार के जहाज को असहाय दृष्टि से देख रहे थे। 'राजमहल' जहाज के छूटने के साथ-साथ दूसरे जहाज से एक आदमी पानी में कूद गया। चारों तरफ शोरगुल मच गया। दोनों जहाज के यात्री चिल्लाने लगे। पानी में कूदने वाला आदमी 'राजमहल' के पीछे-पीछे तैर कर आने लगा। अंत में किसी ने जहाज से रस्सा फेंका और वह आदमी रस्सा पकड़कर बहुत मुश्किल से 'राजमहल' जहाज पर चढ़ गया। द्वितीय श्रेणी के सभी यात्रियों और जहाज के खलासी वगैरह ने उसे घेरकर कुछ पूछना चाहा किंतु दीर्घ सांस लेकर बोलने वाले उस आदमी की अस्पष्ट बात किसी की समझ में न आई। बाद में एक बंगाली सज्जन ने टूटी-फूटी संथाली भाषा में उससे दो एक बात पूछीं। उसने रो रोकर उत्तर देना आरंभ किया। इस बार उसने प्रश्नकर्त्ता के पैर पकड़कर प्रार्थना करते हुए कुछ-कुछ कहा। इसी बीच जहाज ने फिर से लंगर डाल दिया था। ऊपर के डेक से चाय की खेती करने वाले एक यूरोपियन व्यक्ति ने सीढ़ी से चिल्लाकर आदेश दिया कि उस आदमी को तुरंत किनारे पर उतार देना चाहिए।

बंगाली भद्र सज्जन ने कुछ क्रोध पूर्वक उत्तर दिया, "यह आदमी विपत्ति में कुछ सहायता चाहता है। उसकी पत्नी, लड़का और लड़की सभी जहाज पर बीमार होकर मर गए हैं। उसने भी पहले दिन से ही कुछ नहीं खाया है। उस दिन सुबह वह जहाज से उतरना चाहता था इसलिए सरदार ने उसे मारा पीटा है। वह बागान में काम करना नहीं चाहता। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे जोर जबरदस्ती ले जाकर काम कराना महापाप होगा। अतः उसे सहारा देकर कलकत्ता तक ले जाना ही उचित है।"

यह सब सुनकर चाय बगान वाले गोरे साहब को क्रोध आ गया, "इस आलसी भिखारी को आश्रय देना हमारा काम नहीं है। यह स्वेच्छा से अनुबंध करके आया है, अब बीच रास्ते में ठगबाजी करने से नहीं चलेगा। यह अंग्रेज सरकार का कानून है। कानून तोड़ने का साहस किसको है?" साहब ने भारतीयों को लक्ष्य करके व्यंग्य से कहा था। किसी को प्रकट रूप में उसकी ललकार का उत्तर देने का साहस नहीं हुआ। इसी बीच गुणाभिराम बरुआ भी आकर साहब के पास खड़े हो गए थे। उन्होंने खेद भरे स्वर से अंग्रेजी में कहा, "कानून भंग किए बिना भी एक आदमी दूसरे के प्रति दया और ममता का व्यवहार कर सकता है। इस कुली को सरदार के हाथों सौंपने के पहले हमें सरदार से यह आश्वासन पाना होगा कि वह इसके साथ बुरा बर्ताव नहीं करेगा।" सब लोग अपने विवेक की रक्षा करते हुए विपत्तिजनक परिस्थिति से त्राण पाने की चेष्टा कर रहे थे। बरुआ की बात पर

साहब और भारतीय सब एकमत होकर सरदार को जहाज से ही सावधान करने के लिए तैयार हो गए। इतने में सरदार भयंकर मूर्ति धारणकर अपनी लाठी भांजता हुआ किनारे किनारे दौड़कर आया और भागने वाले आदमी को लक्ष्य करके 'मारो मारो' कहता हुआ चिल्लाने लगा। 'राजमहल' के सभी यात्रियों और विशेषतः कुछ साहबों ने उसे सावधान किया, तब जाकर वह कुछ ठंडा हुआ और कुछ भुनभुनाते हुए उनकी बात मानने को भी तैयार हो गया। उस आदमी को घसीटते हुए सरदार पार तक ले गया। प्रत्येक यात्री सोच रहा था कि सरदार की बात का कोई भरोसा नहीं है। किंतु, मुंह खोलकर किसी ने कुछ नहीं कहा। बंगाली सज्जन ने अवश्य अपनी पुस्तिका में कुछ-कुछ अंकित कर लिया। वे कलकत्ता के एक समाचार पत्र के लिए असम के चाय बगानों में काम करने वाले मजदूरों की दयनीय अवस्था के संबंध में सामग्री जुटा रहे थे। लक्षेश्वर ने उनसे पूछताछकर यह पता लगा लिया कि यह व्यक्ति 'संजीवनी' नामक पत्रिका के लिए समाचार एकत्र करने असम आया था।

जहाज छूटने के बहुत बाद तक स्वर्ण डेक के रेलिंग के पास खड़ी होकर किनारे का निष्ठुर दृश्य देख रही थी। जहाज में इतने सारे बड़े आदमी एक सामान्य गरीब आदमी की विपत्ति में रक्षा नहीं कर सके, यह देखकर उसके मन पर निर्मम आघात पहुंचा। उसके मन में बड़े-बड़े लोगों के प्रति श्रद्धा कम हो गई। उसने अपने पिता से पूछा—देउता ! हमारे जाने के बाद यह सरदार क्या उस भयभीत आदमी को फिर मारेगा? पिता के उत्तर न देने पर वह चुप रह गई।

## 26

धुवरी, शिलाभारी और शिराजगंज में रुकता हुआ जहाज बाद में कोई विघ्न बाधा न होने के कारण गोवालंड में लग गया। उसके बाद ट्रेन से कलकत्ता तक का एक रात का सीधा रास्ता था। गोवालंड में पर्याप्त समय था। सभी भारतीय यात्री बंगाली होटल में भरपेट मछली और मसालेदार झोल खाकर गाड़ी में चढ़े। गुणाभिराम और उनके परिवार ने अपने साथ लाए ब्राह्मण रसोइए द्वारा नदी के किनारे बनाया गया मछली-मांस संतुष्ट होकर खाया। स्वर्ण और उसके भाई करुणा ने गोवालंड में प्रथम बार रेलगाड़ी देखी थी। वे उसे देखकर विस्मय और आनंद से विभोर हो गए । गुणाभिराम का सारा परिवार ट्रेन के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चढ़ा। इस डिब्बे में अन्य किसी यात्री की सीट न थी। एक छोटे सुसज्जित कमरे के समान डिब्बे की खिड़की से बाहर देखने पर स्वर्ण को ऐसा लगा कि उनका निवास गृह ही चल रहा है। नगांव के बिल्वकुटीर से निकलकर बाहर आने के बाद से उसका जीवन एक विचित्र गति से आगे बढ़ रहा था। उसकी यात्रा कहां समाप्त होगी, इसे सोचने का

समय स्वर्ण को नहीं मिला। यात्रा, बस यात्रा, मानो यही अब उसके जीवन का लक्ष्य हो गया था।

जब ट्रेन सियालदह स्टेशन पर पहुंची तो असम से आने वाले यात्रियों से मिलने के लिए वहां पर बहुत से आदमी खड़े थे। उनमें से कई लोग गुणाभिराम से भी मिलने आए थे। रजनीनाथ ने लक्षेश्वर को लेने के लिए एक आदमी भेजा था। वे लक्षेश्वर के रहने का बंदोबस्त कालेज स्क्वायर में एक ब्राह्मण-घर में करने के लिए वहां ले गए। किंतु लक्षेश्वर ने रास्ते में कई असमिया लोगों से बातचीत करके एक साथ अन्य किसी जगह रहने का विचार कर लिया था। फिर भी, पहले वह गुणाभिराम बरुआ द्वारा ठीक किए गए स्थान पर ही गया।

स्वर्ण आदि को लेने के लिए बैरिस्टर आनंद मोहन बसु के घर से घोड़ागाड़ी भेजी गई थी। बसु परिवार के साथ गुणाभिराम की पुरानी मित्रता थी। कलकत्ता में वे हमेशा उन्हीं के घर पर ठहरते थे। आनंद मोहन और उनके भाई डा. मोहिनी मोहन बसु उस समय बंग के प्रसिद्ध पंडित थे। इसलिए उस घर में कलकत्ता के सभी प्रसिद्ध पंडितों और बुद्धिजीवियों का समागम होता रहता था।

घोड़ागाड़ी द्वारा सियालदह से बसु परिवार के वास-भवन तक का मार्ग देखते हुए स्वर्ण और करुणा को ऐसा लगा कि वे जैसे किसी स्वप्न पुरी में भ्रमण कर रहे हों। ऊंची ऊंची अट्टालिकाओं, दुकानों, भवनों, यान-वाहनों और यातायात करते हुए अनगिनत मनुष्यों को देखकर दोनों बालक आश्चर्य चकित होकर चारों तरफ देखते रह गए। महानगरी की प्रत्येक चीज ही विचित्र मालूम पड़ती थी। उन्हें सड़क के किनारे चहबच्चे से निसृत पानी की धारा से लेकर ट्राम गाड़ी तक सब कुछ जादू के खेल सा लग रहा था।

राहगीरों को बातचीत करते हुए देखकर स्वर्ण जानने की कोशिश करती थी कि ये लोग कहां से आ रहे हैं और कहां जा रहे हैं? नगांव में उसने किसी को इतनी जल्दबाजी में आते जाते नहीं देखा था। वहां मानो किसी के पास समय ही नहीं है। साधारणतः राहगीर एक दूसरे से बिना बातचीत किए और बिना दूसरे की ओर देखे, रास्ता पार नहीं किया करते। किंतु यहां इन सबके लिए किसी के पास समय नहीं था। न जाने क्यों लोगों को इतनी व्यस्तता थी। बसु परिवार के घर के सामने बग्घी पहुंचते ही आनंद मोहन बसु ने गुणाभिराम से गले मिलकर आदर-संभाषण किया। तभी घर की महिलाएं भी बाहर आ गईं। साधारण बंगाली गृहणियों की तरह उनके सिर पर लंबा घूंघट नहीं था। विष्णुप्रिया यह देखकर अवाक् रह गई कि वे महिलाएं अपने पति और जेठ के सामने भी घूंघट न करके हंस-हंसकर बातें कर रही थीं और पैरों में सेंडिल भी पहनी हुए थीं। उन लोगों ने विष्णुप्रिया को पहले नहीं देखा था, इसलिए नववधू की भांति उन्हें आदर के साथ आरती उतारकर भीतर ले गईं। आनंद मोहन की पत्नी ने पहले विष्णुप्रिया को संदेश खिलाया

और फिर गले मिलकर उसका चुंबन लिया। यद्यपि सारे काम हंसी खुशी के वातावरण में हो रहे थे फिर भी विष्णुप्रिया के दोनों कपोल आनंदाश्रुओं से भींग गए। शायद, उन्हें बहुत दिन पहले की बात याद आ रही हो, जब नववधू के रूप में उन्होंने परशुराम बरुआ के घर में प्रवेश किया था। गुणाभिराम के साथ दूसरा विवाह होने के बाद इस तरह का स्वागत पहले पहल यहीं हुआ था। विष्णुप्रिया को ये सब बातें सोचने का समय अधिक नहीं मिला। बसु परिवार के सत्कार और स्नेह को पाकर पुरानी बातें स्मृति से ओझल हो गई। इस बीच स्वर्ण, करुणा और शिशु कमला सभी के आकर्षण के केन्द्र बन गए थे।

स्वर्ण के गोरे शरीर, नाक, आंख और लंबे केशों की अत्यधिक प्रशंसा की गई। आनंद मोहन की पत्नी मनोविनोद करती हुई बोली, "गुणाभिराम बाबू, अब समझ में आया कि हमारे आदमी असम जाकर कामाख्या में क्यों भेंड़ा बन जाते हैं?"

एक दूसरी महिला ने उनके स्वर में स्वर मिलाकर कहा, "अभी तो हमारे लिए एक और विपत्ति आने वाली है। स्वर्णलता अगर कलकत्ता में और पांच वर्ष रह गई तो इस नगर में भेंड़ों, की इतनी भीड़ हो जाएगी कि यहां रहना ही मुश्किल हो जाएगा।"

इस पर सभी महिलाएं ठहाका मारकर हंसने लगीं। बार-बार दबाए जाने से स्वर्ण के दोनों गाल लाल हो गए। इतने सारे लोगों को अपने बारे में बातचीत करते हुए सुनकर स्वर्ण लाज से सिकुड़कर मां के आंचल में छुप गई। भाई करुणा ने भी, अपरिचित परिवेश पाकर मां का आंचल पकड़ लिया। कमला को अपनी गोद में लेने के लिए सब खींचा तानी करने लगीं इसलिए उसने रोना शुरू कर दिया। अंत में बालकों की हालत देखकर, कहीं इन्हें बुरा न लगे ऐसा सोचकर उन्होंने उनको अधिक परेशान नहीं किया।

इसके पश्चात् खाने का समय आया। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन मेहमानों के सामने रख दिए गए। उनके लिए समस्या हो गई कि क्या खाएं और क्या छोड़ें। नहीं-नहीं करने पर भी महिलाओं ने गुणाभिराम और विष्णुप्रिया की पत्तल में ढेर सारे व्यंजन डाल दिए। स्वर्ण और करुणा मिर्च अधिक लगने के कारण कुछ खा नहीं रहे हैं, यह देखकर वे मिठाई लेकर आई और फिर मिठाइयों पर मिठाइयां। इतने बड़े आकार की मिठाइयां उन बालकों ने जीवन में कभी देखी ही नहीं थी, एक मिठाई खाने पर ही पेट भर जाए। जबरदस्ती दो मिठाइयां खाने के लिए कहे जाने पर करुणा ने रोना ही शुरू कर दिया। उनकी यह हालत देखकर विष्णुप्रिया, गुणाभिराम और अन्य बड़े लोगों को बड़ा आनंद आया।

अतिथियों के रहने की व्यवस्था ऊपर की मंजिल पर कर दी गई थी। सामने के बड़े बरामदे में दक्षिण की तरफ कई हवादार कमरे थे। वहां इतनी सुंदर हवा आती थी कि विश्वास नहीं होता था कि कलकत्ता जैसे भीड़भाड़ वाले नगर के बीच भी ऐसी शीतल हवा मिल सकती है।

बड़े लोगों का साथ छोड़कर स्वर्ण और करुणा बरामदे की रेलिंग को पकड़कर बहुत देर तक महानगरी के दृश्य निहारते रहे। दक्षिण की सुगंधित बयार पाकर उन लोगों की सारी थकान मिट गई। स्वर्ण को अपने घर की बहुत याद आ रही थी। उसके मनोभाव को मानो व्यक्त करते हुए करुणा ने पूछा, "दीदी, तुम्हें यहां रहकर अच्छा लगेगा न? यही प्रश्न स्वर्ण अपने आपसे पूछने की चेष्टा कर रही थी। कलकत्ता में मां और पिता के साथ कुछ दिन रहकर अच्छा ही लगेगा। किंतु, एक अपरिचित स्थान पर अपरिचित लोगों के साथ अकेले रहने की बात सोचकर ही उसके पेट में धुक-धुक होने लगती है। फिर भी, भाई के सामने उसने अपने भयातुर मन का परिचय नहीं होने दिया। उसने इतने दिनों तक स्वर्ण को यथेष्ट सम्मान दिया था। इसलिए उसने गंभीर होकर उत्तर दिया—रहते रहते अच्छा लगने लगेगा। देउता बीच-बीच में यहां आते रहेंगे। यहां दो दिन रुककर मुझे घर ले जाएंगे।

"तुम्हें घर की याद आएगी न?" उसने आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से अपनी दीदी को देखते हुए पूछा।

स्वर्ण कुछ उत्तर न दे सकी। बिल्व कुटीर के दिनों की बात याद आते ही वह दुख से विह्वल हो गई। उसकी आंखों से बहते अश्रुकण रेलिंग पर गिरने लगे। क्या करूं? कुछ समझ में न आने पर करुणा, बहन का एक हाथ पकड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसने समझ लिया कि परिस्थिति गंभीर है।

## 27

स्वर्ण को बोर्डिंग में रखने के पहले ही गुणाभिराम ने एक सप्ताह तक कलकत्ता में रहकर पत्नी और बच्चों को सारा शहर घुमा दिया। एशियाटिक म्यूजियम, फोर्ट विलियम, ईडन पार्क, काली घाट आदि सभी दर्शनीय स्थानों पर वे उन्हें ले गए। चांदनी बाजार, बहुबाजार, न्यूमार्केट जो साहब और मेमों के लिए बनाया गया था, सभी जगहों पर गुणाभिराम ने खरीदारी भी की। स्वर्ण के लिए सभी आवश्यक चीजें और कपड़े लत्ते खरीद लिए। स्वर्ण नई चीजों के लिए आग्रहशील न थी। बोर्डिंग में जाने का दिन निकट आने पर और अपने लिए एकत्र वस्तुओं को देखकर ही उसका मन खराब होने लगा। जहां तक संभव हो सका वह इनसे दूर रहने लगी। उसे इस समय अन्यमनस्क देखकर बसु परिवार का कोई व्यक्ति उसे खींच कर पियानो सुनाने ले जाता, तो कोई ताश खेलने के लिए। आनंद मोहन बसु की तीन युवा सालियों, लावण्य प्रभा, हेमप्रभा और चारुप्रभा ने स्वर्ण के साथ आत्मीयता स्थापित कर ली थी। उन्हीं लोगों से स्वर्ण ने पहली बार सीखा कि उसके नाम का स्वर्णलता सही उच्चारण है, असमिया लोगों के द्वारा किया जाने वाला सर्नलता नहीं। स्वर्ण बहुत शर्मीले

स्वभाव की थी। वह उच्चारण के प्रति सचेत हो गई पर अपेक्षाकृत बोलना कम कर दिया।

उनके रहते हुए वहां कई दिन संध्या के समय बसु परिवार के बैठक खाने में बहुत से ब्राह्म परिवारों का समागम हुआ था। इन गोष्ठियों में गंभीर आलोचनाएं, रसीली बातचीत और तर्क-वितर्क हुए थे। ब्राह्म लोगों की ऐसी घरेलू बैठकों में पुरुष और स्त्री सभी समान रूप से भाग लेते थे। बसु के बैठक खाने की सभा में दूसरी महिलाओं के साथ विष्णुप्रिया भी समान रूप से भाग लेकर बातचीत करती थी। यद्यपि वह बहुत कम बोलती थी, किंतु सभा के विचारों को वह ध्यान से सुनती थी। मां के पास ही स्वर्ण भी बैठा करती थी। बड़े लोगों के बीच बैठने में उसे विशेष अच्छा नहीं लगता था पर विष्णुप्रिया और गुणाभिराम उसे अपने पास बैठाना चाहते थे। उससे विदा होने का समय निकट आ रहा है, यह सोचकर वे उसे अधिक से अधिक समय तक अपने पास रखने की चेष्टा करते थे।

एक दिन संध्या समय दुर्गामोहनदास, शिवनाथ शास्त्री और मनोमोहन घोष सपरिवार वहां आए। किसी समय ये तीनों केशवचन्द्र सेन के प्रधान शिष्य थे, अब ये लोग उनके मत का घोर विरोध करते थे। मनोमोहन घोष की पत्नी के विषय में विष्णुप्रिया ने बहुत कुछ सुन रखा था। विवाहोपरांत नववधू को उनके पति ने कलकत्ता के लोरेटो स्कूल के बोर्डिंग में रखकर पढ़ाया था। इसलिए उनके वार्तालाप का ढंग, वेशभूषा, रुचि आदि सब पाश्चात्य ढंग की थी। वे बंबई की पारसी महिलाओं की तरह नए स्टाइल में साड़ी पहनती थीं। उनको देखकर कई ब्राह्म महिलाएं भी उनकी ही तरह आंचल को बाएं कंधे पर डाल कर साड़ी पहनती थीं। उस तरह से पहनने पर साड़ी पाश्चात्य पोशाक की तरह दिखने लगती थी। वे साड़ी के साथ मेल मिलाकर लैस लगा ब्लाउज और पाश्चात्य रुचि वाला मुक्ताहार पहनती थीं। मनोमोहन घोष, बातचीत के ढंग और अदब कायदों में एकदम साहब थे। उनका व्यवहार अतिभद्र और परिष्कृत था और उनके प्रत्येक मंतव्य से उनकी अपूर्व मेधा का परिचय मिलता था। किंतु, विष्णुप्रिया को इस प्रकार का व्यक्ति बहुत अच्छा नहीं लगा। ब्राह्मसमाजी लोगों को सभी क्रिश्चियन कहकर व्यंग्य करते हैं क्योंकि उनकी विचारधारा और उपासना पद्धति आदि बहुत सी बातें क्रिश्चियन लोगों से मेल खाती हैं, इसलिए विष्णुप्रिया और उनके पति दोनों अपने भारतीय परम्परा के आचार-व्यवहारों को जीवित रखने के लिए जागरूक थे। पाश्चात्य सभ्यता की अच्छी बातों को अपनाने में उन्हें कोई आपत्ति न थी। ब्राह्म समाज के आदर्शों में भारतीय परंपराओं और पाश्चात्य विचारों का सुंदर समन्वय देखकर ही वे दोनों विशेष रूप से ब्राह्म समाज की ओर आकृष्ट हुए थे किंतु मनोमोहन घोष की तरह विलायत से लौटकर आने वाले ब्राह्मों का रहन-सहन और विचार-व्यवहार सोलह आने साहबी ढंग का हो गया था। विष्णुप्रिया और गुणाभिराम इन लोगों को सहज-भाव से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। कलकत्ता के अन्य शीर्षस्थ एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मों की तरह ये लोग उन्हें अपने निकट बंधु प्रतीत नहीं होते थे।

उस दिन संध्या की सभा में आलोचना का विषय था 'स्त्री-शिक्षा'। स्वर्ण को बेथुन में छोड़ने के प्रसंग को लेकर इस आलोचना का आरंभ हुआ। बेथुन स्कूल के पाठ्य क्रम पर विचार व्यक्त करते हुए शिवनाथ शास्त्री और दुर्गामोहन दास—दोनों ने कहा कि लड़कों के स्कूल की तुलना में बेथुन स्कूल की पढ़ाई एकदम पिछड़ी हुई है। मनोमोहन घोष उन दिनों बेथुन स्कूल के मंत्री थे इसलिए स्कूल के विषय में की गई आलोचना व्यक्तिगत रूप से लेते हुए उन्होंने कहा, "अभिभावकों को असंतुष्ट न करते हुए हम यथासंभव पाठ्यक्रम को आधुनिक बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं किंतु एक साथ सब कुछ कर देने से अनेक अभिभावक अपनी कन्याओं का स्कूल छुड़ा देंगे। वास्तव में हमारे भारतीय जन अभी भी यही समझते हैं कि स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य ऐसी आदर्श गृहणियां तैयार करना है जो पुरुष को सुस्वादु भोजन पकाकर खिला सकें और आवश्यक होने पर कविता-पाठ करके सुना सकें। विज्ञान और गणित का गहन अध्ययन करने की इन्हें कोई जरूरत नहीं। घोष ने ठिठोली करते हुए कहा, "इस वर्ष हम कुछ नए प्रयोग करने के लिए प्रयत्नशील हैं कारण, बेथुन कालेज अभी-अभी खुला है अब इस कालेज को विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध करना होगा और इसके लिए लड़कों के कालेज में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों का समावेश हमें स्कूल और कालेज दोनों में करना होगा।"

घोष की प्रथम बातों के साथ सहमति प्रकट करते हुए शिवनाथ शास्त्री ने उत्तेजित स्वर में कहा, "मिस्टर घोष। आप ठीक कहते हैं। स्त्री-शिक्षा के संबंध में हमारे समाज के ही कुछ शिक्षित लोग बहुत पुराने विचार रखते हैं। केशव बाबू ने मुझसे जो कहा था, आपको याद है न? लड़कियां ज्यामिति पढ़कर क्या करेंगी, उन्हें मौखिक रूप से विज्ञान की कुछ प्रारंभिक बातें सिखा देना ही पर्याप्त है। उनके दकियानूसी दृष्टिकोण के कारण ही मैंने भारत आश्रम छोड़ दिया।"

"अरे ! केशव बाबू की बात जाने दो" श्रीमती घोष कह उठीं, "मिस एल्करीद ने मुझसे कहा था कि इतने बड़े समाज-विप्लवी ने स्वयं अपनी पत्नी को एक मूक, अशिक्षित और अलंकारों से आभूषित वधू की तरह रख छोड़ा है। उनके घर में ही उनके आदर्शों का यदि कोई प्रभाव नहीं हुआ है तो फिर दूसरों को वे किस तरह प्रोत्साहन दे सकेंगे।"

मिस घोष ने मानो विष कुंभ का ढक्कन खोल दिया। इसके साथ ही सभा में केशव बाबू की बेटी के विवाह की चर्चा आरंभ हो गई। सभी ने केशवसेन की आदर्शहीनता को लेकर उनकी कटु निंदा की। गुणाभिराम और विष्णुप्रिया ने इस आलोचना में विशेष भाग नहीं लिया। इस समय सबके श्रद्धाभाजन एक व्यक्ति के विरुद्ध इतनी कठोर भाषा का व्यवहार करने की उनकी इच्छा न थी। लोगों की उत्तेजना थोड़ी शांत होने पर गुणाभिराम फिर से स्त्री-शिक्षा के विषय पर उतर आए। वे बोले, "देखिए, स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में केशव बाबू की विचारधारा इंग्लैंड के बहुत से लोगों से मेल खाती है। अंग्रेज शिक्षा-दीक्षा के संबंध

में हमसे बहुत आगे है, फिर भी उनकी महिलाएं आज भी अपनी पुरानी परंपरा के अनुसार ही चल रही हैं। हमारे देश की तरह अज्ञान के अंधकार में रहने वाली महिलाओं को एक बार में ही विक्टोरिया युग की महिलाओं के स्तर तक उठा ले जाना क्या बहुत बड़ा कदम नहीं होगा?"

"बरुआ महाशय! आप तो बिल्कुल आदि ब्राह्म समाज की तरह बातें करने लगे। अंग्रेजों में अच्छाई और बुराई दोनों है। क्या हमें अच्छाई को छोड़कर बुराई की तरफ ध्यान देना चाहिए? मेरी कारपेन्टर, एनेट एल्करीद जैसी आदर्श महिलाओं के होते हुए पिछली विक्टोरिया महिलाओं को आदर्श रूप में ग्रहण करें क्या? आप अपनी लड़की को यहां इतनी दूर बोर्डिंग स्कूल में रखने के लिए आए हैं। आप उसे घर पर रखकर चित्रांकन करना, कढ़ाई करना, दस्तकारी के काम सिखाना, डाइनिंग टेबुल की साज-सज्जा सिखाकर विक्टोरिया युग की महिला के समान बना सकते थे।"

मनोमोहन घोष ने व्यंग्यपूर्वक अपनी बात कही थी और कहते समय इस तरह की मुख-भंगिमाएं दिखाई थीं कि बरुआ अपनी हंसी न रोक पाए थे और सबों के साथ हंसी में सम्मिलित हो गए थे। किंतु उनके मन की दुविधा मिट नहीं पाई। क्या आधुनिक शिक्षा और जातीय परंपरा में समन्वय नहीं रखा जा सकता। मनोमोहन घोष के हिंदू महिला विद्यालय में लड़कियों को पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करना सिखाया जाता है, ऐसा उन्होंने सुना है। वहां युवा लड़कियां भी स्कर्ट पहनती हैं और कांटा चम्मच से खाती हैं लड़कियां विज्ञान और ज्यामिति पढ़ें, इसमें गुणाभिराम को तनिक भी आपत्ति न थी। किंतु, आचार और व्यवहार में स्त्री और पुरुष दोनों अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए आगे बढ़ें उन्हें यही अच्छा लगता है।

उस दिन बसु परिवार के बैठक खाने में बहुत रात तक विभिन्न विषयों पर चर्चाएं चलती रहीं। इस परिचर्चा की बहुत सी बातें गुणाभिराम ने संभवतः नगांव में सुनी थीं और अपने एक-दो मित्रों के साथ विचार-विमर्श किया था। किंतु उस संध्या की तरह एक जीवंत परिवेश उन्हें असम में कभी नहीं मिला था। बिल्व कुटीर के बैठक खाने में उनके साथ बातचीत करने के लिए जो लोग आते थे उनमें से अधिकांश श्रोता बनकर उनकी बातें सुना करते थे। उनके साथ समान रूप से तर्क-वितर्क करने वाले अथवा उनके विचारों की स्पष्ट कटु-आलोचना करने वाले आदमी असम में कम ही थे। असम में वे एक ज्ञानी व्यक्ति माने जाते थे तो यहां ज्ञान पिपासुक। इसीलिए गुणाभिराम को कलकत्ता अत्यंत प्रिय लगता था। यहां आकर मानो वे जीवन में एक नवीन प्रेरणा पा जाते थे।

## 28

स्वर्ण को स्कूल में छोड़ने के लिए गुणाभिराम और विष्णुप्रिया के अतिरिक्त जगदीश बसु, बहन हेमप्रभा और दुर्गामोहन दास भी गए थे। दुर्गामोहन दास ने बेथुन कालेज की स्थापना में प्रमुख भाग लिया था और स्कूल के सभी कार्यों में सक्रिय रूप से संलग्न थे। बेथुन स्कूल की अंग्रेज प्रधानाध्यापिका और अन्य सभी अध्यापिकाओं के साथ उन्होंने बरुआ दंपत्ति का परिचय करा दिया। ये लड़की को पढ़ाने के लिए सुदूर असम से कलकत्ता आए हैं, यह जानकर सभी को आश्चर्य हुआ। स्वर्णलता और विष्णुप्रिया के मुख को बार-बार निहारते हुए उन्होंने प्रश्न किया, "तुम लोग मूलतः असमवासी हो या किसी दूसरी जगह से आकर वहां बस गए हो?" उनके प्रश्नों का भाव समझकर दुर्गामोहन ने हंसते-हंसते कहा, "लगता है अब तुम्हारी समझ में आ गया है कि असम बर्बर जाति का देश नहीं है। वहां की स्त्रियों के रूप लावण्य की प्रशंसा हमें अंग्रेज लेखकों की पुस्तकों में पढ़ने को मिलती है।"

बेथुन स्कूल की सभी छात्राएं एवं शिक्षिकाएं स्वर्ण को बहुत प्यार करती थीं। छात्रावास में रहने वाली सभी छात्राएं बंगाल एवं बिहार के विभिन्न जिलों से आई थीं। कलकत्ता की लड़कियां अधिकतर अपने घरों से आकर स्कूल में पढ़ती थीं। इसलिए बोर्डिंग में रहने वाली अधिकांश लड़कियां ग्रामीण परिवेश में बड़ी हुई थीं। उनके लिए कलकत्ता एक अज्ञात नगर था। उनमें दो एक विवाहित लड़कियां भी थीं। शायद उनके उदारमना पतियों और स्वसुरों ने उन्हें वहां पढ़ने के लिए भेजा होगा। बोर्डिंग की अधिकांश लड़कियां क्रिश्चियन या ब्राह्म थीं। उन्होंने सहज ही स्वर्ण को अपने में मिला लिया। ज्यादातर लड़कियों ने असम का नाम ही नहीं सुना था। स्वर्ण बंगाल के ही किसी दूरस्थ जिले की होगी, ऐसा उन्होंने मान लिया था।

बेटी से विदा लेते समय विष्णुप्रिया कुछ नहीं बोल पाई, क्योंकि वह जानती थी कि बोलते ही उसका जी भर आएगा और उस दुर्बलता को देखकर उसकी बेटी भी रो पड़ेगी। गुणाभिराम ने स्वर्ण को आर्शीवाद देते हुए बस इतना ही कहा—बेटी ! अच्छी तरह पढ़-लिखकर कर देश का मुख उज्जवल करना "ब्रह्म कृपाहि केवलम्।"

जब तक माता-पिता दिखाई देते रहे, स्वर्ण सिर उठाकर उन्हें देखती रही। उसके बाद मिस निकोलस प्यार से उसका हाथ पकड़कर उसे भीतर ले गई।

# द्वितीय अध्याय

लक्ष्मीप्रिया ने जिस दिन निम्न प्राइमरी परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके जिले भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया, उस दिन पंचानन शर्मा के घर में एक उत्सव जैसा परिवेश हो गया था। बंगला स्कूल की सारी अध्यापिकाएं यह समाचार लेकर शर्मा के घर आईं। लक्ष्मी को आर्शीवाद देने के बाद सबने आनंद से जलपान किया। किंतु, शर्मा और शर्मानी की ओर से जितने उत्साह और उमंग की आशा उन्होंने की थी, उतनी खुशी उनमें उन्हें देखने को नहीं मिली। इसका कारण जानते हुए भी अनजान बनकर प्रधानाध्यापिका चारुशीला सेन ने शर्मा से पूछा—

शर्मा महोदय ! इसके बाद लक्ष्मीप्रिया को आगे पढ़ाएंगे या नहीं?

शर्मा ने म्लान हंसी हंसकर कहा, "आज यदि मेरा लड़का इतनी योग्यता के साथ परीक्षा पास करता तो मैं उसे उच्च शिक्षा अवश्य दिलाता किंतु, दुर्भाग्य है कि लक्ष्मी ने कन्या के रूप में जन्म लिया है। यहां तो लड़कियों को आगे पढ़ाने के लिए स्कूल है नहीं, इसलिए हमें उसकी इतनी शिक्षा को ही पर्याप्त समझ लेना होगा।"

चारुशीला सेन इसका उत्तर पहले ही सोचकर आई थीं। वे ताम्बूल चबाती-चबाती बोलीं, "मैं एक बात सोच रही हूं। लक्ष्मी के समान एक मेधावी छात्रा को हम इसी स्थिति में रहने देना नहीं चाहते। इसका परिणाम कदाचित बुरा भी हो सकता है। इसलिए छात्रों के माध्यमिक अंग्रेजी स्कूल में उसे भर्ती करा दीजिए जिससे वह कम से कम मिडिल कक्षा तक तो पढ़ सके।"

"लड़कों के स्कूल में?" विस्मय से शर्मा की आंखें विस्फारित हो गईं।

"हां, इसके सिवाए और कोई उपाय नहीं है। सरकार ने लड़कियों के लिए अभी यहां माध्यमिक स्कूल की स्थापना नहीं की है। मिशन स्कूल में उसे अवश्य पढ़ाया जा सकता है किंतु, क्या आप अपनी बेटी को वहां भेजना चाहेंगे, सोच लीजिए?"

"नहीं-नहीं। हम वहां नहीं भेज सकते", शर्मा ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"तब उसे लड़कों के स्कूल में ही दाखिल करा दें। मैं एम.ई. स्कूल के प्रधानाध्यापक से बात करके आई हूं। उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। सरकार से भी अनुमति मिल जाएगी। आप हाकिम बरुआ से कहकर दो शब्द कहला दें। इसके अतिरिक्त....थोड़ा रुककर चारुशीला सेन मानो पंचानन शर्मा के मन की सारी दुश्चिन्ता दूर करती हुई बोली, "उम्र

में लक्ष्मी अपने क्लास के अन्य छात्रों से बड़ी ही होगी। इसलिए सारे लड़के छोटे भाई के समान ही होंगे।"

शर्मा ने कुछ उत्तर नहीं दिया और सिर नीचा करके सोचने लगे। चारुशीला सेन के लिए जो बातें इतनी सहज हैं, समाज की दृष्टि में वे बातें कितनी भयंकर हैं, इस सत्य को शर्मा नजरअन्दाज नहीं कर पाए। ब्राह्म लोग हिंदू-समाज के लोकाचार को नहीं मानते। अतः उनके लिए उपदेश देना बहुत सहज है किंतु समाज के नीति-नियमों के बीच जीवन-यापन करने वाले उनके जैसे साधारण मनुष्य के लिए संसार कितना जटिल है, यह बात उनकी समझ में कैसे आ सकती है? मनुष्य अपने समाज से अलग होकर नहीं रह सकता। ब्राह्म लोगों का भी एक समाज है, क्रिश्चियनों का भी है। ये लोग क्या अपने-अपने समाज का त्याग कर सकते हैं। यही सब सोच विचार करते हुए शर्मा ने जब अपनी गर्दन उठाकर देखा तो पर्दे के भीतर से उनकी तरफ झांकते हुए असहाय नेत्रों को देखकर वे बड़े बेचैन हो गए। लक्ष्मी उनके निर्णय की प्रतीक्षा उत्कंठापूर्वक कर रही थी। इसलिए वे इस विषय में जागरूक हो गए। तुरंत अपने को संभालते हुए उन्होंने चारुशीला सेन की तरफ देखकर कहा, "ठीक है, मैं इस विषय पर विचार करूंगा। लड़की की पढ़ाई के विषय में आप लोगों का इतना आग्रह देखकर मेरे मन में भी साहस आया है। घर के अन्य लोगों की सहमति प्राप्त हो जाने पर मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

पंचानन शर्मा अच्छी तरह जानते थे कि घर के दूसरे लोग इस बारे में क्या कहेंगे। किंतु, एक बारगी कुछ कह देने और फिर उसके अनुसार काम न करने की अपेक्षा मध्यम मार्ग अपनाकर बात करना ही वे उचित समझते थे। अध्यापिकाओं के चले जाने के बाद शर्मा बहुत देर तक सोचते रहे। लक्ष्मी को स्कूल में देने की बात चलने पर घर में पहले जैसी अशांति का सृजन हुआ था, उसकी पुनरावृत्ति होने का उन्हें रंचमात्र भी भय न था। घर के सब लोगों को अपने विचारों से प्रभावित करने का साहस और सामर्थ्य उनमें था। किंतु, वे जो करना चाहते हैं, वह ठीक है या गलत? इसको लेकर उनके मन में कुछ शंका थी। उनका विवेक लक्ष्मी के प्रति अन्याय करने की अनुमति नहीं देता था। वह तो मानो झंझावात के बीच जलती हुई निष्कंप दीपशिखा थी, जिसको जलाए रखने पर ही उनकी अंतरात्मा को तृप्ति मिलेगी। वे नहीं समझ पा रहे थे कि इसके लिए उन्हें कितनी दूर तक आगे बढ़ना पड़ेगा। इस विषय में वे किससे बात करें? कौन उन्हें उचित परामर्श देगा? अंत में वे पुनः बिल्व कुटीर की ओर चल पड़े।

गुणाभिराम और उनके परिवार को कलकत्ता से लौटकर आए मात्र दो महीने हुए थे। इस बीच स्वर्ण का बोर्डिंग से लिखा गया केवल एक पत्र उन्हें मिला था। उसने लिखा था कि वह वहां कुशलपूर्वक है, उसे घर के लोगों की बहुत याद आती है, सभी उसे प्यार करते है और वह मनोयोग पूर्वक अध्ययन कर रही है। चिट्ठी छोटी थी, अभी वह अपने

मन के भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हो पाई थी। फिर भी बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा उसका पत्र पाकर गुणाभिराम और विष्णुप्रिया, दोनों की आंखें डबडबा आईं। बाहर दिखाने के लिए वे चाहे कुछ भी कहें किंतु हृदय में दोनों अनुभव करते थे कि स्वर्ण के जाने के बाद से उनका घर सूना हो गया है। दोनों लड़के उनके साथ थे, पर बेटी का अभाव उन्हें पग-पग पर खटक रहा था। गुणाभिराम अधिकांश समय सरकारी कामों में और पढ़ने-लिखने में व्यस्त रहते थे किंतु विष्णुप्रिया को खाते-सोते सब समय अपनी बेटी की बातें याद आती थीं।

बहुत दिनों बाद पंचानन शर्मा को अपने घर आया देखकर बरुआ और उनकी पत्नी को बहुत खुशी हुई। स्वर्ण के साथ उनके और लक्ष्मी के संपर्क के कारण वे उन्हें आत्मीय लगने लगे थे। पंचानन शर्मा ने स्वर्ण के कुशल समाचार पूछने के बाद अपनी कन्या लक्ष्मी के परीक्षा-फल के समाचार सुनाए। गुणाभिराम को ये समाचार कचहरी में मिल गए थे। एक लड़की के जिले भर में प्रथम आने की खबर आश्चर्यजनक समाचार की तरह, सभी की जबान पर थी। बरुआ दंपत्ति ने शर्मा का हार्दिक अभिनंदन करते हुए लक्ष्मी के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं कीं। सुयोग पाकर गुणाभिराम अपने प्रिय विषय 'स्त्री-शिक्षा' पर दो शब्द कहने से नहीं चूके।

"वर्तमान युग में स्त्री-जाति को शिक्षा का प्रकाश उपलब्ध कराना एक सभ्य जाति का लक्षण है। लक्ष्मी की तरह सभी असमिया लड़कियों के पढ़ लिखकर उन्नति करने पर ही हमारे देश की उन्नति हो सकेगी।"

"किंतु, स्त्रियों के मन में पढ़ने की इच्छा मात्र से क्या वे पढ़ पाएंगी? हमारी लक्ष्मी को आगे पढ़ाने के लिए क्या यहां लड़कियों का माध्यमिक अथवा हाईस्कूल है? उसे लड़कों के स्कूल में भर्ती कराने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखता।"

गुणाभिराम कुछ क्षण चुप रहे। शर्मा की बातों से मानो कहीं उन्हें आघात लगा। कुछ दिनों पूर्व उन्होंने अन्य बातों के प्रसंग में नगांव में लड़कियों का एक माध्यमिक स्कूल खोलने के संबंध में एक प्रस्ताव जिलाधीश के समक्ष रखा था। किंतु, स्वर्ण को कलकत्ता ले जाने की व्यस्तता में इस पर वे पुनः बातचीत नहीं कर सके थे। क्या अपनी बेटी के भविष्य की चिंता में दूसरों की हित-चिंता करना भूल गए? गुणाभिराम ने मन में निश्चय कर लिया कि अगले दिन कचहरी जाकर वे इस विषय पर चर्चा करेंगे किंतु इन सब कामों के लिए समय चाहिए। इसीलिए वे शर्मा की समस्या का कोई नया समाधान नहीं खोज पाए। शर्मा ठीक ही कहते हैं कि लक्ष्मी को लड़कों के स्कूल में पढ़ाने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। शर्मा की बात यद्यपि उन्हें अच्छी नहीं लगी फिर भी बोले, "लड़कों के स्कूल में लड़कियों को भी पढ़ाने की व्यवस्था अन्य स्थानों पर है, ऐसा सुना है। यहां पर लड़कियों के लिए एक अच्छा स्कूल होना जरूरी है किंतु, लड़कियों का स्कूल जब नहीं है तो लड़की को लड़कों

के स्कूल में ही पढ़ाना होगा। स्कूल न होने पर अपनी पढ़ाई बंद कर देना अनुचित होगा। आप चिंता न करें। अनुमति पाने के लिए मैं सरकार को लिखूंगा। लक्ष्मी के लिए भी आपको चिंता करने की जरूरत नहीं। बह बहुत शांत और गंभीर बालिका है, उसकी अवस्था भी अब समझने लायक हो गई है। वह स्वयं अपने को संभालकर चल सकेगी।

"मेरा भी यही विश्वास है", शर्मा ने कहा, "किंतु लोग बाग क्या कहेंगे? इसी के लिए थोड़ा चिंतित हूं।"

"लोकापवाद के भय से क्या आप उचित मार्ग पर चलना छोड़ देंगे? आज समाज आपको बुरा कह सकता है किंतु, भविष्य में देश के प्रगति कर लेने पर सभी आपके साहस की प्रशंसा करेंगे।"

"हाकिम महोदय ! मेरी यही दुर्बलता है। आपकी तरह दूसरों का मार्ग-निर्देशन करते हुए, चलने का साहस मुझमें नहीं है। मैं दूसरों का अनुकरण करने वाला व्यक्ति हूं" शर्मा ने म्लान हंसी हंसते हुए कहा, "इस बार जरा आगे बढ़कर देखिए। पैर फिसलने पर सहारा देने के लिए हम हैं न?" बरुआ हंसकर बोले। शर्मा एक तरह से निश्चय कर ही चुके थे। आश्चर्य की बात है कि इस व्यक्ति के पास आकर पंचानन शर्मा को ऐसा लगता है कि वे मानो नवयुग के द्वार पर खड़े हैं पर घर पहुंचते ही उनके सारे विचार विलुप्त हो जाते हैं। किंतु, आज वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। अपने संकल्प को वास्तविक रूप देने के लिए उन्होंने बिल्व कुटीर से मिडिल स्कूल के हेडमास्टर के पास तत्काल पहुंचकर उनके स्कूल में लक्ष्मी का नाम लिखाने के विषय में सब कुछ ठीक ठाक कर लिया। सरकार से अनुमति मिलते ही सब काम हो जाएगा। करणीय कार्य को संपन्न कर लेने के बाद शर्मा के मन से एक बड़ा बोझ उतर गया। अपनी बेटी को सुसमाचार देने के लिए वे उत्साह पूर्वक घर की तरफ लौट आए।

## 2

लक्ष्मी को स्कूल ले जाने और वहां से ले आने का भार घर के एक बूढ़े नौकर भदाई को सौंपा गया। एल.पी. स्कूल, घर के समीप ही था, इसीलिए लक्ष्मी अपने छोटे भाई के साथ वहां चली जाती थी। अब बूढ़ा भदाई उसके पीछे-पीछे एम.ई. स्कूल के दरवाजे तक जाता था, लक्ष्मी, छाता बंद करके उसे दे देती और तब स्कूल के भीतर प्रवेश करती थी। छुट्टी होने के कुछ पहले ही भदाई जाकर स्कूल के द्वार पर उपस्थित हो जाता था। वह इधर-उधर खड़े लड़कों पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर लक्ष्मी के हाथ में छाता देता और उसके पीछे पीछे धीमी चाल से चलता हुआ घर आता था। प्रथम दिन लड़के अवाक् होकर यह दृश्य देखते रहे। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो सका। अब तक स्कूल में लड़कों का एकाधिकार

था। अब स्कूल में एक लड़की का अनधिकार प्रवेश उनके लिए हलचल पैदा करने वाली घटना थी। पहले दिन हेडमास्टर ने स्वयं लक्ष्मी को साथ ले जाकर एक ओर रखी बेंच पर बैठा दिया था। तब प्रधानाध्यापक के डर से लड़कों को कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ था किंतु दूसरे दिन से ही उनका साहस बढ़ गया। दो शैतान लड़कों ने लक्ष्मी को अपने सामने देखते ही चिल्लाना शुरू कर दिया।

"महारानी विक्टोरिया आ रही है" सभी लड़के खिलखिलाकर हंस पड़े। भदाई ने दांत पीसते हुए उन्हें धमकाया किंतु लक्ष्मी ने जल्दी से भदाई के हाथ में छाता देकर कहा "काका तुम जाओ। मैं इन लोगों की बात हेडमास्टर से कहूंगी।" कक्षा तक आकर लक्ष्मी बाहर ही खड़ी रही। लड़कों के व्यंग्यपूर्वक कुछ-कुछ कहते रहने के कारण लक्ष्मी को भीतर जाने की इच्छा नहीं हुई। अध्यापक के आने के साथ-साथ वह कमरे में जाकर अपने आसन पर बैठने गई। उसकी बेंच पर किसी ने पत्थर से दबाकर एक कागज रख दिया था। हाथ में कागज लेकर जब लक्ष्मी ने पढ़ा तो लज्जा और अपमान से उसके मुंह और कान लाल हो गए। कागज में लिखा था "देखा देखी होते देखकर विधवा ब्राह्मणी बोली कि मुझे भी देखो" लक्ष्मी ने एक हाथ में कागज का टुकड़ा और दूसरे हाथ में पत्थर रखकर एक बार लड़कों की तरफ असहाय दृष्टि से देखा। लड़के तो उसी की तरफ देख रहे थे। पीछे की ओर से हंसने की आवाज भी आई। लक्ष्मी को बहुत क्रोध आया। छोटे भाई की उम्र वाले इन लड़कों का इतना साहस। मैंने उनकी क्या क्षति की है जो इतनी निष्ठुर भाषा में इन्होंने मेरा अपमान किया है। अत्यधिक क्रोध के कारण वह थरथर कांपने लगी। अंग्रेजी के शिक्षक अजय गांगुली उसे लक्ष्य कर रहे थे। यह बात लक्ष्मी को ज्ञात न थी। उसके मुख के भाव पढ़कर उन्होंने समझ लिया था कि कुछ विशेष बात घटित हुई है। लक्ष्मी की तरफ हाथ बढ़ाकर उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, "लक्ष्मीप्रिया ! यह कागज कैसा है, मुझे दो।" लक्ष्मी ने शीघ्रता से आगे जाकर कागज उनके हाथ में दे दिया। गांगुली मास्टर कागज पढ़कर क्रोधित हो गए और बोले, ''असभ्य! जंगली! यह सब किसने लिखा है? बताओ, नहीं तो एक-एक कर सबकी पीठ की चमड़ी उधेड़ दूंगा।'' बेंच पर बेंत पीट-पीटकर गांगुली महाशय ने अपनी बात कही थी। लड़कों ने गांगुली सर को पहले कभी इतने क्रोध में नहीं देखा था। उन्हें भी एम.पी. स्कूल में यहां आए हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। इसलिए वहां के शिक्षकों के रोष-कोप से वे परिचित नहीं हुए थे। किसी को कुछ न बोलते देखकर गांगुली मास्टर उठकर एक छलांग में आगे आए और प्रथम बेंच के कई लड़कों के ऊपर बेंत चलाना प्रारंभ कर दिया। साधारणतः पहली पंक्ति में सुयोग्य छात्र ही बैठा करते हैं। बेंत का प्रहार भी उन्हें कम सहना पड़ता है, इसलिए एक दो बेंत पड़ते ही एक लड़का बोल पड़ा, ''सर ! मैंने कुछ नहीं किया, गिरीन ने किया है।''

एक क्षण में ही गांगुली ने पीछे की बेंच पर बैठे हुए गिरीन नामक छात्र को खींचकर

बाहर निकाला और उसकी पीठ पर बेंत चलाने लगे। लक्ष्मी यह सब कांड देखकर संकुचित हो, बैठी रही। गिरीन ने एक के बाद एक कई बेंत खाने के बाद सच्ची बात उगल दी, "सर ! ऊंचे क्लास के लड़कों ने यह बात सिखलाई थी, इसलिए मैंने ऐसा लिखा। आज के बाद से कभी ऐसा काम नहीं करूंगा।"

गिरीन को और एक बेंत मारने के बाद गांगुली धीरे-धीरे अपने आसन पर वापस आ गए। अत्यधिक क्रोध करने के कारण वे थक गए थे। इसके पहले भी कई बार उन्हें लड़कों पर क्रोध आया था। विद्यार्थी के न पढ़ने पर या उसके झूठ बोलने पर जैसा क्रोध होता है, उसकी अपेक्षा इस समय गांगुली के क्रोध की प्रकृति अलग थी। छोटे-छोटे लड़कों के भीतर मानो गांगुली ने किसी भयंकर सामाजिक व्याधि के लक्षण देखे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि यदि इस व्याधि का इलाज आरंभ से ही न किया गया तो यह रोग लड़कों से समूचे समाज में फैलकर उसे रुग्ण कर देगा। इसलिए बेंत-प्रहार से औषधि की पहली खुराक देने के बाद उन्होंने वाक्य-बाण के प्रयोग द्वारा दूसरी खुराक दी।

"तुम लोगों का मन कितना संकीर्ण है? इतनी नीच प्रकृति लेकर ज्ञानार्जन करना निरर्थक है। आज अपनी बड़ी बहन की तरह लक्ष्मीप्रिया को तुम लोग निर्ममता से चिढ़ाते हो, कल अपनी छोटी बहनों को पढ़ते-लिखते देखकर उन पर व्यंग्य करोगे।"

"विद्या तुम्हारी एकछत्र संपत्ति नहीं है, समझ रहे हो? कूप-मण्डूक होने के कारण ही तुम्हारी ऐसी धारणा है। बंगाल में जाकर देखो। वहां लड़कियों को लड़कों के समान एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद, कॉलेज जाते हुए देखोगे। संसार के सभी सभ्य देश नारी-जाति की उन्नति के लिए सचेष्ट हैं और तुम एक अभागिन लड़की को विद्या और शिक्षा से वंचित रखना चाहते हो? एक दिन तुम्हारी परवर्ती संतानें ही तुम्हारी निंदा करेंगी। मैं कहता हूं, विद्या की देवी सरस्वती भी तुम्हें क्षमा नहीं करेंगी।"

उनकी बातें लड़कों को बाण की तरह चुभ गई। अधिकांश लड़के कम उम्र के थे। बुरे विचारों ने तब तक उनके मस्तिष्क में जड़ नहीं जमाई थी। वे सभी दुःखी हुए और अध्यापक के आदेशानुसार सभी ने लक्ष्मी से क्षमा-याचना की। उस दिन के बाद से लक्ष्मी को किसी ने नहीं चिढ़ाया। दूसरी कक्षा के छात्रों को जब यह बात ज्ञात हुई तो वे भी उसके साथ शिष्ट व्यवहार करने लगे। इधर लक्ष्मी ने अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय देकर अल्प समय में ही अपनी कक्षा के मेधावी छात्रों के बीच अपना स्थान बना लिया।

यद्यपि स्कूल की समस्या हल हो गई फिर भी अपने घर वालों और संबंधियों के साथ लक्ष्मी का संघर्ष इतनी सहजता से समाप्त होने वाला नहीं था। स्कूल जाने के रास्ते में ही लक्ष्मी के चाचा हरिशर्मा का घर था। शर्मा कचहरी में पेशकार का काम करते थे। किंतु, लगन देखना, पत्रा देखनी, पूजापाठ करना और अपने संबंधियों के घर में अशौच होने पर शुद्धि-कार्य कराना आदि कामों में साधारणतः उन्हें व्यस्त देखा जाता था। उन्होंने अपने

ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण को हाईस्कूल में भर्ती कराया था। पुत्री सुभद्रा लक्ष्मी से दो वर्ष छोटी थी पर उसका विवाह हो गया था। अभी वह रजस्वला नहीं हुई थी। वह लिखना-पढ़ना नहीं जानती थी किंतु किसी भी चीज को कंठस्थ करने में निपुण थी। लक्ष्मी पांचाली पद्यों का पारायण वह आदि से अंत तक कर सकती थी और पत्रिका में वर्णित निषेध तालिका भी शुद्ध गा सकती थी। हरि शर्मा का विश्वास था कि स्त्रियों को यह निषेध तालिका मुखस्थ रहने पर वे तिथि के अनुसार निषिद्ध वस्तुएं जैसे प्रतिपदा के दिन, आलू व कच्चू और अष्टमी के दिन नारियल नहीं खाएंगी। इसलिए अपनी बेटी को इन सब बातों की शिक्षा देने में उन्होंने कोई त्रुटि नहीं की थी। लक्ष्मी प्रिया को पढ़ती लिखती देखकर सुभद्रा की इच्छा भी पढ़ने-लिखने की होती थी। किंतु उसके पिता शर्मा ने शास्त्र-वचनों के आधार पर बताया कि स्त्री जाति के पढ़ने-लिखने पर कैसा भयंकर परिणाम होता है। इस विषय में उन्होंने एक भयावह चित्र खींचा जिसके भयवश सुभद्रा ने दुबारा इस प्रसंग को सामने लाने का साहस नहीं किया।

लक्ष्मी के असमय में विधवा हो जाने से हरिशर्मा को मानो अपनी बात की सत्यता का प्रमाण मिल गया! अपनी भविष्यवाणी फलीभूत होने की बात उन्होंने कई बार अपने घर की महिलाओं के सामने दुहराई। उनके पांडित्य का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए ही जैसे लक्ष्मी विधवा हुई हो। यह सोचकर हरिशर्मा का मन आत्म संतुष्टि से ओत-प्रोत हो गया। किंतु, इस आत्मतुष्टि को प्रबल रूप से झकझोरती हुई लक्ष्मी जब उनके घर के सामने से होकर प्राइमरी स्कूल में आना-जाना करने लगी तब अमंगल से अपने घर की सारी स्त्रियों की रक्षा करने के लिए हरिशर्मा दौड़कर अपने भाई पंचानन शर्मा के पास गए। उनकी हजारों तर्क-युक्तियों से भी जब पंचानन शर्मा अपने निर्णय से विचलित नहीं हुए तो हरिशर्मा निरुपाय होकर अपने भाई की स्वस्थता के विषय में संदेह प्रकट करते और भुनभुनाते हुए वहां से चले आए। इसके बाद वे बहुत दिनों तक बड़े भाई के सम्मुख नहीं गए। किंतु, अपने पिता के श्राद्ध के अवसर पर उन्हें निमंत्रित न करने पर दिवंगत आत्मा का शाप भोगना पड़ेगा, यह सोचकर बाद में वे एक बार उनके घर गए थे।

लक्ष्मी के जिले भर में प्रथम आकर वृत्ति पाने के समाचार भी उन्हें मिले थे। अपने लड़के को इतना पढ़ाने के बाद भी वह वृत्ति न पा सका और एक विधवा लड़की ने वृत्ति पा ली, यह बात उन्हें कचोट रही थी। एक दिन लक्ष्मी को लड़कों के मिडिल स्कूल में जाते देखकर हरिशर्मा आश्चर्य चकित रह गए। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। अपनी जिज्ञासा न दबा पाने के कारण एक दिन लक्ष्मी के स्कूल से आते समय वे अपने दरवाजे पर खड़े हो गए। लक्ष्मी ने दूर से अपने चाचा को देखकर छाते की ओट में अपना मुंह छुपाकर जल्दी-जल्दी निकल जाना चाहा किंतु जब चाचा ने उसको 'इधर आओ' कहकर बुलाया तो वह डरती हुई उनके पास चली गई।

"आजकल मिड्लि स्कूल में जाती हो?" शर्मा ने विद्रूप हंसी हंसकर पूछा। "हां", लक्ष्मी ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"अरे ! लड़कों के बीच पढ़ने के लिए जाने में तुझे लाज नहीं आती। छिः ! ऐसी बात पहले कहीं सुनी है? ऐसा लगता है कि भाई पंचानन शर्मा का दिमाग फिर गया है। एक विधवा लड़की को घर से बाहर सड़क पर निकालना ही पाप है, इससे आगे बढ़कर लड़कों के साथ तुझे पढ़ने भेजा है। अरे, तुम लोगों को तनिक लाज शर्म नहीं है क्या? देश के लड़कों का मगज खाने का तुम्हें कोई अख्तियार नहीं है, समझती हो।" उन्होंने अख्तियार शब्द पर ऐसा जोर देते हुए कहा जैसे कोई अभियोग लगा रहे हों।

साधारणतः इस प्रकार की बात कहने के बाद वे कोई तर्क-वितर्क नहीं करते थे, चाहे किसी को भी केंद्रित कर बात क्यों न कही गई हो। किंतु, लक्ष्मी को अत्यधिक क्रोध आया। पहले उन्होंने, पिता का दिमाग खराब हो गया है, कहा और दूसरे उसके चरित्र के संबंध में भी संदेह किया है, उसने चाचा की ओर देखकर सामान्य आदर के साथ उत्तर दिया, "मैं लड़कों को परेशान नहीं करती, अपना पढ़ना-लिखना ही करती हूं, कोई पाप नहीं करती।"

"छिः छिः" करते हुए शर्मा धमकी भरे स्वर में बोले, "जवान लड़की के सब समय सामने बैठी रहने पर क्या लड़कों के मगज में पढ़ाई समाएगी?"

हरिशर्मा की प्रत्येक बात बाण की तरह लक्ष्मी के हृदय को बेध रही थी। आजकल उसने बहुत कुछ सहन करना सीख लिया था। वह आमने-सामने होकर किसी को प्रत्युत्तर नहीं देती थी। किंतु, आज चाचा की बातें उसकी सहनशक्ति की सीमा के बाहर चली गई थीं। सुदीर्घ काल से संचित क्षोभ और क्रोध मानो बंधन मुक्त होकर निसृत होना चाहते थे। आगा पीछा न-सोचते हुए वह शर्मा के मुख की ओर देखकर बोली, "पढ़ाई नहीं समाएगी तो क्या समाएगा? यदि मैं इतने लड़कों के बीच अपना लिखना-पढ़ना कर सकती हूं तो क्या मेरी उपस्थिति में वे नहीं कर सकते? इसका अर्थ यह हुआ कि लड़कों का मन लड़कियों से दुर्बल होता है और आप विधवा कहकर मुझे अपमानित कर रहे हैं? क्या मैं जन्म से ही विधवा थी? आप सबने ही मिलकर मेरा विवाह कराया था। मैं एक दिन भी स्वामी के घर में कदम नहीं रख पाई। फिर भी, मैं एक कुमारी कन्या की तरह नहीं रह सकती? विधवा होने में क्या मेरा दोष है? मैं लिखना-पढ़ना अवश्य करूंगी। आप हमेशा कहते थे कि पढ़ने-लिखने से लड़की विधवा हो जाती है, विधवा यदि पढ़े-लिखे, तो वह क्या होगी? यह आपने नहीं बतलाया। शायद रौरव नर्क में जाना पड़ेगा। मैं इन सबका रंचमात्र भी भय नहीं करती। नरक में जाना पड़ेगा तो भी चली जाऊंगी।" अंत की बात कहते-कहते लक्ष्मी का मुंह अत्यधिक लाल हो गया और दोनों आंखों में आंसू आ गए। हरिशर्मा चकित रह गए, इस जरा सी लड़की का इतना साहस? मेरे सामने इतना कुछ बोल रही है। गुस्से में अधिक कुछ न कर पाने पर वे चिल्ला पड़े, "जरा इसका जोर तो देखो ! तुम्हारे मां

बाप ने तुम्हें यही सिखाया है? विधवा होकर मृत स्वामी की आत्मा की शांति के लिए व्रत-उपवास करना तो दूर, चली हैं पढ़ाई करने, क्लर्क बनोगी या मुहर्रिर।"

"मुझे क्र्लक या मुहर्रिर बनने की इच्छा नहीं, मनुष्य होना चाहती हूं। मेरे पति की मृत्यु रोग से हुई, मेरे पाप के कारण नहीं। कोई किसी दूसरे के पाप के कारण नहीं मरता। बड़ी चाची जी का भी रोग के कारण ही स्वर्गवास हुआ था। चाची के मरणोपरांत कुछ महीनों में ही आप नई चाची ले आए। बड़ी चाची की आत्मा की मुक्ति के लिए आपने कितने व्रत-उपवास किए हैं?"

हरिशर्मा इस बार और नहीं रह सके। दरवाजे के बांस को हाथ से पकड़कर दांत पीसते हुए बोले, "तुम यहां से बाहर निकलती हो या नहीं? नहीं तो एक घूंसे में ही" उनका वाक्य पूरा होने के पहले ही बेचारा भदाई बात बिगड़ती देखकर बीच में बाधा देते हुए हाथ जोड़कर बोला, "चाचा जी, दीदी की बात का बुरा मत मानिए। मन में दुख होने के कारण उनका दिमाग भी ठीक नहीं है।" चलो चलें बेटी ! कहकर वह जल्दी से लक्ष्मी को वहां से खींच कर ले गया।

लक्ष्मी ने घर पहुंचकर सिसकते हुए पिता को सारी बातें बतलाई। बेटी की बात सुनकर पंचानन शर्मा के मन में भी जिद पैदा हो गई। यथासाध्य वे अपनी पुत्री को अवश्य पढ़ाएंगे। पंचानन शर्मा हमेशा से हरि लोगों से मानसिक स्तर में अपने को उच्च मानते आए हैं। गुणाभिराम बरुआ के साथ परिचय होने के बाद से वे अपना दृष्टिकोण भी उदार बनाने की चेष्टा करते रहे हैं। इसलिए बेटी को रास्ते में रोककर गाली देने की बात सुनकर वे अपने को समाज-सुधारक के रूप में रखकर विचार करने लगे। लक्ष्मी के समान निराश्रय अबलाओं की रक्षा करना उनका दायित्व है। उन्होंने पुत्री को सांत्वना देते हुए कहा, "बेटी। तुम कुछ चिंता मत करो। सरस्वती देवी का ध्यान करके अपनी पढ़ाई लिखाई करती जाओ। तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं हरि के पास जाकर उसे दो चार बातें जरूर सुनाऊंगा। मेरी लड़की को रास्ते में रोककर धमकी देने वाला वह कौन होता है? कल से तुम उस रास्ते से मत जाना। पुखरी पार वाले रास्ते से जाना। रास्ते में किसी से भी बातचीत करने की कोई जरूरत नहीं। किसी के कुछ कहने पर भी चुप रह जाना। व्यर्थ में बात मत बढ़ाना।"

## 3

देखते-देखते कलकत्ता में स्वर्ण को रहते हुए एक वर्ष बीत गया। स्कूल बंद होने के पहले ही गुणाभिराम उसे ले आने के लिए कलकत्ता चले गए। इस बार उनके साथ विष्णुप्रिया नहीं जा सकी। वह इसी बीच एक और शिशु को जन्म दे चुकी थी। छोटे बच्चे का नामकरण किया गया था ज्ञानाभिराम। किंतु, अभी उसे इतने लंबे नाम से कोई नहीं पुकारता था। उसे कनबोपा, पोनाकन, भाइटीकन आदि नामों से ही पुकारा जाता था।

स्वर्ण आने वाली है इस कारण घर में चहल-पहल हो गई थी। जिससे जो संभव हुआ, उसके सत्कार के लिए प्रबंध करने लगा। विष्णुप्रिया ने घर में जोहा चावल, चूड़ा आदि चीजों की व्यवस्था कर ली। जिस दिन स्वर्ण के पहुंचने की बात थी, उस दिन उसने अपने हाथ से मछली तैयार की थी। संध्या को दरवाजे पर बग्घी लगते ही, कमला, करुणा, आई, रसोईदारिन और दूसरे सेवक सभी बाहर निकल आए। अपनी गोद के शिशु को लेकर विष्णुप्रिया बरामदे तक आ गई। स्वर्ण ने बग्घी से उतरकर इधर उधर देखा। सामने के बकुल वृक्ष और बेल वृक्ष वाले घर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था किंतु वह स्वयं कुछ परिवर्तित सी लगी। छोटे भाई करुणा और कमला पहले की अपेक्षा कुछ बड़े लग रहे थे। स्वर्ण को देखकर उन्होंने अपना सिर झुका लिया। स्वर्ण मां के पास गई और नवजात शिशु के ऊपर का कपड़ा हटाकर उसे देखा और चूम लिया। उसका गोरा और कोमल मुख स्वर्ण को बहुत प्यारा लगा।

ऊपर से देखने पर स्वर्ण की मुखाकृति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं लगता था। विष्णुप्रिया ने लक्ष्य किया कि वह पहले से कुछ कृश हो गई है और कुछ लंबी भी हुई है। उसकी बोली एवं बातचीत में अवश्य परिवर्तन आया था। एक साल तक असमिया भाषा में न बोलने के कारण, न चाहते हुए भी उसकी बातचीत में बंगला के दो-चार शब्द आ जाते थे। भाइयों के हंस देने पर वह सतर्क होकर अपनी भाषा को शुद्ध कर लेती थी। छात्रावास में साथ की लड़कियों के साथ उसे अधिकांश समय बंगला में ही बातचीत करनी पड़ती थी। अब वह सुंदर बंगला बोल लेती थी।

कक्षा में अंग्रेजी शिक्षिकाएं अंग्रेजी में बात करती थीं इसलिए छात्राएं भी अंग्रेजी में ही बोलने की चेष्टा करती थीं। स्वर्ण पहले दो दिनों तक स्कूल और छात्रावास की बातें अनर्गल रूप में सुनाती रही। वह बीच-बीच में मनोरंजक घटनाओं का जिक्र करके सबको हंसाती भी थी। शुरू में ठीक बंगला न बोल पाने के कारण वह कितनी अशुद्धियां करती थी, यह बात उसने बार-बार दुहराई। एक दिन वह बेजी (सूई) के लिए सब जगह भटकती फिर रही थी और सब उसे पागल समझते रहे। बाद में उसे मालूम हुआ कि बेजी को बंगला में 'नेउल' कहते हैं।

भात खाने के लिए बैठने पर स्वर्ण हमेशा होस्टल के खाने की चर्चा करती। वहां सभी खाद्य वस्तुओं में मिर्च अधिक होने के कारण पहले पहल वह कुछ नहीं खा पाती थी। बाद में जब छात्रावास की व्यवस्थापिका को यह बात ज्ञात हुई तो वे उसके लिए बिना मिर्च-मसालों का भोजन और अपने हिस्से के भोजन से जोहा चावल का थोड़ा भात भेज देती थीं। बंगाली छात्राएं डेखुवा चावल का भात और अधिक मिर्च-मसाले की चीजें खाती थीं। स्वर्ण की थाली में सफेद भात देखकर वे उसे 'विधवा ब्राह्मणी' कहकर चिढ़ाती थीं। स्वर्ण मिस लिप्स्कंब और मिस मीटर की बात अक्सर किया करती थी। वे उसे अपने घर ले जाकर केक और बिस्कुट खाने को देती थीं। रविवार के दिन बसु परिवार की कोई महिला आकर उसे अपने घर ले जाती थी और सुस्वादु व्यंजन खाने को देती थी। यही नहीं, लौटते समय पोटली बांधकर दे देती थी। साथ की लड़कियां उसकी लाई चीजों में हिस्सा बंटाने के लिए उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती रहती थीं।

स्वर्ण की बातें सुन सुनकर विष्णुप्रिया के मन में दुःख होता, वह सोचती कि उसे वहां खाने की तकलीफ है। दूर में रहकर वह कर भी क्या सकती थी। यदि वह कलकत्ता में जाकर रहती तो स्वर्ण को अपने पास रख सकती थी। किंतु, इस समय ये सब बातें सोचना व्यर्थ है। पति सरकारी नौकरी में है, बच्चों का लालन-पालन करना है, ये ही सब उसकी चिंता के विषय हैं। इसलिए जितने दिनों तक स्वर्ण घर पर है, उसे अच्छी तरह खिला पिलाकर उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है।

घर आने के बाद से ही स्वर्ण का मन तारा से मिलने के लिए उत्सुक था। तारा अमेरिका से वापस आ गई है यह खबर उसे तारा की मां ने दी थी। तीन वर्षों से उसने तारा को नहीं देखा था। मां के कथनानुसार तारा बहुत बड़ी हो गई थी। बातचीत और कामकाज में तारा की कोई समानता नहीं कर सकता। नार्मल स्कूल की आधी पढ़ाई छोड़कर वह अमेरिका गई थी। अब आकर उसने फिर से अपनी पढ़ाई आरंभ कर दी थी। वह संध्या के समय अस्पताल में नर्स का काम करती थी। अमेरिका से वह नर्सिंग का प्रशिक्षण लेकर आई थी।

स्वर्ण के आने की खबर पाने के दो दिनों बाद ही तारा उसके पास आई। स्वर्ण ने उसे देखकर लक्ष्य किया कि उसकी वेशभूषा पहले से बहुत बदल गई थी। सूती मेखला और रिहा की जगह अब वह नीली पाड़ी की सफेद साड़ी पहनने लगी थी। पैरों में मोजे और बकलस लगे सैंडिल पहनती थी। ठंड के दिन होने के कारण उसने साड़ी के ऊपर अमेरिका से लाया हुआ गरम कोट पहन रखा था। वह क्रिश्चियन पट्टी से पैदल चलकर बिल्व कुटीर तक आई थी। स्वर्ण तारा को देखकर पहले की तरह अवाक् रह गई। उसने सोच रखा था कि इस बार अपनी नवीन जानकारी के बल पर वह तारा से एक कदम आगे नहीं तो उसके बराबर तो अवश्य रहेगी। तारा देखने में इतनी बड़ी हो जाएगी, स्वर्ण

ने इसकी कल्पना तक न की थी। तारा एक भद्र महिला की तरह दिखती थी। स्वर्ण को लगा कि तारा के जीवन विषयक ज्ञान में भी वृद्धि हुई थी। हठात्, यह बात मन में आने पर, स्वर्ण को बुरा लगा कि वह कभी तारा के समान नहीं हो पाएगी। किंतु, एक मुहूर्त में ही तारा ने स्वर्ण के मन की आशंका दूर कर दी। पहले की तरह तारा स्वर्ण के कपोल दबाकर प्यार करती हुई बोली, ''स्वर्ण। तुम बड़ी तो हो गई हो पर, कलकत्ता की मिठाई खाकर मोटी-ताजी नहीं हुई। लगता है बोर्डिंग का खाना खाने में तुम्हें कष्ट होता है। जानती हो स्वर्ण! मां के हाथों की बनी चीजों जैसा स्वाद और कहीं नहीं मिलेगा। मैंने भी ऐसा स्वाद और कहीं नहीं पाया।"

उस दिन दोनों ने एक साथ बैठकर ढेर सारी बातचीत की। तारा ने उसे अपने अमेरिका भ्रमण की बात बतलाई। किंतु, स्वर्ण ने लक्ष्य किया कि अब तारा के मन में विदेश-भ्रमण का पहले जैसा विशेष उल्लास नहीं है। साहब और मेमों के संबंध में बात करते समय तारा अब पहले की तरह उनकी प्रशंसा में अपना मन-प्राण नहीं डाल पाती। अंत में स्वर्ण ने जब पूछा कि तुम्हें वहां अधिक अच्छा लगा कि यहां, तो तारा ने अपने मन की बात स्पष्ट की।

"वहां रहना बहुत अच्छा है। सड़कें, वाहन, यंत्र, मशीनें और उपभोग के सभी साधन वहां हैं। हमारी यह जगह, वहां की तुलना में जंगल है। हमारे आदमियों को वहां के लोग अकिंचन, भिखारी समझेंगे। फिर भी, मुझे यहीं अच्छा लगता है। यहां अमीर-गरीब जाति-पांति का भेद है किंतु आदमी-आदमी में कोई भेद नहीं। वहां जाकर मुझे लगा जैसे मैं विचित्र जंतु हूं। रास्ते में बच्चे मुझे घेरकर देखते थे। कुछ लोग ताली बजाते हुए 'निगार-निगार' कहकर चिढ़ाते भी थे। बाद में मुझे पता चला कि निगार का अर्थ है निग्रो—अफ्रीका के काले लोग। हमारा रंग उनसे बहुत गोरा है फिर भी, साहब लोगों की दृष्टि में हम निगार हैं।"

"किंतु, पादरी लोग तो ऐसे नहीं होते। देखा नहीं, वे तुम्हें कितना प्यार करते हैं" स्वर्ण ने चकित होकर कहा, "अवश्य करते हैं, वहां भी मुझे सब लोग बहुत प्यार करते थे। किंतु मुझे ऐसा लगा कि वास्तव में वे लोग हम पर दया दिखाते हैं। एक दिन क्या हुआ कि—किंतु तुम यह बात मिशन के किसी आदमी से मत कहना, अच्छा" स्वर्ण ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। तारा कहती गई, "एक दिन रविवार को बोस्टन शहर के एक गिरजाघर में प्रातःकालीन प्रार्थना के पश्चात छोटे बालक और बालिकाओं की एक सभा हुई थी। वहां एक पादरी साहब ने मुझे सबके सामने खड़ा करके मेरा परिचय कराया—यह लड़की भारत के एक गांव से आई है। वह एक जंगली और भयंकर स्थान है। वहां जाकर हमारे पादरियों ने बहुत परिश्रम पूर्वक वहां के जंगली लोगों के मन में ईश्वर के प्रति विश्वास जाग्रत किया है। इस लड़की को ही देखो, हमारे ही कारण इसके भीतर सभ्यता का प्रकाश

आया है।—ये सब सुनकर मुझे बहुत क्रोध आया. तब मैं चुप न रह सकी और मैं खड़ी होकर बोली, 'प्यारे भाइयो और बहनों ! इतनी दूर यहां लाने के लिए मैं सभी साहबों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूं। किंतु, तुम ऐसा मत समझना कि नगांव में सभ्य आदमी नहीं। वहां अनेक हिंदू मुसलमान और अन्य धर्मावलंबी लोग रहते हैं, जिनकी संतानों ने शिक्षा-दीक्षा ग्रहण कर जीवन में उन्नति की है।' स्वर्ण, मैंने उन्हें तुम्हारे बारे में बतलाया और यह भी कहा कि तुम बोर्डिंग स्कूल में रहने के लिए कलकत्ता गई हो। किंतु, मेरी बातें सुनकर पादरी साहब ने बाद में बहुत डांट-फटकार की। उनका विचार था कि मैंने उनके कार्य-कलापों की निंदा की है। इन सब बातों से मुझे बहुत दुःख हुआ था।"

तारा की बातें सुनकर स्वर्ण के मुख पर आनंद की चमक मुस्कान बनकर दमकने लगी। तारा ने विदेशी लड़के और लड़कियों को उसके संबंध में बतलाया। यह जानकर स्वर्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने भी तारा को अपनी जानकारी की दो एक बातें सुनाईं।

"वास्तव में विदेशी लोग हमारे असम के बारे में बहुत कम जानते हैं। इसीलिए वे हमें जंगली और बर्बर समझते हैं। मेरे स्कूल की छात्राएं मुझसे पूछती हैं, "असम जिला किस तरफ है? कलकत्ता के पूर्व में या पश्चिम में"? स्वर्ण उन छात्राओं के स्वर की नकल करती हुई हंसने लगी। "और कुछ सुनाओ" तारा ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

"एक दिन क्या हुआ जानती हो, एक बड़ी लड़की सभी लड़कियों के सामने आकर कहने लगी कि असम के लोग कपड़े-लत्ते पहनना नहीं जानते। कच्चा मांस खाते हैं। यह सुनकर मैं क्रोध से रोने लगी। बाद में मिस लिप्स्कंब ने उन्हें खूब धमकाया।"

उस दिन बातचीत करते करते स्वर्ण और तारा के बीच एक अभिनव मित्रता स्थापित हो गई। शैशव के स्वप्नलोक से मानो दोनों सखियां एक साथ वास्तविक जगत में लौट आई थीं। अपने लघु जीवन की इन छोटी-मोटी जानकारियों के आधार पर वे दोनों समझ गई थीं कि वास्तविक संसार कितना कठिन और कितना कठोर है? किंतु, इसके बीच भी स्वप्नों का संसार निर्मित करने के लिए बहुत कुछ है। बाल-सुलभ उत्साह प्रदर्शित करते हुए स्वर्ण ने कहा, "बड़ी होकर मैं एक पुस्तक लिखूंगी। उसमें असम विषयक अच्छी-अच्छी बातें लिखूंगी ताकि, कोई हमें बर्बर नहीं कह सके। उसमें मैं तुम्हारी और तुम्हारी मां की, अपनी मां की और लक्ष्मी की बात भी लिखूंगी। लक्ष्मी लड़कों के स्कूल में मिडिल कक्षा में पढ़ती है, वह बहुत साहसी लड़की है। कल ही, वह यहां आई थी।"

"मैं भी उससे एक दिन रास्ते में मिली थी। वह देखने में बहुत सुंदर लगने लगी है। किसी अच्छे घर का लड़का उससे विवाह कर लेता तो कितना अच्छा होता। किंतु, ब्राह्मण लोग विधवा का पुनर्विवाह नहीं करते। लक्ष्मी का मन भी बहुत अच्छा है। मैं नार्मल परीक्षा पास करके बालिराम स्कूल में पढ़ाने जाऊंगी। यह सुनकर लंबी सांस लेते हुए उसने कहा था कि काश, वह भी कहीं काम करने जा पाती। शिक्षिका बनने का उसका बड़ा मन है।"

दोनों बालिकाओं का संवाद चलता रहा। कमरे में बैठी हुई विष्णुप्रिया उनकी बातें सुनकर सोच रही थी कि ज्ञान मनुष्य में कितना परिवर्तन ला देता है। हमारी आंखों के सामने बड़ी हुई ये दोनों लड़कियां जीवन और जगत के बारे में कितना अधिक सोच सकती हैं? जब वह उस उम्र में थी तो जो बातें कभी उसके मन में नहीं आई थीं, वे सब बातें इस समय ये लोग अपने ज्ञान और युक्ति द्वारा विचार लेती हैं। इसे युग परिवर्तन का चिह्न नहीं तो और क्या कहें। हठात् तारा और स्वर्ण को विष्णुप्रिया अपने समवयस्क समझने लगती है। उसके मन में आया कि उन लोगों से उसे अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है।

## 4

कलकत्ता में पहले दो वर्ष तक लक्षेश्वर दूसरे दो असमिया छात्रों के साथ बंगाली लड़कों के मेस में रहता था। कलकत्ता के अपरिचित परिवेश, खानपान और रुचि परिवर्तन और भाषा की समस्या के कारण प्रथम दो माह तक लक्षेश्वर बड़ा भयभीत सा रहा। उसके बाद एक दिन मनीआर्डर द्वारा गुणाभिराम बरुआ के रुपए मिले और पत्र भी। पत्र पाते ही वह स्वर्ण का समाचार लेने चल पड़ा। वह अभी तक कलकत्ता के रास्तों को अच्छी तरह नहीं पहचानता था। छात्राओं के स्कूल में जाने की बात सुनकर हाराधनघोष नामक एक लड़का तत्काल उसके साथ जाने को राजी हो गया। लक्षेश्वर जैसे लड़के का कोई अपना बेथुन स्कूल में हो, इस बात से उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सुन रखा था कि उस स्कूल में केवल धनी और सम्पन्न ब्राह्मों की लड़कियां ही पढ़ती हैं। दो एक धनी परिवारों की हिंदू लड़कियां भी पर्दे वाली घोड़ागाड़ी द्वारा स्कूल में आना जाना करने लगी हैं। किंतु, सर्वसाधारण बंगालियों के लिए ये लड़कियां एक भिन्न जगत के प्राणियों के समान थीं। उन्हें पास से देखने के लिए अन्य लड़कों की तरह हाराधन की भी बहुत दिनों से इच्छा थी। बेथुन स्कूल में पहुंचकर हाराधन एक बार फिर अवाक् रह गया। स्वर्ण उसे अप्सरा के समान अपरूपा लगी। इतनी कम वय में इतना रूप सौंदर्य। स्वर्ण असम के छोटे लाट की बेटी है, यह जानकर हाराधन की तरह वाचाल, हंसोड़ और किसी प्रकार की परिस्थिति में पराजय स्वीकार न करने वाला लड़का गंभीर बन गया। इतने में ही स्कूल के सामने एक निजी सुंदर बग्घी आकर खड़ी हो गई। उसमें से एक सज्जन और एक भद्र महिला नीचे उतरकर आई। उनकी वेशभूषा और चालढाल देखकर ही लक्षेश्वर और उसके साथी ने समझ लिया कि ये कलकत्ता के किसी रईस परिवार के व्यक्ति हैं। भद्र महिला के साड़ी पहनने के तौर तरीके से स्पष्ट था कि वे लोग ब्राह्म हैं। दोनों ने आकर 'विजिटर्स बही' में हस्ताक्षर किये और उस कमरे में आ गए जहां लक्षेश्वर अपने साथी के साथ बैठा था। बोर्डिंग में किसी लड़की से मिलने के लिए आने पर सबको इस कमरे में बैठाया जाता था।

इसी समय स्वर्ण ने उज्जवल मुस्कान के साथ समीप आकर उन्हें प्रणाम किया। लक्षेश्वर और हाराधन संकोच भरे भाव से एक तरफ खड़े थे। स्वर्ण ने बड़े उत्साह से 'काका और काकी मां' के साथ उनका परिचय करा दिया। लक्षेश्वर को तभी मालूम हुआ कि दोनों कलकत्ता के विख्यात बैरिस्टर आनंद मोहन बसु और उनकी पत्नी हैं। उस समय कलकत्ता के शिक्षित-जगत में आनंद मोहन बसु का नाम किसने नहीं सुना था? उस समय सारे भारत में देशी बैरिस्टरों की संख्या उंगलियों पर गिनने लायक थी। उस पर भी बसु केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय 'रेंगलार' थे। गणित शास्त्र में प्रथम श्रेणी में 'ट्राइपस' पाने वालों को केम्ब्रिज का 'रेंगलार' कहा जाता था। कलकत्ता के शिक्षित समाज में आनंदी मोहन बसु को नारी-शिक्षा की उन्नति के क्षेत्र में ब्राह्मसमाज के अग्रणी नेता के रूप में जाना जाता था। अतः इतने विशिष्ट व्यक्ति के साथ परिचय होने के कारण लक्षेश्वर और हाराधन अपने को धन्य मान रहे थे। स्वर्ण को उन लोगों के पास छोड़कर दोनों विदा लेकर मेस में वापस आ गए।

रास्ते में हाराधन अपनी उत्सुकता न दबा पाने के कारण लक्षेश्वर से अनेक प्रश्न करता रहा। स्वर्ण के साथ लक्षेश्वर का क्या संबंध है? स्वर्ण के पिता आनंद मोहन बसु को कैसे जानते हैं? आदि। लक्षेश्वर ने उसी समय समझ लिया कि यही उसकी विजय का मुहूर्त है, इसे हाथ से जाने देना नहीं चाहिए। मेस के बंगाली लड़कों में अपने को बड़े घर का लड़का प्रचारित करने का यही स्वर्णिम अवसर है। ऐसा सोचकर लक्षेश्वर ने अपने परिवार और गुणाभिराम बरुआ के संबंध में बहुत सी मिथ्या बातें कह दीं। उसकी बातों की गहनता को लक्ष्य कर हाराधन की यह धारणा हुई कि लक्षेश्वर के पिता निश्चय ही असम के बड़े जमींदार अथवा छोटे-मोटे राजा होंगे। लक्षेश्वर ने कहा था कि छोटे लाट, बैरिस्टर ये सब तो उसके परिवार में अनेक हैं, और बचपन में स्वर्ण के पिता उसके घर पर रहकर पढ़े थे। बाद में ब्राह्म होकर विधवा विवाह करने के कारण उनको समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। यों तो वह स्वर्ण लोगों के घर में एक बूंद पानी तक नहीं पीता, पर अपनी सदाशयता के कारण उनके यहां आता जाता रहता है।

बेथुन स्कूल से लौटकर मेस में आने पर लक्षेश्वर ने हाराधन को पूर्ण रूप से प्रभावित कर लिया था। दूसरे किसी अवसर पर इस तरह की बातें सुनकर हाराधन जैसा चतुर चालाक लड़का इतनी आसानी से भ्रमित नहीं होता, किंतु, उस दिन उस समय बेथुन स्कूल में स्वर्णलता और आनंद मोहन बसु सबको देखकर हाराधन इतना अभिभूत हो गया था कि लक्षेश्वर की बात पर अविश्वास करने का उसे कारण नहीं मिला। उसी दिन से मेस के लड़कों में लक्षेश्वर का मान सम्मान बढ़ गया। बंगाली लड़के उसे बड़े घर का बेटा समझकर आदर देने लगे। लक्षेश्वर भी गुणाभिराम के भेजे रुपयों से मिल की बारीक धोती, नए जूते और कमीज खरीद कर प्रसन्न मन से बड़प्पन के झूठे प्रदर्शन में व्यस्त हो गया।

एफ.ए. पास करने के बाद बी.ए. में प्रवेश लेते समय लक्षेश्वर के चेहरे मोहरे में आकर्षक परिवर्तन आ गया। उसने ब्राह्मणों वाली लंबी चोटी कटाकर केशों को छोटा करा लिया, धोती को दो बार लपेट कर पहनना छोड़ दिया और बंगालियों की तरह ढीले ढाले रूप में धोती पहनकर छोर को हाथ में लेकर अथवा कमीज की जेब में खोंसकर घूमना शुरू किया। इससे लक्षेश्वर देखने में एक भद्र व्यक्ति की तरह लगने लगा। बी.ए. में दाखिला लेने के साथ-साथ वह दूसरे मेस में जाकर रहने लगा। इस मेस के सभी छात्र असमिया थे। इसलिए वह ओड़िया रसोइया से अपनी इच्छानुसार खट्टा, तीता और स्वादिष्ट भोजन बनवाकर खा सकता था। इसके अतिरिक्त वह चौबीसों घंटे असमिया भाषा में बातचीत कर सकता था और रसोइये के लड़के के साथ अशुद्ध बंगला में बोलकर हंसी मजाक भी कर सकता था। इस प्रकार इस मेस के लोगों ने एक लघु असम की संरचना कर ली थी। कालेज के समय बस और ट्राम में इधर उधर जाने के समय और बाजार हाट करने के समय को छोड़कर बाकी समय असमिया छात्र बंगालियों के साथ विशेष संपर्क न रखते हुए कलकत्ता में अपने दिन व्यतीत कर रहे थे।

असम के विभिन्न जिलों से इस मेस में आए हुए छात्र एक दूसरे को ढेकेरी, नलवरिया, नगउवा, गांवलिया आदि कहकर हंसी मजाक करते हुए एक साथ रहते थे और निजी-निजी जाति, मुहल्लों, गांवों और जिले के परिचय को अक्षुण्ण रख सकते थे। इसीलिए असम से गए सभी नए छात्र इसी मेस में रहना चाहते थे और पुराने छात्र भी अन्य मेसों को छोड़कर इसी मेस में आश्रय लेना चाहते थे। इस मेस में सिर्फ छात्रों की ही भीड़ हो यह बात नहीं थी, विभिन्न समयों पर असम से कलकत्ता घूमने के लिए आने वाले लोग भी इस मेस में आतिथ्य ग्रहण किया करते थे। किसी छात्र के दूर के संपर्क का भी कोई व्यक्ति वहां आ जाता तो वह उसे अतिथि की तरह रखकर कलकत्ता की सैर कराना अपना कर्त्तव्य समझता था। इन मेहमानों की उपस्थिति के कारण मेस का परिवेश घरेलू हो जाता था। असम के विभिन्न स्थानों के संबंध में मिल बैठकर गपशप होती और विचारों का आदान-प्रदान किया जाता।

इसीलिए लक्षेश्वर इस मेस में आ गया। यहां उसके अस्तित्व के विच्छिन्न होने की संभावना कम थी। पिछले मेस में बंगाली लड़कों की बातचीत सुनकर उसके मन में कभी कभी हीन भावना आ जाती थी। जिन कुलीन मेधावी छात्रों को लक्षेश्वर अपने समकक्ष समझता था, उनकी बातें भी उसकी बुद्धि के परे थीं। एक दिन मेस के दो बंगाली छात्रों में श्री चैतन्य को लेकर तर्क शुरू हुआ। उनमें से एक था चैतन्य देव का परम भक्त और दूसरा था देवी भक्त शाक्त। चैतन्य के भक्त ने प्रमाणित करना चाहा कि चैतन्य देव, नित्यानंद और अद्वैत श्री कृष्ण के ही अवतार थे, दूसरे ने तर्क दिया कि श्री चैतन्य देव श्री कृष्ण के केवल भक्त थे। भक्त कभी भगवान नहीं हो सकता। पहले ने चैतन्य के

गीतों को गा गाकर समझाया कि जो व्यक्ति भगवान में पूर्णतया विलीन हो जाता है, वह भगवान का अंग बन जाता है। इसलिए चैतन्य प्रभु भगवान हैं। इस प्रकार बहुत देर तक तर्क-वितर्क चलता रहा। मेस के अन्य छात्रों ने भी इसमें भाग लिया और दोनों पक्षों के समर्थन में युक्तियां दीं। कई असमिया लड़कों को चुपचाप देखकर एक व्यक्ति ने लक्षेश्वर को लक्ष्य करके कहा, "कटकी! तुम्हारी तरफ वैष्णव-धर्म के प्रचारक गुरु कौन थे?"

लक्षेश्वर कुछ क्षणों तक स्तब्ध रह गया। फिर गंभीरता पूर्वक बोला, "श्रीमंत शंकरदेव नाम के गुरु ने असम में वैष्णव-धर्म का प्रचार किया था।"

"बतलाओ तो, हमारे चैतन्य देव के मत के साथ उनके मत की कहां समानताएं थीं?"

इस बार लक्षेश्वर बहुत पशोपेश में पड़ गया। उसने शंकरदेव का मात्र नाम सुना था। न तो उसने उनके द्वारा रचित कोई ग्रंथ पढ़ा था और न कभी उनके जीवन-चरित्र के संबंध में जानने की चेष्टा की थी। उसने गुणाभिरराम बरुआ के मुख से ही दो चार बातें सुनी थीं। किंतु इस विषय पर गंभीरता से कभी कुछ विचार नहीं किया था। तथापि बंगाली लड़कों के सामने वह अपनी अज्ञानता प्रकट करना नहीं चाहता था, इसलिए उसने इधर-उधर देखकर हंसते हुए कहा, "दोनों ने एक ही बात कही थी। भाषा में थोड़ा अंतर है।" "इसका अर्थ कि क्या शंकरदेव ने भी राधा के प्रेम के माध्यम से कृष्ण को पाने की बात कही थी?" एक लड़के ने पूछा

"ऊं, इस विषय पर उनके द्वारा रचित अनेक वरगीत हैं।" लक्षेश्वर को आशा थी कि कमरे में बैठे हुए दूसरे असमिया लड़के भी इस विषय में उसके समान अनभिज्ञ थे। इसलिए उसकी सभी बातों का कोई प्रतिवाद नहीं करेगा किंतु लक्षेश्वर का भाग्य खराब था। उस दिन वहां एक कोने में धर्मकांत बरुआ नामक शिवसागर का एक लड़का बैठा हुआ था। साधारणतः वह कम बोलता था किंतु सच बात कहने में चूकता भी नहीं था। शंकरदेव के संबंध में लक्षेश्वर का वक्तव्य समाप्त होते ही धर्मकांत ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "कटकी ! लगता है तुमने शंकरदेव के संबंध में कुछ नहीं पढ़ा है। अन्यथा ऐसी बात नहीं कहते। मैं जितना जानता हूं उससे यह स्पष्ट है कि शंकरदेव ने चैतन्य देव के समान शृंगार रस को कहीं पर भी प्रधानता नहीं दी है। उन्होंने भक्त को दास का भी दास माना है, परम भक्त को 'मुक्तिनिस्पृह' कहा है। न जानते, समझते हुए किसी महापुरुष के बारे में ऐसी बातें करना, आपके लिए उचित नहीं है।"

लक्षेश्वर चक्कर में पड़ गया था फिर भी बात को हल्का करने के लिए वह धीरे से बोला, "अरे छोड़िए बरुआ ! शंकरदेव के संबंध में आप भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानता। इसलिए किसका कथन सही है और किसका गलत, इसका निर्णय कौन करेगा?"

इस बार धर्मकांत ने क्रोधित स्वर में कहा, "कटकी ! अपनी भाषा, साहित्य और धर्म के विषय में कुछ न जानना गौरव की बात नहीं है। हम सबके लिए यह बड़ी लज्जा की

बात है कि हम शंकरदेव के संबंध में कुछ नहीं जानते। असमिया साहित्य के अतीत के बारे में कुछ नहीं जानते और यहां अंग्रेजी साहित्य पढ़ने के लिए आए हैं।" धर्मकांत की बातों का प्रतिवाद करने का साहस किसी को नहीं हुआ क्योंकि धर्मकांत बरुआ भिन्न प्रकार का व्यक्ति था। गुस्सा आने पर उसे कोई नहीं रोक सकता था, इसलिए लक्षेश्वर चुप रहा। किंतु, उसी दिन उसने ठीक कर लिया कि यहां, इस तरह का अपमान सहन करके रहने की अपेक्षा किसी दूसरे असमिया मेस में चला जाना ठीक होगा।

धर्मकांत बंगाली लड़कों के मेस में ही रहता रहा। किंतु, इस दिन की बातचीत से उसके मन पर इतना गहरा आघात लगा था कि वह दो दिनों के बाद ही इस विषय पर बातचीत करने के लिए असमिया लड़कों के मेस में चला गया। सभी के सामने उसने अपने मन का दुःख व्यक्त करते हुए कहा—हम असमिया युवक अपनी साहित्य संस्कृति के बारे में कुछ नहीं जानते। यह क्या कम लज्जा की बात है? स्वयं को न जानने वाला व्यक्ति, दूसरों की बात को कैसे समझेगा? वृक्षहीन प्रदेश में एरंड पादप की भांति हम अपने को बड़ा मान बैठे हैं। हम दूसरों के साथ वार्तालाप तक करना नहीं चाहते। क्योंकि इससे अपनी अज्ञानता प्रकट हो जाएगी। हम अपने बंगाली सहपाठियों को देखें, ये लोग अपने देश की भाषा और संस्कृति को लेकर कितने गौरव का अनुभव करते हैं,कितनी आलोचना विलोचना करते हैं। हम लोग ही अपनों के संबंध में बात-विचार नहीं करते। असम के चाय बागानों में काम करने वाले कुलियों के ऊपर कितना अत्याचार होता है, इसकी खबर हम लोगों को बंगाली समाचार पत्रों के माध्यम से ही लगती है। असम के शंकरदेव कौन थे, यह बात भी हम बंगला पुस्तकों में पढ़कर ही जानने की अपेक्षा रखते हैं।

धर्मकांत की उत्तेजना से कही बातों को सुनकर यद्यपि पहले दो एक लड़कों ने परिहास करने की चेष्टा की पर, अधिकांश लड़कों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। एक ने चिंतित भाव से कहा, "शंकरदेव के संबंध में जानने के लिए हमें सत्र में जाकर चरित्र-ग्रंथ को प्राप्त करना होगा। सरल असमिया भाषा में उनकी एक भी जीवनी उपलब्ध नहीं है।"

धर्मकांत ने जोर देकर कहा "हमीं लोगों को लिखने का दायित्व लेना होगा।"

"हमारे पास समय कहां है? अंग्रेजी साहित्य के बायरन, शैली की जीवनी पढ़ते पढ़ते ही हमारा सारा समय बीत जाता है। अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद हमें कुछ करना होगा।"

धर्मकांत अधीर हो गया। असमिया लड़कों की यही आदत बहुत बुरी है कि सभी काम भविष्य के लिए टाल देते हैं।

"नहीं-नहीं, दूसरों पर छोड़ देने से काम नहीं होगा। हममें से प्रत्येक को एक एक काम का दायित्व लेकर काम में जुट जाना चाहिए। असमिया साहित्य का एक इतिहास लिखना होगा। असमिया के प्राचीन लेखकों की एक तालिका बनानी होगी। महापुरुषों का जीवन

चरित्र लिखना होगा। असम की जनता की समस्याओं को लिखने के लिए एक समाचार पत्र की आवश्यकता है।" धर्मकांत की एक सांस में कही गई बातें समाप्त भी न हुई थीं कि दूसरे लड़के ने परिहास करते हुए कहा, "बरुआ, क्या आप एक साथ ही सारे काम संपन्न करना चाहते हैं? इतने सारे कामों को संपन्न करने में एक युग लग जाएगा। धीरे धीरे काम होता रहेगा।"

मुझे ये धीरे-धीरे करने की बात बहुत बुरी लगती है, जानते हो। इस प्रवृत्ति ने हमारी जाति को आलसी बना दिया है। जो काम करना है एक रात के भीतर ही होना चाहिए, न होने पर कभी नहीं हो पाता।" धर्मकांत ने निष्कर्ष रूप में कहा।"

"देखो, तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसा कि लाचित बरफूकन ने अपने मामा से कहा था लेकिन काम पूरा न होने पर कितने मामाओं को काटा जाएगा। जोरहाट के नकुल गोस्वामी ने धर्मकांत के भाव को अच्छी तरह न समझ पाने के कारण हंसी उड़ाने की चेष्टा की। किंतु धर्मकांत तत्क्षण क्रोध से आग बबूला हो गया।

"आवश्यक होने पर सभी मामाओं को काटना पड़ेगा" कहकर धर्मकांत धम-धम करते हुए कमरे से बाहर निकल गया। बाद में दो छात्र उसके पीछे-पीछे दौड़कर गए और उसे समझा बुझाकर चाय-पान के लिए वापस ले आए। उसी दिन से असमिया लड़कों में धर्मकांत के लिए चिढ़ाने का एक गुप्त नाम प्रचलित हो गया 'लाचित'।

धर्मकांत थोड़ा अलग तरह का लड़का था। असमिया लड़कों में कोई भी उसका अंतरंग बंधु नहीं था। वह प्रायः अकेले ही कलकत्ता की सड़कों और गलियों में घूमता रहता था। वह कहां जाता है, कोई ठीक-ठीक नहीं जानता था। वह अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त ढेर सारी बाहरी पुस्तकें लाकर चुपचाप पढ़ता रहता था। वार्तालाप में भी दाल-भात खाने जैसे गौण विषयों पर चर्चा नहीं करता था, वरन् देश-जाति, इतिहास आदि की बातें करते समय उत्तेजित होकर बड़ी-बड़ी वक्तृता झाड़ सकता था। उसे यदि यह भान हो जाता कि श्रोता उसकी बातों को महत्त्व नहीं दे रहा है तो वह नाराज होकर वहां से चला जाता था। किंतु, बंगाली छात्रों में उसका यथेष्ट आदर सम्मान था। उसकी अनुपस्थिति में उनका अड्डा नहीं जम पाता था। जब कभी मेस में किसी विषय पर गरमागरम बहस शुरू होती तो उसे बुला लिया जाता था, ताकि वह तद्विषयक युक्तियों को उत्थापित कर सके। तर्क में धर्मकांत की पूर्ण आस्था थी। यदि कोई उसके युक्ति पूर्ण वक्तव्य का खंडन करता तो उसे कतई बुरा नहीं लगता था किंतु किसी गंभीर विषय को हल्का रूप देकर, हंसी में उड़ा देने पर उसे बहुत क्रोध आता था।

धर्मकांत एक मेधावी छात्र था। अब वह प्रेसीडेन्सी कालेज में बी.ए. कक्षा के अंतिम वर्ष में गया था। शिक्षकों और सहपाठियों को आशा थी कि वह सम्मान के साथ बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करेगा। अपने घर की बात वह बहुत कम करता था। उसके सहपाठी केवल

इतना जानते थे कि वह शिवसागर की तरफ का रहने वाला है। बचपन से ही पिता के स्वर्गवासी हो जाने के कारण वह चाय बगान में कार्यरत अपने मामा के घर पर रहकर बड़ा हुआ था। उसके पिता लोकनाथ बरुआ पियली बरुआ के अंतरंग मित्र थे और मनिराम पियली के मुकदमे के समय राजद्रोह के अभियोग में उन्हें आजीवन कारावास का दंड देकर कालापानी भेज दिया गया था; यह बात किसी लड़के को ज्ञात न थी। कालापानी में दो वर्ष कारावास काटने के बाद लोकनाथ बरुआ बीमार होकर चल बसे। अंग्रेजों के प्रभुत्व से असम देश का उद्धार करके स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को राजपाट देने की प्रबल आकांक्षा से जब लोकनाथ बरुआ तथा अन्य अनेक संभ्रांत कुलीन व्यक्तियों ने गुप्त रूप से कार्य किया, तब धर्मकांत बरुआ का जन्म भी नहीं हुआ था। इन सभी स्वाधीनता संग्रामियों को 'फांसी' और कारादंड दिए जाने के छः महीने बाद अपने मामा के घर में धर्मकांत का जन्म हुआ। उसके मामा अंग्रेज मालिक के चाय बगान में बड़े किरानी थे। बहनोई के राजद्रोह के कारण चाय बगान के साहब की कोपदृष्टि उन पर न पड़ जाए इस भय से मामा घर में लोकनाथ बरुआ का नाम भी किसी को लेने नहीं देते थे। धर्मकांत बचपन से बस यही देखता आया था कि पिता के बारे में पूछने पर मां की आंखों से आंसू बहने लगते थे। समझने लायक अवस्था होने पर ही एक दिन मां ने उसे पास में बैठाकर पिता के जीवन का सारा वृत्तांत सुनाया था। उस दिन मां के मनोभाव को देखकर वह अवाक् रह गया था। पिता के जीवन की वीरतापूर्ण कहानी कहते समय मां के मुख पर और नेत्रों में गौरव के भाव प्रस्फुटित हो रहे थे। उन्होंने कहा था, "मेरे भाई ने हमें आश्रय दिया है। तुम्हें पढ़ा लिखाकर आदमी बनाया है। उनके ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। उनकी नौकरी में संकट उपस्थित न हो, यही सोचकर मैं अभी तक चुप रही हूं। अन्यथा, मैं तुम्हारे पिता के समान वीर पुरुष की कहानी तुमसे नहीं छुपाती। उन्होंने चोरी डकैती करके जेल जाकर और दारुण दुःख भोगकर अपने प्राण नहीं दिए हैं अपितु स्वेदश के लिए ही अपने प्राण निछावर किए हैं तुम भी उनकी तरह ही स्वाधीनता प्रेमी बनो, यही मेरी कामना है। पिता के परम शत्रु अंग्रेज सरकार की गुलामी नहीं करनी है।"

मां की बातें सुनकर किशोर धर्मकांत के मन में नाना प्रकार की चिंताएं उद्वेलित होने लगीं। वह पितृ हत्या का प्रतिशोध लेने की कल्पना करने लगा। किंतु पिता को कारादंड देने वाला अंग्रेज साहब अब कहां होगा, इसकी स्पष्ट धारणा उसे न थी। कभी-कभी वह सोचता कि साथ के लड़कों को एकत्रित कर वह एक सेना तैयार करेगा और अंग्रेजों को युद्ध में परास्त करके उन्हें देश से बाहर कर देगा। इन्हीं सब विचारों के कारण उसकी प्रकृति भावुक हो गई थी। निरंतर उद्वेलित अपने भावनात्मक द्वंद्व को वह किसी दूसरे के सम्मुख प्रकाशित नहीं कर पाया।

धर्मकांत को कलकत्ता में पढ़ने के लिए भेजने का मूल कारण था उसकी मां का प्रबल

आग्रह। पिता के समय की जो थोड़ी-बहुत संपत्ति सरकार के हाथों में नहीं पड़ पाई थी, उसे बेचकर ही मां ने धर्मकांत को कलकत्ता भेजने का खर्च निकाला था। शिवसागर के हाईस्कूल में पढ़ते समय तृतीय शिक्षक गोपालचन्द्र घोष धर्मकांत को बहुत प्यार करते थे। उन्हीं से उसने राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि महापुरुषों की कहानियां सुनी थीं। गोपाल बाबू हमेशा कहा करते थे कि यदि हम कुसंस्कारों और अंधविश्वास के दास न होते तो अंग्रेज हमें परतंत्र बनाकर नहीं रख सकते थे। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा द्वारा यहां के लोगों का मन विकसित होने पर ही वे अंग्रेजी शासन के विरोध में अपना मस्तक ऊंचा कर सकेंगे। अतः कुसंस्कारों के विनाश के लिए जन-जागरण पैदा करने पर ही हमारी जाति शक्तिशाली बन सकेगी।

गोपाल बाबू से ही धर्मकांत ने ब्राह्म समाज की मूल बातें सीखी थी। उस समय शिवसागर में नए ब्राह्म धर्म स्वीकार करने वाले कई बंगाली शिक्षक थे। ये लोग एक साथ धर्म-चर्चा और उपासना आदि में भाग लेते थे। धर्मकांत भी गोपाल बाबू के साथ इस तरह की दो एक सभाओं में गया था। किंतु ब्राह्मधर्म उसे आकृष्ट नहीं कर सका था। उस अल्पायु में भी किसी तरह की संकीर्ण मनोवृत्ति उसे असह्य थी। परनिंदा दोषारोपण, चुगली, जात-पात और छूआछूत के भेदभाव आदि ने मानो उसके श्वास की गति को अवरुद्ध कर दिया था। ब्राह्म धर्म के उदार मनोभावों के बीच भी धर्मकांत को संकीर्णता दिखाई दी थी क्योंकि वे लोग समझते थे कि उनके अतिरिक्त संसार में अन्य किसी ने शुद्ध पथ का अनुसरण नहीं किया।

कलकत्ता में धर्मकांत के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आया। इतने दिनों तक धीमे-धीमे सुलगने वाली प्रतिशोध की चिनगारियां अब धधकती अग्नि में परिणत हो गई थीं। उसे अनुभव हुआ कि सौ वर्षों तक शासन करके अंग्रेजों ने केवल उसके समान एक दो युवकों को ही निराश्रित करके नहीं छोड़ा है, अपितु चाय बगान के हजारों श्रमिकों, कपड़ा बुनकरों और नील खेती करने वाले खेतिहरों का भी सर्वनाश किया है। इसी कारण उसके पिता एक महान् उद्देश्य से अनुप्रेरित होकर प्राणोत्सर्ग करने के लिए अग्रसर हुए थे। किंतु, ये बेचारे गरीब श्रमिक अकारण ही अनाहार और अत्याचार के शिकार होकर तिल-तिलकर अपनी बलि देते रहते हैं, और इन्हीं के खून-पसीने के बल पर अंग्रेज व्यापारी लाखों-लाख रुपए उपार्जन करते हैं। धर्मकांत को इन सब बातों का रहस्य 'भारत श्रमजीवी' नाम के बंगला समाचार पत्र के माध्यम से मालूम हुआ था। पत्र की ओजस्वी भाषा और श्रमिक जीवन के विषय में प्रकाशित हृदय-विदारक विवरणों को पढ़कर धर्मकांत अभिभूत हो गया था। पत्र के संपादक शशिपद बनर्जी से मिलने के लिए वह उत्कंठित हो उठा और बहुत खोज करने के बाद उनका पता जानकर वह एक दिन अकेले उनसे मिला। बनर्जी के व्यक्तित्व और आदर्शों ने उसको अत्यंत प्रभावित किया। वे ब्राह्मसमाज के अंतर्भुक्त न होकर भी

अकेले ही सामाजिक क्रांति के आवाहन में प्राण-प्रण से संलग्न थे। कलकत्ता के बड़े नगर में उन्होंने अपनी पत्नी की मदद से विधवा स्त्रियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की थी और स्वयं समाज की घोर आपत्तियों और विरोध के बावजूद अग्रणी होकर कई विधवा बालिकाओं का विवाह भी संपन्न कराया था। कलकत्ता में रहने वाले गरीब श्रमिकों की शिक्षा के लिए उन्होंने एक रात्रि-पाठशाला खोली और एक श्रमिक क्लब भी बनाया था। इसके अतिरिक्त वे अपने संपादन से 'भारत श्रमजीवी' पत्रिका भी नियमित रूप से प्रकाशित करते थे। उनके आत्म त्याग, निःस्वार्थ मानव-प्रेम, और कार्य-क्षमता को देखकर धर्मकांत का मस्तक उनके प्रति श्रद्धा से नत हो गया था। बनर्जी बाबू के पत्र के लिए समाचार-संग्रह करने के काम में धर्मकान्त सहायता देने लगा। छुट्टियों में घर जाने पर वह चाय बागान के श्रमिकों के दुःख और दुर्दशा के समाचार एकत्रित कर 'भारत श्रमजीवी' पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा करता था। उसकी इन सब गतिविधियों का पर्िचय उसके साथी असमिया छात्रों को नहीं था।

## 5

उस दिन धर्मकांत के लक्षेश्वर के मेस में जाकर असमिया लड़कों की अज्ञानता के विषय में कहा सुनी करने के बाद एक दो युवकों के मन में सद्विचार जाग्रत हुए कि बीच-बीच में आलोचना सभा आयोजित की जाए। कुछ वर्ष पहले भी माणिकचन्द्र बरुआ, गंगा गोविंद फूकन, जगन्नाथ बरुआ आदि कलकत्ता में पढ़ने के लिए गए छात्र मिलकर साहित्य-सभा किया करते थे। प्रमुख भाग लेने वाले कुछ छात्रों के चले जाने के बाद इस सभा की अकाल मृत्यु हो गई किंतु, इस सभा के बंद होने पर भी मेस के छात्रों ने पारस्पारिक सहयोग से अब फिर से आलोचना सभा के आरंभ करने का निश्चय किया। शुरू में छात्रो का एक दल कतराकर निकल जाना चाहता था किंतु, जब उन्हें मालूम हुआ कि असम के एक दो गणमान्य व्यक्ति को आलोचना सभा में आमंत्रित किया जा सकता है, तो उनके विचार बदल गए। कारण कि अधिकांश छात्र भविष्य में सुविधा पाने के उद्देश्य से असम के उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारियों के साथ परिचय स्थापित करना चाहते थे।

कुछ दिन विचार करने के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि असम के छोटे लाट गुणाभिराम बरुआ कार्यवश प्रायः कलकत्ता आते हैं। अतः सभा का उद्घाटन करने के लिए उन्हें निमंत्रण देना चाहिए। लक्षेश्वर के साथ उनका अच्छा परिचय होने के कारण उसे बरुआ को निमंत्रित करने का भार सौंपा गया। सौभाग्य से उन दिनों गुणाभिराम बरुआ कलकत्ता में ही थे। लक्षेश्वर के साथ मेस के दो और युवक आनंद मोहन बसु के निवास पर गए, जहां गुणाभिराम बरुआ रहते थे। बसु के निवास का विशालद्वार, विलायती रंग ढंग, बात व्यवहार आदि

को देखकर छात्रों को पहले थोड़ा विस्मय हुआ। किंतु, घर के सभी लोगों के सद्व्यवहार से आश्वस्त हो गए। बरुआ, महाशय के साथ बातचीत करने के बाद सभा के लिए, दिन और समय निश्चित किया गया। बरुआ के आग्रह और उत्साह की कोई सीमा न थी। कलकत्ता में रहकर भी लक्षेश्वर को असमिया भाषा और साहित्य चर्चा के प्रति इतना उत्साह है, यह जानकर उन्हें बड़ी खुशी हुई।

उस दिन स्वर्ण भी बेथुन बोर्डिंग से घर पर आई हुई थी। उसने भी कई छात्रों के साथ बैठकर सभा के विषय में चर्चा की और अपने परामर्श भी दिए। लक्षेश्वर के साथ गए दुर्गेश्वर गोहांइ और नवीन शाइकिया नाम के दोनों छात्र स्वर्ण के रूप-लावण्य और व्यवहार पर मुग्ध थे। उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी कि असमिया कन्याएं शिक्षा-दीक्षा के क्षेत्र में इतनी प्रगतिशील हैं। उन्होंने सुन रखा था कि शिक्षा प्राप्त कर लड़कियां कुमार्गगामी हो जाती हैं, युवकों के साथ बैठकर हंसी-मजाक करती हैं, गुरुजनों के प्रति उनके मन में श्रद्धा व भक्ति नहीं रहती और वे सब तरह से निर्लज्ज और असत् स्वभाव वाली हो जाती हैं किंतु स्वर्ण में उन्हें उपर्युक्त कोई भी दोष दिखाई नहीं दिया। स्वर्ण का नम्र और भद्र व्यवहार, उसके वार्तालाप का सुरुचि पूर्ण ढंग और पढ़ने लिखने के प्रति उसका प्रबल उत्साह देखकर उन्होंने हृदयंगम किया कि शिक्षा का प्रकाश पाकर नारी-सुलभ गुणों का और भी अधिक विकास होता है।

उस दिन वहां से मेस तक वापस आते समय दुर्गेश्वर और नवीन शाइकिया घूम फिर कर बार-बार स्वर्णलता की बात छेड़कर लक्षेश्वर से उसके बारे में अधिक जानने की चेष्टा करते रहे। लक्षेश्वर ने भी उनके मन की दशा का अनुमान कर अन्य दिनों की तरह अपना महत्त्व जतलाने की चेष्टा की। लड़कों के मन में ईर्ष्या जाग्रत करने के उद्देश्य से लक्षेश्वर ने उनसे कहा, "मेरे साथ स्वर्ण का विवाह करने के लिए हाकिम महोदय प्रयास कर रहे हैं। एक ब्राह्म लड़की से विवाह करके मैं समाज बहिष्कृत तो नहीं हो सकता न। फिर हाकिम ने विधवा विवाह भी किया है पर, कोई कुलीन लड़का ऐसे घर की लड़की के साथ विवाह नहीं करेगा। यह उन्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

लक्षेश्वर के निर्मम मंतव्य को सुनकर दोनों लड़कों में ईर्ष्या भाव तो पैदा नहीं हुआ किंतु, स्वर्ण के प्रति अनुकंपा की भावना से अवश्य उनका हृदय ओतप्रोत हो गया।

"अरे, हमारा समाज बहुत पिछड़ा हुआ है। नहीं तो, क्या ऐसी सुलक्षणा लड़की के लिए वर का अभाव हो सकता है?"

लक्षेश्वर ने ठट्ठा करते हुए कहा, "आपमें यदि साहस है तो हाथ बढ़ाकर देख सकते हैं। समाज के द्वारा अलग कर दिए जाने पर भी चारों तरफ से लाभ ही लाभ होगा।"

लक्षेश्वर के इस थोथे विचार से विरक्त होकर दुर्गेश्वर ने उत्तर दिया, 'कटकी ! आप अगर ब्राह्म होने और विधवा-विवाह करने के कारण गुणाभिराम बरुआ से इंतनी घृणा करते

हैं तो ऊपर से दिखाने के लिए उनसे बंधुत्व क्यों जताते फिरते हैं? उनके सामने समाज-सुधार की चर्चा क्यों करते हैं? क्या उनके द्वारा प्रतिमास भेजे गए रुपए को पाने के लाभ से? हाकिम महोदय के मन में आपके बारे में यदि कोई झूठी आशा पनप रही है तो आप उनसे स्पष्ट क्यों नहीं कह देते कि आप अपने माता-पिता की पसंद से किसी नौ वर्षीया अबोध बालिका से विवाह करेंगे।"

दुर्गेश्वर के नेत्रों के सम्मुख शायद स्वर्णलता की मुखछवि भासित हो जाने के कारण ही उसने अपने चुप्पी स्वभाव को परित्याग कर लक्षेश्वर पर सीधा आक्रमण करते हुए अपनी बात कही थी। लक्षेश्वर को भी उस युवक का ताव देखकर चुप रह जाना पड़ा। काम का बहाना बनाकर वह वहां से फूट लिया।

बुधवार को निर्दिष्ट समय पर मेस के असमिया छात्रों की आलोचना-सभा आरंभ हुई। गुणाभिराम बरुआ ने सभा का उद्घाटन करते हुए अत्यंत मधुर भाषा में असम की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दिया। उनका वक्तव्य सुनकर सभी छात्र मुग्ध हो गए। उसके बाद छात्रों की वक्तृता शुरू हुई। कुछ एक ने पुराने 'अरुणोदय' पत्र से उद्धृत प्रबंध और कुछ ने अंग्रेजी अथवा बंगाली भाषा की रचनाओं का अनुवाद थोड़ा अदल बदल कर सुनाया। अंत में धर्मकांत दो शब्द कहने के लिए उठा। उसने किसी रचना का पाठ तो नहीं किया किंतु अपने मन की सारी बातें निःसंकोच कह दीं। सर्वप्रथम उसने असम में साहित्य-चर्चा के अभाव के विषय में कहा—असमिया साहित्य की एक भी इतिहास-पुस्तिका नहीं है और शब्द-कोष भी निर्भर योग्य नहीं कहा जा सकता। बंगाल में एक साथ अनेक संवाद-पत्र निकल रहे हैं। किंतु, असम में 'अरुणोदय' के बाद जो 'असम विलासिनी' पत्रिका शुरू हुई थी वह भी बंद हो गई है।

असमिया साहित्य की उन्नति के लिए असम के शिक्षित युवा वर्ग को जितना प्रयत्न करना चाहिए, उन्होंने नहीं किया। धर्मकांत ने असम की आर्थिक दुरवस्था के विषय में भी कहा। असम में चाय की खेती करके अंग्रेजों ने लाखों-लाख रुपए कमाए हैं, फिर भी, असम की जनता की कोई उन्नति नहीं हुई। चाय-बागान के कुलियों के दुःख का वर्णन भी धर्मकांत ने हृदय-विदारक भाषा में किया।

धर्मकांत की बातें गुणाभिराम बरुआ बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उस युवक का दीप्त मुख, नेत्रों की आशा ज्योति एवं स्वर में विश्वास की दृढ़ता देखकर गुणाभिराम को अपनी युवावस्था का स्मरण हो आया। एक समय उनके हृदय में भी प्रबल इच्छा थी कि संस्कारों की अग्नि प्रज्ज्वलित कर उसमें समाज की आवर्जनाओं को जलाकर निःशेष कर दें। किंतु, इतने दिनों में वे कुछ नहीं कर पाए। अपने व्यक्तिगत जीवन को सामाजिक कुसंस्कारों के विरुद्ध प्रतिवाद रूप में रख देने मात्र से क्या समाज का कुछ उपकार हो सकता है? स्वयं आगे बढ़कर उन्होंने किसी सामाजिक आंदोलन को जन्म नहीं दिया। धर्मकांत के

अभियोग स्वयं उन्हें अपने विवेक के कंठस्वर ही लगे।

सभा-विसर्जन के बाद गुणाभिराम ने धर्मकांत को बुलाकर उसका परिचय लिया। जब उन्हें यह पता लगा कि वह शिवसागर के स्वर्गीय लोकनाथ बरुआ का लड़का है तो उन्होंने सुयोग्य पिता की सुयोग्य संतान कहकर उसकी प्रशंसा की।

धर्मकांत को पहली बार अपने पिता का परिचय देने के बाद लज्जा का अनुभव नहीं हुआ। गुणाभिराम ने अंग्रेज सरकार के एक उच्च कर्मचारी होने पर भी स्व. लोकनाथ बरुआ का नाम सुनकर नाक भौं नहीं सिकोड़ा, अपितु, सबके समक्ष उनको असम की वीर संतान के रूप में स्वीकृति दी। धर्मकांत के मन में भी गुणाभिराम के प्रतिश्रद्धा बढ़ गई। उसके बाद धर्मकांत ने कई बार गुणाभिराम से मिलकर उनसे अनेक बातें कीं। गुणाभिराम ने कलकत्ता के ब्राह्म-समाज सुधारकों की बहुत सी बातों की आलोचना करते हुए दुःख से कहा कि :

"असम में भी शंकरदेव और माधवदेव के बाद कोई दूसरा समाज-सुधारक नहीं हुआ और असमिया समाज दुराचार और दुर्नीति से ग्रस्त भी है।" धर्मकांत ने बड़े आग्रह और साहस से उत्तर दिया, "आपके सिवाए अन्य कोई नेता आज असम में नहीं है। मेरे समान बहुत से युवक आपकी ही प्रतीक्षा में बैठे हैं। यदि आप एक पत्रिका प्रकाशित कर उसके द्वारा असम में नवयुग के अनुकूल विचारधारा का प्रचार करें तो समाज का बड़ा उपकार होगा।"

गुणाभिराम सिर झुकाकर मुस्कुराते हुए कुछ क्षण मौन बैठे रहे। धर्मकांत की बातों से मानो उनका खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः लौट आया। लंबी दाढ़ी पर हाथ फेरकर उन्होंने धीरे-धीरे कहना प्रारंभ किया, "मैं भी एक पत्रिका निकालने की बहुत दिनों से सोच रहा था। अब तुम्हारे कहने पर मेरा साहस और बढ़ा है। किंतु, हमारे देश की उन्नति के विषय में मुझसे पहले भी अनेक महान व्यक्तियों ने विचार किया है। आनंदराम ढेकियाल फूकन, मनिराम दीवान, इन सबके बारे में तुम जानते ही हो। इन लोगों के प्रति नतमस्तक होकर ही हमें अपने कार्य में आगे बढ़ना होगा। यह सत्य है कि असम के भीतर आधुनिक युग में कोई आंदोलन नहीं हुआ। अज्ञान ही इसका प्रधान कारण है। हम यदि जनता को विज्ञान, शिल्प और साहित्य के विषय में समुचित शिक्षा दे पाएं, तब ही हम असम के वास्तविक बंधु के रूप में अपना परिचय दे सकेंगे।"

दोनों ही, पत्रिका निकालने के विषय में बहुत सी बातें करते रहे। वार्तालाप के प्रसंग में गुणाभिराम ने धर्मकांत बरुआ से उसके भविष्य की परिकल्पना के संबंध में जानना चाहा। उस समय धर्मकांत के मन में सहस्त्रों परिकल्पनाएं एक साथ उद्‌भूत हो रही थीं। वह सुनिश्चित नहीं कर पाया था कि किस काम को पहले हाथ में लें और किसे बाद में। किंतु, उसकी इन परिकल्पनाओं में जीविकोपार्जन का विषय एकदम छूट गया था। गुणाभिराम

समाज-सेवा विषयक उसके उद्यम में बाधा देना नहीं चाहते थे, फिर भी पितृ सुलभ स्नेह से उन्होंने कहा कि यदि वह सरकारी नौकरी न करना चाहे, तो उसे अपनी आजीविका का अन्य मार्ग खोज लेना चाहिए, अन्यथा दूसरों पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति को अपने आदर्श मार्ग से च्युत हो जाने की संभावना रहती है। इसके बाद गुणाभिराम ने स्वतंत्र व्यवसाय करने की बात निकाली। असम में उनके एक दो परिचित व्यक्तियों ने चाय, लकड़ी और जहाज कंपनी आदि का व्यवसाय आरंभ किया था। यदि धर्मकांत की इच्छा हो तो वे उन लोगों में से किसी एक के साथ स्वतंत्र व्यवसाय में उसे लगाने की सुविधा करा सकते हैं।

धर्मकांत ने विशेष ऊहापोह के बिना इस प्रस्ताव को मान लिया। बी.ए. की परीक्षा के लिए अभी भी दो महीने का समय था। इसलिए इस विषय में उसने अधिक नहीं सोचा। गुणाभिराम ने असम वापस आकर धर्मकांत को पत्र लिखा कि नगांव के पास तपनजुरि नामक चाय-बगान के मालिक देवनाथ बरुआ अपने बागान में धर्मकांत को काम देना चाहते हैं। अतः बी.ए. की परीक्षा देते ही वह नगांव आ जाए। गुणाभिराम के मन में धर्मकांत को असम बुलाने के पीछे एक यह भी उद्देश्य था कि उसके समान उद्यमी युवा का सहयोग पाकर वे अपनी पत्रिका की परिकल्पना को साकार कर सकेंगे।

कलकत्ता में गुणाभिराम और धर्मकांत जब आपस में बातचीत कर रहे होते तो स्वर्ण भी बीच-बीच में उपस्थित रहती थी। पिता से धर्मकांत के परिवार के विषय में सुनने के बाद उसके मन में इस युवक के संबंध में अधिक जानने की प्रबल इच्छा होती थी किंतु धर्मकांत पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं आदर्श तत्व आदि की बातें तो बहुत करता था पर अपने विषय में कदाचित ही कभी कुछ कहता हो। स्वर्ण ने कभी-कभी अपना अभिमत प्रस्तुत करते समय लक्ष्य किया था, धर्मकांत उसकी बातों को यथेष्ट महत्त्व देता था। अन्य युवकों की तरह हर समय उसका मुख ही नहीं निहारता रहता था। इसीलिए, वह धर्मकांत को पसंद करती थी और उसका सम्मान भी करती थी। उस समय स्वर्ण शैशव और यौवन के संधिकाल में थी जब प्रत्येक संपर्क का एक युवती के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बाद के जीवन में अर्जित नवीन अनुभव उन प्रभावों पर आवरण तो डाल सकते हैं किंतु उनका सर्वथा उन्मूलन नहीं कर सकते। धर्मकांत के देश-प्रेम और आदर्श-बोध ने स्वर्ण को गंभीर रूप से अनुप्राणित किया था। उसने मन ही मन संकल्प कर लिया कि वह भी विद्यार्जन करके असमिया भाषा, साहित्य तथा समाज की उन्नति के लिए कार्य करेगी। कभी असमिया भाषा के विषय में चर्चा न करने वाली स्वर्ण ने उस दिन के बाद से अपने माता-पिता को असमिया में पत्र लिखना शुरू कर दिया। पहले उसे कुछ कठिनाई अवश्य हुई किंतु मां और पिता की अनुप्रेरणा से वह धीरे-धीरे शुद्ध असमिया लिखने लगी। छुट्टियों में घर आने पर उसने अपने पिता की आलमारी से 'अरुणादेय' की प्रतियां निकालकर पढ़ना आरंभ कर दिया।

## 6

हिंदू-पर्वों की संख्या की तुलना में ब्राह्म लोगों के पर्वों की संख्या बहुत कम है। माघ महीने की ग्यारह तारीख को माघोत्सव और भाद्रमास में केशवचन्द्र सेन का नवीन मंदिर-प्रतिष्ठा दिवस भाद्रोत्सव, ये दो ही ब्राह्म लोगों के प्रधान उत्सव थे। उनमें भी आदि ब्राह्म समाज के सदस्यों के लिए तो माघोत्सव ही एकमात्र प्रधान उत्सव था। ये दोनों उत्सव अत्यंत आडंबरहीन, गहन, गंभीर और शांत परिवेश में संपन्न होते थे। दुर्गा-पूजा, कालीपूजा आदि चमक दमक वाले बंगाली उत्सवों की तुलना में ब्राह्म अनुष्ठान स्वभावतः बहुत फीका लगता था। संभवतः ब्राह्म समाज के नेता भी इस बात को समझते थे कि हमेशा से मूर्ति-पूजा करने वाले बंगाली लोगों के लिए हठात् सभी प्रकार की चमक-दमक को तिलांजलि देकर निराकार ब्रह्म की उपासना करना बहुत कठिन होगा। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त प्रथम दल, ब्राह्मों के लिए यह संभव भले ही हुआ हो किंतु, भविष्य में ब्राह्म समाज की ओर अधिक लोगों को आकृष्ट करने के लिए अन्य किसी प्रकार के आर्कषण का समावेश करना ही होगा, नहीं तो अंत में जाकर बाग-बाजार की पूजा का ढोल-गर्जन ब्राह्म-संगीत के कोमल स्वरों को अनसुना कर दे सकता है। शायद यही सब सोच-विचार कर महर्षि देवेन्द्रनाथ प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से जोड़ासांकू के अपने विराट् वास-भवन में 'माघोत्सव' का आयोजन किया करते थे। इस उत्सव में कलकत्ता के सभी ब्राह्म परिवारों के अतिरिक्त एक-दो अन्य संभ्रांत परिवारों को भी निमंत्रित किया जाता था।

स्वर्ण के कलकत्ता में पढ़ने जाने के बाद से गुणाभिराम ने कई बार माघोत्सव के समय कलकत्ता जाने की बात सोची थी किंतु सरकारी काम की व्यस्तता में वहां जाना संभव नहीं हो पाया था। स्वर्ण के कलकत्ता जाने के तीन वर्षों के बाद गुणाभिराम माघोत्सव के शुभ अवसर पर वहां जाने की सुविधा किसी तरह निकाल पाए। महर्षि देवेन्द्रनाथ के साथ गुणाभिराम का पुराना परिचय था। स्कूल में पढ़ते समय अपने अभिभावक आनंदराम ढेकियाल फूकन के साथ वे कई बार ठाकुर परिवार के घर गए थे। कलकत्ता के रईसों में सबसे अग्रणी द्वारिकानाथ ठाकुर आनंदराम ढेकियाल के मित्र थे। इसलिए विद्यार्थी काल से ही गुणाभिराम का ठाकुर परिवार के साथ अच्छा परिचय था और उसी समय से वे ब्राह्म समाज के प्रति आकृष्ट थे।

माघोत्सव का दिन स्वर्ण को अत्यंत प्रिय था। नगांव में भी उनके लिए यह दिन संगीत, नृत्य, भावना और उपासना से परिपूर्ण एक अत्यंत पवित्र और सुंदर दिन होता था। जाड़े के दिनों में स्कूल बंद हो जाने के कारण यह उत्सव कलकत्ता में मनाने का सौभाग्य उसे अब तक नहीं मिल पाया था। किंतु चारुप्रभा, हेमप्रभा और लावण्यप्रभा के मुंह से उसने जोड़ासांकू के माघोत्सव का जैसा वर्णन सुना था, उससे उसकी यह धारणा हो गई थी कि

कलकत्ता में कोई ऐसा ब्राह्म परिवार नहीं था, जो जोड़ासांकू के माघोत्सव को देखकर मुग्ध न हो पाया हो। ठाकुर परिवार के बालक, युवा और वृद्ध सभी मिलकर छंद और लय का ऐसा मायाजाल रचते थे कि दर्शक और श्रोता अपार आनंद में विभोर हो जाते थे। प्रत्येक वर्ष कलकत्ता के विशिष्ट कलाप्रेमी जोड़ासांकू में कला और संस्कृति के संबंध में अभिनव अभिज्ञता प्राप्त करते थे और माघोत्सव के बहुत दिनों बाद तक भी कलकत्ता के भद्र समाज में जोड़ासांकू के अद्वितीय गीतों का गुंजन सुनाई पड़ता था। इसके साथ-साथ ज्ञानेन्द्रनाथ-अवनीन्द्रनाथ आदि कई अन्य नाम भी सभी के मुंह से ध्वनित होते रहते थे।

कलकत्ता जाने के बाद से ही स्वर्ण इन नामों को प्रायः सुनती आई थी। पिता के मुंह से उसने महर्षि देवेन्द्रनाथ की बात सुनी थी। किंतु बोर्डिंग में रहने के कारण वह उनसे अभी तक नहीं मिली थी। इसके अतिरिक्त जोड़ासांकू में इतने परिवार सम्मिलित रूप में रहते थे कि उनमें से अमुक कौन है इसकी पहचान करना, बड़ा कठिन था। इस बार गुणाभिराम ने स्वर्ण से वायदा किया था कि वे अपने परिचित ठाकुर परिवार के विख्यात लोगों का परिचय स्वर्ण से करा देंगे। स्वर्ण अब बड़ी भी हो गई थी। कलकत्ता के ज्ञानी-गुणी जनों के साथ उसका परिचय होना आवश्यक था। स्वर्ण को ठाकुर परिवार के एक व्यक्ति से मिलने की विशेष इच्छा भी थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र रवीन्द्रनाथ के बारे में उसने बहुत लोगों से सुना था। उनके समान कवि बंगाल में कोई दूसरा न था। उसे यह देखने की उत्सुकता थी कि कविता का रचनाकार व्यक्ति कैसा होता है?

माघोत्सव के दो दिन पूर्व ही अपने माता-पिता के साथ स्वर्ण कलकत्ता पहुंच गई। स्कूल खुलने में भी अभी दो दिन बाकी थे इसलिए वह अपने माता-पिता के साथ आनंद मोहन बसु के घर में ही रही। विष्णुप्रिया इस बार स्वर्ण के लिए एक जोड़ा नवीन सफेद पाट की बूटेदार पोशाक ले गई थी। माघोत्सव के दिन जब स्वर्ण इस पोशाक को पहन कर बाहर निकली तो घर के सभी लोगों ने उसके रूप की अत्यधिक प्रशंसा की। दो एक महिलाओं ने हंसी करते हुए कहा, "दो पंख और लगा देने पर काम पूरा हो जाएगा, अभी वह पंख कटे परी की तरह लगती है।" हेमप्रभा आदि के साथ स्वर्ण अलग घोड़ा गाड़ी में कुछ पहले ही चली गई थी। घर के बाकी सदस्य छोटे-छोटे कई दलों में गए थे। जब स्वर्ण वगैरह वहां पहुंचीं तो जोड़ासांकू की विशाल अट्टालिका की तरह के भवन के सामने उनकी घोड़ागाड़ी लग गई। गाड़ी से उतरकर आगे बढ़ते समय दरवाजे से ही भद्र पुरुष और महिलाओं की अगवानी करके भीतर ले जाने में ठाकुर परिवार के सदस्यों की कमी न थी। घर के सदस्य और अतिथि सभी की वेशभूषा में चमक दमक अधिक थी। किंतु, उनके बीच ठाकुर परिवार की महिलाएं अलग ही दिख रही थीं। उनके साड़ी पहनने, केश सज्जा के ढंग में तथा अलंकार-प्रसाधन आदि में एक कलात्मक वैशिष्ट्य झलकता था। ठाकुर परिवार की सभी युवतियां शिक्षिता थीं। स्वर्ण लोगों को लेने के लिए दो सुंदर युवतियां

आगे आई। हेमप्रभा आदि सबको पहचानती थीं। उन्होंने इंदिरा, सरला आदि के साथ स्वर्ण का परिचय कराया। उसके बाद सारी महिलाएं महर्षि देवेन्द्रनाथ को प्रणाम करने के लिए गईं।

स्वर्णलता ने इससे पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ को नहीं देखा था, उनका गंभीर, ऋषि तुल्य मुखमंडल देखकर स्वयं ही उसका मस्तक झुक गया। देवेन्द्रनाथ ने सभी को आशीर्वाद दिया और स्वर्ण को ऊपर से नीचे तक अवाक होकर देखा। किंतु, उसका परिचय पूछने के पहले ही उन्हें प्रणाम करने के लिए और दो अतिथि सामने आकर खड़े हो गए। स्वर्ण तथा अन्य महिलाओं को इसी बीच भीतर बुला लिया गया। देवेन्द्रनाथ नए अतिथियों को आशीर्वाद देते हुए भी स्वर्ण के जाने की दिशा में देखते हुए विचारों में खो गए। उनके पास में खड़े एक भद्रबंधु ने इस बात को लक्ष्य करके कहा, "लड़की का चेहरा साक्षात् सरस्वती की तरह है"।

"आज रवि इस सरस्वती के लिए बिल्कुल उपयुक्त होता, ठीक है न? यह किसकी कन्या है?" भद्र पुरुष ने गर्दन टेढ़ी करते हुए कहा, "मैं कह नहीं सकता, पहले मैंने इसे कभी नहीं देखा है। किंतु, पता करने पर इसके बारे में मालूम हो जाएगा। वेषभूषा से तो असम की लगती है।"

"हमारे रवि की अवस्था भी विवाह योग्य हो गई है। उसके लिए अब एक अच्छी लड़की देखनी चाहिए।" महर्षि ने अचानक अपने मन की बात प्रकट कर दी। साथ के सज्जन ने भी उनकी बात समझकर धीरे से कहा, "मैं खबर करूंगा कि यह लड़की किसकी है?"

माघोत्सव के कार्यक्रम में सर्वप्रथम, उपासना और ब्राह्म संगीत हुए। तत्पश्चात् प्रीतिभोज का पर्व आरंभ हुआ। घर में तैयार किए गए नाना प्रकार के सुस्वादु खाद्य पदार्थ निमंत्रित अतिथियों को परोसे गए। अतिथियों के स्वागत में कोई त्रुटि न होने पाए, इसके लिए ठाकुर परिवार के सभी लोग जागरूक थे। मिष्टान्न भोजन के बाद सभी सज्जित मंच के सामने रखे पंक्तिबद्ध आसनों पर जाकर बैठ गए। प्रतिवर्ष माघोत्सव के अवसर पर यहां गीत-गान का आकर्षक अनुष्ठान आयोजित किया जाता था। किंतु, इस वर्ष का विशेष आकर्षण महर्षि के विदेश से लौटे छोटे पुत्र रवीन्द्रनाथ की निजी रचना 'बाल्मीकि प्रतिभा' नाटक का अभिनय था। नाटक के विषय में हेमप्रभा आदि ने कुछ-कुछ जानकारी हासिल कर ली थी। इसलिए नाटक के आरंभ होने के पहले एक दूसरे के पास में बैठी हुई हेमप्रभा, चारुप्रभा और स्वर्णलता के बीच धीमे स्वर में बातें होने लगीं।

"सुना है, नाटक के गान, नृत्य और अभिनय सभी की परिचालना रवीन्द्रनाथ ने की है और वे स्वयं भी इसमें अभिनय करेंगे", चारुप्रभा ने कहा।

"रवीन्द्रनाथ विलायत से क्या पास करके आए हैं?" स्वर्ण ने संक्षेप में पूछा। कोई परीक्षा नहीं दी है किंतु कविता, संगीत, नाटक इन सभी विषयों का प्रचुर ज्ञान प्राप्त करके

आए हैं", हेमप्रभा ने उत्तर दिया।

"किंतु, क्या मात्र इन सबके ज्ञान को लेकर संसार चल सकता है?" स्वर्ण ने सरल भाव से पूछा।

हेमप्रभा और चारुप्रभा ने स्वर्ण की बातों से प्रसन्न होकर हंसते-हंसते उत्तर दिया "जानती हो ! किसकी बात कर रही हो स्वर्ण ! कितने बड़े जमींदार के लड़के की? उन्हें नौकरी या कामधंधों की चिंता करने की जरूरत ही क्या है?''

स्वर्ण मानो स्वयं मूर्ख बन गई हो। वह और कुछ न कहकर मंच की तरफ देखकर नाटक के आरंभ होने की प्रतीक्षा करने लगी। इसी बीच पियानो और बेहला का मधुर संगीत होने लगा और साथ साथ 'बाल्मीकि प्रतिभा' नाटक भी प्रारंभ हो गया। प्रथम दृश्य में वनदेवियों के रूप में ठाकुर परिवार की एक दल बालिकाएं मंच पर आईं। उनकी नृत्य-भावभंगिमा और संपूर्णतया अभिनव स्वर में गाए गीतों को सुनकर दर्शकगण को अत्यंत आनंद आया। दस्यु रत्नाकर के वेश में जब रवीन्द्रनाथ ने मंच पर प्रवेश किया तो दर्शक मंडली में प्रशंसा की अनुगूंज सुनाई देने लगी। हेमप्रभा ने स्वर्ण के कान में कहा, 'ये ही रवीन्द्रनाथ हैं' स्वर्ण अवाक होकर आश्चर्य से अभिनय देखती रही। उसने जीवन में प्रथम बार इस तरह का अभिनय देखा था। निर्मम दस्युराज ने जब आवेग भरे स्वर में 'केनो प्राण कान्देरे' गान आरंभ किया तो स्वर्ण श्वास लेना तक भूल गई। एक के बाद दूसरा दृश्य आकर कैसे निकल गया, उसे पता ही नहीं चला। छठे दृश्य में सरस्वती की आराधना करते हुए वाल्मीकि ने 'एइ हेरिगो देवी आमरेई' गीत गाया तो स्वर्ण भाव-विभोर हो गई। उसके दोनों नेत्र अश्रु-विगलित हो गए। नाटक समाप्त होने पर स्वर्ण ने रुमाल से अपने आंसू पोंछे। यह देखकर चारुप्रभा ने हंसकर कहा, "लगता है, कविता के प्रेम में पड़ने लायक अवस्था अब तुम्हारी हो गई है।"

अभिनय समाप्त होने के बाद दर्शकगण उत्सुकता पूर्वक अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के अभिनंदन में कुछ देर खड़े रहे। प्रतिभा देवी के अभिनय की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। दस्युओं का अभिनय करने वाले क्षितीन्द्र, सुरेन्द्र, गगनेन्द्र, अवनीन्द्र और वनदेवी की भूमिका में अवतरित ठाकुर परिवार की सभी कन्याओं की प्रशंसा में दर्शकों ने तुमुल करतल ध्वनि की। किंतु, अंत में जब रवीन्द्रनाथ अतिथियों के बीच आए तो तालियों के शब्द से सभाकक्ष गुंजायमान हो उठा। कई विशिष्ट संगीतज्ञों ने नाटक में प्राच्य एवं पाश्चात्य सुरों के सुंदर समन्वय की चर्चा की।

रवीन्द्रनाथ के अतिरिक्त उनके गुणी ज्येष्ठ भ्राता ज्ञानेन्द्रनाथ के संबंध में प्रशंसापरक मंतव्य सुनाई दिए।

स्वर्ण ने रवीन्द्रनाथ की बातें नहीं सुनी थी। वह एक कोने में बैठी हुई केवल मुग्ध दृष्टि से कवि की ओर देखती रही। बाल्मीकि का वेश उतारकर वे धोती और जरी का

काम किया हुआ पंजाबी कुर्ता पहने हुए थे। उस समय ऊपर से उन्होंने काश्मीरी शाल ओढ़ रखा था। सभी के साथ वे सहज स्वभाव से बातचीत कर रहे थे किंतु, उन्हें देखकर स्वर्ण को ऐसा लगा मानो वे किसी दूसरे लोक के प्राणी हैं जहां केवल कविता नृत्य और संगीत का साम्राज्य है। स्वर्ण मुग्ध दृष्टि से कवि को निहारती रही। उसे यह भी भान न हुआ कि कब गुणाभिराम और विष्णुप्रिया उसके पास आ गए हैं। पिता की आवाज सुनकर वह स्तब्ध हो गई।

"चलो भाइसना ! हम भी रवीन्द्रनाथ का अभिनंदन कर आएं", ऐसा कहकर गुणाभिराम उसे भीड़ की ओर ठेलते हुए ले गए। रवीन्द्रनाथ गुणाभिराम से पहले ही मिल चुके थे। विनीत मुस्कान से उन्होंने अभिनंदन स्वीकार किया। तभी एक सज्जन ने स्वर्ण की ओर इंगित करके उत्साह पूर्वक कहा, "रवि, यह है बरुआ की कन्या, स्वर्णलता। इसे तुम्हारे पिता ने थोड़ी देर पहले साक्षात् सरस्वती कहा था। क्या ही अच्छा होता यदि इसे आज के अभिनय में बालिका-देवी के रूप में ले लिया जाता। तुम्हारा क्या विचार है?

सभी की दृष्टि उस पर पड़ने के कारण स्वर्ण ने लज्जा और संकोच से लाल होकर अपना सिर झुका लिया। कवि की गंभीर दृष्टि एक पल के लिए उसके मुखमंडल पर स्थिर हो गई। इसके बाद वे खुलकर हंसते हुए बोले, "साक्षात् सरस्वती को कोई नाटक में खोजता है क्या? न जाने कितने कवि जीवनभर उसकी खोज में भटकते रहते हैं।

''लेकिन तुम अपनी सरस्वती को खोज पाए अथवा नहीं?" एक व्यक्ति ने परिहास करते हुए पूछा।

कवि ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "अभी भी खोज रहा हूं। उसके मिल जाने पर बाल्मीकि ही न हो गया होता।" सभी ने इस परिहास में योग दिया। धीरे-धीरे उत्सव समाप्त होने लगा। गुणाभिराम और दूसरे निमंत्रित लोगों ने एक दूसरे से विदाई ली। मुख्य द्वार से स्वर्ण ने एक बार फिर पीछे मुड़कर देखा। अभी भी रवीन्द्रनाथ को एक दल आदमी घेरे हुए था। किंतु, उसे ऐसा लगा मानो वे उसी की तरफ देख रहे थे। नेत्रों से नेत्र मिलते ही क्षणभर के लिए वह वहीं स्थिर हो गई और फिर अपने माता पिता का पदानुसरण करती हुई बाहर निकल आई। वापस आते समय रास्ते में लोगों के हर्षोल्लास में वह पूर्ववत योग नहीं दे पाई। अपनी पुत्री की अन्यमनस्कता को विष्णुप्रिया ने लक्ष्य किया और साथ ही उनके मन में स्वर्ण के लिए एक नई चिंता उत्पन्न हो गई।

## 7

उस समय स्वर्ण तेरह वर्ष की थी। साधारणतः नैष्ठिक ब्राह्मण के घरों की कन्याएं इतनी अवस्था तक अविवाहित नहीं रहतीं। किंतु, ब्राह्म समाज में नए नियमानुसार कन्या चौदह

वर्ष की हो जाने पर ही उसे विवाह योग्य माना जाता था। केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्राह्म लोगों ने समाज संस्कार के लिए जो कदम उठाए महत्त्वपूर्ण थे, उनमें यह भी एक था। ब्राह्म लोगों के परामर्शानुसार ही सन् 1872 में सरकार ने जो 'नेटिव मेरिज ऐक्ट' पास किया था, उसमें कन्या की विवाह योग्य आयु चौदह वर्ष और वर की अठारह वर्ष निर्धारित की गई थी। इसलिए ब्राह्म नियमों के अनुसार संपन्न विवाह को कानूनी मान्यता देने के लिए आयु सीमा क्षेत्र में इसी साधारण नियम को मानकर चलना आवश्यक समझा गया।

गुणाभिराम बरुआ ने अपने दूसरे विवाह की रजिस्ट्री कानून के अनुसार करवाई थी और उनका विचार था कि स्वर्ण का विवाह भी उसी प्रकार संपन्न किया जाए। इसीलिए स्वर्ण के विवाह के लिए तब तक उन्होंने कोई चिंता न की थी। उसकी अवस्था चौदह वर्ष हो जाने के बाद ही ये सब बातें सोचनी होंगी। इस संबंध में गुणाभिराम और उनकी पत्नी विष्णुप्रिया एकमत थे। किंतु, इस बार माघोत्सव के बाद हठात् विष्णुप्रिया का मन बदल गया। उस दिन जोड़ासांकू में सभी लोग स्वर्ण को जिस तरह से देख रहे थे, उसे देखकर उसका पुरातन मन आशंका से कांप गया। उसके पहले पति की संतान—दोनों कन्याओं का विवाह नौ-दस वर्ष की आयु में ही कर दिया गया था। तब उसने उस कार्य को अन्याय रूप में नहीं लिया था। गुणाभिराम बरुआ से प्रभावित होकर उसने अपने को आधुनिक भावधारा के अनुकूल बनाने की चेष्टा की थी और बहुत अंशों में वे अपने प्रयास में सफल भी हुई थी। फिर भी, कभी-कभी उसके पुराने विश्वास सिर उठा लेते थे। लड़कियों को खुले रूप में सबके सामने अधिक घूमना-फिरना नहीं चाहिए और पुरुष की दृष्टि लड़कियों के मन को अपवित्र बना देती हैं। इस प्रकार के विश्वासों की बात स्पष्ट रूप से अपने पति से कहने का उसे कभी साहस नहीं हुआ। कारण, वह अच्छी तरह जानती थी कि गुणाभिराम बरुआ इन सब विचारों को कभी प्रश्रय नहीं देंगे। किंतु, असम लौटने का दिन समीप आने पर विष्णुप्रिया का मन व्याकुल हो गया। वह सोचने लगी कि यदि स्वर्ण को अपने साथ वापस नहीं ले जाना है तो किसी योग्य युवक के साथ उसके विवाह का बंदोबस्त करके ही उसे कलकत्ता में छोड़ना ठीक होगा। विष्णुप्रिया की सदा से यह आशा थी कि स्वर्ण का विवाह किसी कुलीन असमिया ब्राह्मण लड़के के साथ किया जाएगा, किंतु बाद में उन्हें धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि असम का कोई नैष्ठिक ब्राह्मण परिवार उनके घर से अपना संबंध जोड़ना नहीं चाहेगा। लक्ष्मी के विवाह के दिन घटित घटना ने ही उसे इस निर्मम सत्य का परिचय दे दिया था। ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य उच्च जातियों के लोग भी विधवा विवाह का समर्थन नहीं करते। अतः उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि ब्राह्म समाज के अतिरिक्त अन्य कोई समाज उनके साथ पारिवारिक संपर्क की बात नहीं करेगा।

कलकत्ता के अग्रगण्य ब्राह्मण परिवारों की बात मन में आते ही पहले उसके मन में

जोड़ासांकू के ठाकुर परिवार की बात मन में आई। इतने उच्च कुल के सदस्य के साथ यदि स्वर्ण का विवाह हो सके तो विष्णुप्रिया अपने को धन्य समझेगी। उसके पति भी इसी तरह का कोई संबंध चाहेंगे, ऐसा उसे विश्वास था। स्वर्ण के मन की इच्छा को वह समझ गई थी। माघोत्सव के बाद से ही स्वर्ण अन्यमनस्क-सी रहती थी। अकेली बैठकर कविता पढ़ने में उसे अच्छा लगता था। बीच-बीच में 'वाल्मीकि प्रतिभा' के गीतों को गुनगुनाती हुई वह भावविभोर हो जाती थी। अंत में एक दिन विष्णुप्रिया ने यह बात गुणाभिराम के सामने व्यक्त की, "महर्षि देवेन्द्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र रवीन्द्रनाथ के साथ स्वर्ण की जोड़ी कैसी रहेगी?"

पत्नी के प्रश्न ने ही गुणाभिराम को पहले अवाक कर दिया।

"माइसना की विवाह योग्य-आयु अभी नहीं हुई है। अभी सें तुमने यह बात क्यों निकाली?"

विष्णुप्रिया ने मानो इस प्रश्न का उत्तर पहले ही सोच लिया था।

"अभी से बातचीत करके ठीक-ठाक कर लेने से हम उचित समय पर उसका विवाह संपन्न कर सकेंगे। उसकी उम्र होते-होते लड़का हाथ से निकल जाएगा।"

गुणाभिराम ने कुछ सोचकर कहा, "ठाकुर परिवार के अतिरिक्त और परिवारों में भी तो योग्य पात्र मिल सकता है। इतनी जल्दबाजी क्यों?" गुणाभिराम ने अपने मन की भावी शंका पत्नी से छुपानी चाही।

विष्णुप्रिया ने किंचित आश्चर्य से पति का मुख देखा और वह बोली, "ठाकुर परिवार के साथ आपको कुछ आपत्ति है क्या? मेरी समझ से तो यह संबंध ही माइसना के लिए सबसे अच्छा रहेगा। इसके अतिरिक्त मुझे एक दो आदमियों ने बतलाया है कि रवीन्द्रनाथ भी इस विचार से सहमत हैं।" बात कहते-कहते विष्णुप्रिया एक अल्पवयसी बालिका की भांति लाज से लाल हो गई। उसे देखकर गुणाभिराम का मन भी नरम पड़ गया। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "यदि लड़का और लड़की का मन मिल गया है, तो फिर हमें भी कोशिश करनी होगी।"

गुणाभिराम ने उसी दिन संध्या को यह बात दुर्गा मोहनदास के सामने प्रकट की। दुर्गा मोहन ने एक वाक्य में कहा, "स्वर्ण और रवीन्द्रनाथ की जोड़ी बड़ी सुंदर रहेगी। एक उत्तम ज्ञानी-गुणी लड़के के लिए स्वर्ण जैसी शिक्षिता और सुंदर पत्नी होनी चाहिए। किंतु, महर्षि देवेन्द्रनाथ को लेकर एक समस्या है। उनकी सहमति पाना इतना सहज नहीं होगा।"

"किंतु, उस दिन माघोत्सव में उन्होंने स्वर्ण के विषय में जानकारी ली थी। इसका अर्थ है कि उन्हें स्वर्ण पसंद हैं", गुणाभिराम ने निश्चिंत स्वर में कहा।

दुर्गा मोहन कुछ देर चुप रहे किंतु उनकी मुखाकृति से यह स्पष्ट था कि इस बात को लेकर उनके मन में थोड़ा विकल्प है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कुछ न कहकर केवल इतना

ही कहा, "यह काम इतना सरल नहीं है बरुआ महाशय ! फिर भी मैं लाल बिहारी घोष के माध्यम से इस विषय में पूछताछ करूंगा। ये भद्रजन विवाहों में मध्यस्थता करते थे और ठाकुरबाड़ी में भी उनका आना-जाना था।"

दो दिन बीत गए। गुणाभिराम की छुट्टी के दिनों की अवधि समाप्तप्राय थी। किंतु लाल बिहारी घोष ने आकर कोई सूचना नहीं दी। अंत में, विष्णुप्रिया की बढ़ती उत्कंठा को देखकर गुणाभिराम ने स्वयं घोषबाबू को समाचार भेजा। समाचार पाकर घोष बाबू आ गए। गुणाभिराम ने इस व्यक्ति को केवल एक बार ही देखा था। उस समय उन्हें वह विनोदी स्वभाव का लगा था किंतु, उस दिन उसका चेहरा गंभीर था। मुख पर लेशमात्र भी हास्य के चिह्न न थे। उन्होंने समझ लिया कि संवाद शुभ नहीं है। लाल बिहारी बाबू ने 'कहूं या न कहूं' वाली दुविधा में कहा, "आप लोगों के प्रस्ताव को ठाकुरबाड़ी के सभी लोगों ने बड़े आग्रह पूर्वक ग्रेंहण किया था। रवीन्द्रनाथ ने भी सम्मति दे दी थी। किंतु, बाद में न जाने क्या हुआ कि महर्षि देवेन्द्रनाथ ने अपनी स्वीकृति नहीं दी।"

लाल बिहारी बाबू ने सांत्वना के स्वर में और भी बहुत सी बातें कहीं। स्वर्ण के लिए एक अच्छे पात्र की खबर देने का दायित्व भी लिया किंतु, गुणाभिराम को और किसी बात को सुनने का धैर्य न था। स्वर्ण के प्रति एक अनजान आशंका से उनका मन कांप गया। इतने दिनों तक उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि ब्राह्म समाज के भीतर भी उनके परिवार को न अपनाने वाला कोई व्यक्ति होगा। किंतु, अब उनके मन में एक प्रबल झंझावात उठा। उन्होंने विष्णुप्रिया से तो कुछ नहीं कहा किंतु देवेन्द्रनाथ की आपत्ति का कारण जानने के लिए वे शिवनाथ शास्त्री के समीप गए। शास्त्रीजी ने सारी बातें सुनी और कुछ देर सोचने के बाद उत्तर दिया, "इसका कारण मेरी समझ में एक ही हो सकता है, देवेन्द्रनाथ ने विधवा-विवाह को हृदय से कभी स्वीकार नहीं किया है। आप तो जानते ही हैं कि वे ऊपर से उदारपंथी भले ही दिखते हों पर, हिंदू समाज की कुछ रीति-नीतियों के प्रति उनकी दुर्बलता दिनोंदिन स्पष्ट होती जा रही है। हां, ठाकुर परिवार का युवा वर्ग उनकी बातों का समर्थन न भी करे किंतु उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस जोड़ासांकू में किसी को नहीं है।"

गुणाभिराम यह सुनकर नतमस्तक हो गए। शास्त्री उन्हें अत्यधिक चिंताकुल देखकर आश्वासन देते हुए बोले, "बरुआ, आप इतनी चिंता क्यों करते हैं? पहली बात, आप ब्राह्म समाज के सदस्य होकर अभी से स्वर्ण के विवाह की बात क्यों सोचते हैं? क्या आप केशवचन्द्र सेन के साथ अपने मतभेद की बात भूल गए? देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपने पुत्र के लिए नौ दस वर्ष की कन्या लाएंगे किंतु हम प्रत्येक वर्ष बाल विवाह के विरोध में संघर्ष करके जितना आगे बढ़े हैं, यदि अब हममें से प्रत्येक अपनी-अपनी उचित भूमिका ग्रहण नहीं करेगा तो भारतवर्ष में सामाजिक क्रांति कभी नहीं हो पाएगी। स्वर्ण के लिए बहुत सुंदर वर मिलेगा।

आप अब निश्चिंत मन से अपने काम पर वापस जाइए। आपकी कन्या की चिंता करने के लिए हम भी तो हैं!"

मित्र की बातें सुनकर गुणाभिराम का मन थोड़ा हल्का हुआ। अब उन्हें विष्णुप्रिया को आश्वासन देने की शक्ति मिली। स्वर्ण की पढ़ाई-लिखाई, विवाह आदि विषयों को लेकर गुणभिराम अपनी पत्नी के समक्ष आजकल अपने को दोषी अनुभव करने लगे थे। एक समय उन्होंने ही विष्णुप्रिया से कहा था कि स्वर्ण को उच्च शिक्षा से संपन्न बनाकर वे एक नवीन आदर्श की स्थापना करेंगे। असम में एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने वाली वही प्रथम बालिका होगी। जब उनके बंधु मनमोहन घोष की बहन कादंबिनी और दुर्गा मोहनदास की पुत्री सरला, द्वारिकानाथ गांगुली के शिक्षकत्व में पढ़ लिखकर कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेन्स परीक्षा की तैयारी कर रही थीं तो गुणाभिराम का हृदय आनंद से झूम उठा था। वे कादंबिनी की तरह स्वर्ण को भी कलकत्ता विश्वविद्यालय की बी.ए. परीक्षा दिलाकर ग्रेजुएट बनाने का स्वप्न देख रहे थे। किंतु कुछ दिनों पूर्व घटित घटना ने गुणाभिराम की विचारधारा को संपूर्णतः परिवर्तित कर दिया था। साधारण ब्राह्म समाज के सभी सदस्यों की घोर आपत्ति होने पर भी द्वारिकानाथ गांगुली ने अपनी छात्रा कादंबिनी से विवाह कर लिया था। उस समय कादंबिनी मेडिकल कालेज की छात्रा थी। द्वारिकानाथ उम्र में उससे लगभग अठारह वर्ष बड़े थे। आयु के अंतर के अतिरिक्त दोनों के वैवाहिक संबंध को लेकर अन्य कोई आपत्तिजनक कारण ब्राह्म समाज के नेताओं के देखने में नहीं था। द्वारिकानाथ बंगाल में 'स्त्री-शिक्षा प्रचार' के क्षेत्र में सर्वाधिक अग्रगण्य व्यक्ति थे और कादंबिनी थी उनकी सार्थक सृष्टि। सृष्टिकर्ता और सृष्टि के बीच वैवाहिक संबंध ब्राह्म समाज के बहुत से लोगों को मान्य न हुआ। इस घटना के उपरांत गुणाभिराम के मन में भी थोड़ा झटका लगा। स्त्री-शिक्षा के विषय में अनेक बातों को लेकर मतभेद था। प्राचीन ब्राह्मों की तरह उनका भी यही विचार था कि एक सुशिक्षित आधुनिक पुरुष के उपयुक्त आदर्श जीवन-संगिनी होने के लिए एक लड़की को जितनी शिक्षा-दीक्षा आवश्यक है, उतनी ही उसके लिए पर्याप्त समझना चाहिए। पढ़लिखकर लड़कों के समान नौकरी-चाकरी करना स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। किंतु, शिवनाथ शास्त्री, मनमोहनदास आदि बंधुओं के विचारों से प्रभावित होकर उनकी व्यक्तिगत विचारधारा में परिवर्तन आ गया था। तभी स्वर्ण को ग्रेजुएट बनाने की बात भी उनके मन में आई थी किंतु कादंबिनी के विवाहोपरांत जब कई ब्राह्म समाजी लोगों ने अपनी-अपनी कन्याओं की स्कूली शिक्षा समाप्त होने के पहले ही उनका विवाह कर दिया तब गुणाभिराम को भी यह दृढ़-विश्वास हो गया कि उपयुक्त पात्र के मिलने पर स्वर्ण का विवाह कर देना ही पिता के रूप में उनका कर्त्तव्य है। लड़की अब तक जितना पढ़ गई है, उतना ही उसके लिए पर्याप्त है।

# 8

जिले भर में लक्ष्मी जब एम.ई. परीक्षा में प्रथम आई तो उसके मन में हर्ष की अपेक्षा विषाद ही अधिक हुआ। अपने स्वजनों की सहस्त्रों कटूक्तियां सुनते हुए उसने एम.ई. स्कूल में लड़कों के साथ बैठकर विद्यार्जन किया था किंतु लड़कों के हाई स्कूल में नाम लिखाने की अनुमति उसे किसी ने भी नहीं दी। नगांव में लड़कियों का हाई स्कूल कभी खुल पाएगा, ऐसा मानने का कोई कारण उसे नहीं दीखता था। जहां कुलीन परिवारों की लड़कियों को एल.पी. स्कूल में ही पढ़ने नहीं भेजा जाता, वहां यदि हाई स्कूल खुल भी जाए तो उसमें किसकी लड़कियां पढ़ने जा पाएंगी? फिर भी, अपने मन में यह सोचकर ही लक्ष्मी को अच्छा लगता था कि वह एक न एक दिन एन्ट्रेन्स परीक्षा अवश्य उत्तीर्ण करेगी। एम.ई. का परीक्षा-फल निकलने पर उसके घर पर एम.ई. स्कूल के सभी शिक्षकगण आए थे। स्कूल का नाम उज्ज्वल करने के कारण सभी ने लक्ष्मी को आशीर्वाद दिया था। मात्र अजय गांगुली मास्टर ने उससे कहा था कि एक दिन वह एन्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण कर सभी की प्रशंसा अर्जित करेगी। उस समय लक्ष्मी ने म्लान हंसी के साथ पूछा था, "यह कैसे संभव हो पाएगा सर! मेरे लिए कलकत्ता जाना संभव नहीं होगा।"

"तुम्हारी इच्छा होगी तो तुम्हारे महान उद्देश्य को सफल करने के लिए ईश्वर तुम्हारा मार्ग-दर्शन कराएंगे। प्रयास करने पर कोई काम असाध्य नहीं रह जाता लक्ष्मी !"

लक्ष्मी का मन यह पूछने का हुआ कि भगवान के मार्ग दिखाने पर क्या समाज भी उस मार्ग पर जाने की अनुमति देगा? किंतु, तत्काल इतनी बात मुंह खोलकर कहने से गांगुली सर को बुरा लगेगा, यह सोचकर वह चुप ही रही। जब सब शिक्षकों को विदा करने के लिए लक्ष्मी बाहर आई तो अजय गांगुली ने सलाह के रूप में कहा, "यदि तुम्हारे माता-पिता की अनुमति हो तो तुम मिशन स्कूल की मेमों से पूछकर देख सकती हो। नगांव में स्त्री-शिक्षा की प्रगति के लिए पादरी लोगों के समीप जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

नगांव के मिशन स्कूल में हाई-स्कूल कक्षा तक शिक्षादान की व्यवस्था नहीं है, यह बात लक्ष्मी जानती थी, इसलिए व्यर्थ में घर की अशांति न बढ़ाने के उद्देश्य से उसने अजय गांगुली द्वारा दिए गए परामर्श के विषय में कुछ चेष्टा न की। कुछ दिन घर में रहने के बाद लक्ष्मी का मन निराशा से भर गया। स्कूल में उसका आना-जाना बंद होने के साथ मानो उसके जीने का ही उद्देश्य समाप्त हो गया। बीच-बीच में चारुशीला बाइदेव* के घर जाने पर उसके मन में थोड़ा अच्छा लगता था। वे अभी भी उसे प्रोत्साहन देती रहती थीं। वे अपने पास की पुस्तकें और पत्रिकाएं उसे पढ़ने के लिए दे देती थीं। एक दिन उन्होंने कलकत्ता से लाई हुई एक नई किताब उसे पढ़ने को दी—बंकिमचन्द्र की 'कपाल कुण्डला'।

* बाइदेव—दीदी

पुस्तक देते समय उन्होंने सावधान करते हुए एक दो बातें भी उससे कहीं।

"यह पुस्तक कुछ अलग ढंग की है। तुम इसे अकेले में ही पढ़ना। घर का कोई व्यक्ति यदि देख लेगा तो उसे बुरा लग सकता है।"

लक्ष्मी यह सुनकर पहले आश्चर्य चकित हो गई। चारुशीला वाइदेव को दी हुई पुस्तक में आखिर ऐसी क्या बात होगी, जो घर के आदमी बुरा मानेंगे। पुस्तक पढ़ने के बाद धीरे-धीरे उसने समझा कि बाइदेव के कहने का तात्पर्य क्या था? वास्तव में ऐसी रोमांचकारी पुस्तक उसने पहले नहीं पढ़ी थी। कुछ ही घटनाओं को पढ़ने के बाद उसके सारे शरीर में सिहरन होने लगी। उस पुस्तक में ऐसी अद्भुत कल्पना थी कि उसने एक ही बात को बार-बार पढ़ा और अंत में कुछ पंक्तियां उसे कंठस्थ हो गईं। कपाल कुण्डला ने श्यामा सुंदरी को जो बातें कही थी, उससे बहुत दिनों तक उसके मन में उथल-पुथल होती रही 'यदि जानती कि स्त्री के विवाह का अर्थ है दासीत्व तो मैं कभी भी विवाह नहीं करती।' हठात् लक्ष्मी का मन विद्रोही हो उठा। उसका मन भी समाज द्वारा नारी-जाति के प्रति किए गए अन्याय का प्रतिकार करने के लिए मचलने लगा। स्कूल जाना बंद होने के बाद लक्ष्मी ने अनुभव किया था कि वह क्रमशः गतानुगतिक विधवा जीवन की तरफ मुड़ती जा रही है। इससे त्राण पाने का एकमात्र उपाय था घर की परिधि से बाहर कोई क्षेत्र अपना लेना। एक दिन चारुशीला बाइदेव के घर जाते समय रास्ते में उसने तारा से मिलकर अपने मन की बात कही और मिशनरी लड़कियों के स्कूल में अपने लिए एक नौकरी की व्यवस्था कर देने का अनुरोध किया।

तारा ने सभी मेमों को लक्ष्मी के दुःखमय जीवन के विषय में बतलाया और कहा कि उसमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा है। सारी बातें सुनकर मेमों के मन में लक्ष्मी के प्रति दया उमड़ आई और उन्होंने लक्ष्मी से मिलने का आग्रह प्रकट किया। अपने मन की बात न छुपाते हुए अमेरिका से हाल में ही आई हुई श्रीमती मूर ने कहा, "हमें इसी तरह की लड़की की जरूरत है। उसे अच्छी तरह समझा देने पर वह ईसा के बताए शुद्ध मार्ग पर एक न एक दिन अवश्य आ जाएगी।" मिसेज मूर ने सद्भाव से ये बात कही थी। वे अभी-अभी भारत में आई थीं और असमिया लोगों में धर्म-प्रचार करने के लिए उनमें विशेष उत्साह था। किंतु, उनकी बात से तारा का मन भर गया। लक्ष्मी की विपत्ति के समय उसे सहायता देने का जो उत्साह तारा के मन में था वह मेमों के मुख से धर्म परिवर्तन की बात सुनकर समाप्त हो गया। कुछ दिनों से तारा के मन में प्रायः ऐसे विचार आ जाते थे कि क्या मनुष्य एक दूसरे मनुष्य की सहायता निःस्वार्थ भाव से नहीं कर सकता? शिक्षा, समाज-सेवा आदि का उपयोग धर्म-प्रचार के लिए ही क्यों करना चाहिए? क्या स्पष्ट रूप से लोगों के बीच धर्म की बातें नहीं कही जा सकतीं? बालिराम में होजा, मिकिर लड़के-लड़कियों को पढ़ना-लिखना सिखाते समय तारा उन्हें मात्र मनुष्य

के रूप में देखकर प्यार करती थी। उसने शिक्षा को कभी मछली फंसाने का कांटा नहीं समझा। पादरी और मेमों के साथ इसी के कारण उसका मन नहीं मिल पाया था। वे लोग सात समुद्र पार करके, सर्वस्व त्यागकर पर्वतीय दुर्गम स्थानों में शिक्षा का प्रकाश फैलाने आए अवश्य हैं किंतु तारा की धारणा थी कि वे उस प्रकाश की प्रत्येक किरण का समुचित मूल्य वसूल करना चाहते हैं।

उस मूल्य का उद्देश्य शायद महान् ही हो किंतु मूल्य चाहने पर की गई सेवा निःस्वार्थ नहीं रह जाती। तारा का मन अस्त-व्यस्त हो गया था परंतु इन सबके संबंध में वह किसी दूसरे से बातें नहीं कर सकती थी।

तारा ने लक्ष्मी को बतला दिया कि सारी मेमें तुमसे मिलना चाहती हैं, पर अपने मन की आशंका का आभास नहीं होने दिया। एक दिन चुपचाप तारा ने लक्ष्मी को मिशन में ले जाकर सबके साथ मिला दिया। लक्ष्मी के बातचीत का ढंग और चेहरा-मोहरा देखकर सब मुग्ध हो गईं। असमिया हिंदुओं में भी ऐसी लड़की हो सकती है, इस बात पर मानो उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था। तारा की बातचीत में उन्हें विद्रोह के जो स्वर मालूम पड़े, उससे उनकी यह धारणा हो गई कि थोड़े प्रयास से ही वे उसको सुविचारित मार्ग पर ला सकेंगे। उसी दिन उन लोगों ने लक्ष्मी को मिशनरी बालिका स्कूल में दस रुपए महीने पर नौकरी दे दी। साथ ही पादरियों ने यह आश्वासन भी दिया कि उनकी देख रेख में वह वहां अपनी पढ़ाई लिखाई भी कर सकेगी और बाद में सरकारी अनुमति प्राप्त कराके उसे एन्ट्रेन्स परीक्षा में भी बैठा दिया जाएगा। लक्ष्मी को लगा मानो उसके हाथों में स्वर्ण आ गया है। बिना कुछ सोच-विचार किए उसने तत्काल उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

वापस घर जाते समय तारा ने थोड़ा चिंतित स्वर में लक्ष्मी से पूछा—'कार्य को स्वीकार करने के पहले क्या तुम्हें अपने माता-पिता से अनुमति लेना नहीं चाहिए था।'

"काम पाने के पहले ही यदि मैं उनसे पूछती तो मुझे घर में किसी की अनुमति नहीं मिलती। किंतु, अब उन्हें सब कुछ समझा देने पर शायद मेरे माता-पिता मेरी बात सुनेंगे। दस रुपए मासिक पर शिक्षिका का काम पा जाना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है।"

लक्ष्मी का अनुमान सही था। घर जाकर बात निकलते ही पहले सब लोग स्तंभित रह गए। मिशन स्कूल में शिक्षिका और दस रुपए महीना पारिश्रमिक; एक सामान्य लड़की इतने रुपए उपार्जन करेगी और वह भी अपनी शिक्षा के बल पर। किसी ने मानो ऐसी कल्पना भी न की थी। मेमों की सहकर्मी बनकर लड़कियों को पढ़ाने का काम कोई कम बात नहीं है। पंचानन शर्मा का मन भीतर ही भीतर गर्व से भर गया। बाहर से दिखाने के लिए थोड़ा हां, हूं किया जरूर लेकिन आपत्ति एक बार भी नहीं की। घर के बाकी सदस्यों ने भी प्रकट रूप में कुछ कहने का साहस नहीं किया क्योंकि उनकी दृष्टि में लक्ष्मी अब एक भिन्न लोक की निवासी बन गई थी।

पहले दिन लक्ष्मी जब काम पर आई तो तारा भी उसके साथ आई। उसके मुख पर चिंता के भाव झलक रहे थे। कुछ देर लक्ष्मी को छोटे-छोटे परामर्श देने के बाद तारा ने थोड़ा सकुचाते हुए उससे कहा, "मेम लोग तुम्हारे साथ धर्म संबंधी चर्चा भी करेंगी, तुम्हें यह सब अच्छा लगेगा?"

"तारा ! धर्म-चर्चा सुनने में मुझे थोड़ा भी बुरा नहीं लगता, चाहे अपना धर्म हो या दूसरों का। किंतु, किसी बात में मुझसे कोई जबरदस्ती करना चाहे तो मुझे बहुत बुरा लगता हैं। बचपन से ही मैं धर्म-कर्म, व्रत-उपवास के बीच रहकर बड़ी हुई हूं। किंतु, हमेशा दूसरों ने मुझे जैसा करने के लिए कहा वैसा ही मैंने किया। मैं स्वयं किसमें विश्वास करती हूं, कह नहीं सकती। वास्तव में मैं यह बात समझ गई हूं कि मानव-समाज के अंतर्गत रहकर दूसरे मनुष्यों की सहायता लेनी ही होगी—जैसे अभी तुमने मेरी सहायता की है। इस तरह की छोटी-छोटी बातों के लिए ईश्वर को पुकारना उचित नहीं है। उनका काम बहुत बड़ा है।" अंतिम बात लक्ष्मी ने हंस हंसकर धीमे स्वर में कही थीं। किंतु तारा ने समझ लिया कि लक्ष्मी की बातों में एक दृढ़ता व्यक्त हो रही है। जीवन के अनुभव ने उसे अपनी उम्र से अधिक परिपक्व बना दिया है। इसलिए अब उसके बारे में अधिक चिंता करने की जरूरत नहीं है।

यद्यपि तारा लक्ष्मी के विषय में निश्चिंत हो गई थी किंतु अपनी ही कुछ चिंताएं उसे परेशान करने लगीं। बहुत दिनों से उसकी मां अस्वस्थ चल रही थी। मिशन से कोई दूसरा व्यक्ति न जाने के कारण तारा बालिराम का स्कूल छोड़कर नहीं आ सकती थी। बाद में नगांव मिशन स्कूल की एक क्रिश्चियन लड़की पहुंची। तारा उसके हाथों स्कूल का दायित्व सौंपकर घर आई थी। मां की हालत देखकर उसने अपने को धिक्कारा। इसी मां ने मेरे लिए अनेक कष्ट झेलकर, जीवन का अधिकांश समय एकाकी रहकर बिताया, अब बीमारी की हालत में भी उसे अपना काम स्वयं करती हुई देखकर तारा का मन पश्चाताप से भर गया। उसने इतने दिन दूसरों की सेवा में बिता दिए। अपनी मां के प्रति भी उसका कुछ कर्त्तव्य है, यह बात उसके मन में ही नहीं आई। इस बार छुट्टी में घर आने पर तारा ने संकल्प किया कि किसी भी परिस्थिति में वह मां को अकेली छोड़कर नहीं जाएगी। गोलापी ने हल्का प्रतिवाद भी किया था कि मिशन का काम छोड़कर मां की परिचर्या करना ठीक नहीं होगा। किंतु, उसने एक न सुनी। नगांव में आने के दूसरे दिन ही उसने मिशन में जाकर सभी मेम-साहबों से अपनी बात कही। मिसेज मूर और मिस कीलार ने उसकी समस्याओं को मनोयोग पूर्वक सुना। उन दोनों को ऐसा महसूस हुआ कि बहुत दिनों तक भीतरी गांव में अकेली रहना तारा के लिए ठीक नहीं हुआ। उन्होंने कुछ दिनों से लक्ष्य किया था कि तारा की बोलचाल में पहले जैसे अटूट विश्वास के स्वर क्षीण हो गए हैं। वह बीच-बीच में इस तरह के प्रश्न पूछती है जिनसे उसके मन में संदेह का भाव उत्पन्न

होने का आभास मिलता है। जरूरत इस बात की है कि उसे कुछ दिन अपने पास रखकर फिर से उसके मन में विश्वास पैदा किया जाए। इसलिए तारा की बातों में किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। उन्होंने तारा को परामर्श दिया कि नगांव में रहकर वह मिशन के कामकाज में दत्तचित्त होकर लगी रहे। उसकी बात को इतनी आसानी से मान लिए जाने पर तारा आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकी। उसका विश्वास था कि उसके और उसकी मां के प्रति पादरियों और मेमों का स्नेह ही इसका एकमात्र कारण है।

नगांव-मिशन के परिचित परिवेश में तारा ने पुनः काम करना आरंभ किया। उसे सप्ताह में तीन दिन सुबह लड़कियों को पढ़ाने का काम करना होता था। रविवार को प्रातः कभी-कभी छोटे बच्चों को गिरजा के रविवासरीय स्कूल में धार्मिक शिक्षा भी देनी होती थी। मिशन का काम इतना ही था। घर में रहते समय वह काम में बहुत व्यस्त रहती थी। घरेलू काम-काज, मां की सेवा-सुश्रूषा, इन सबके अतिरिक्त समय मिलने पर गरीब बच्चों के लिए कपड़े सिलाई करना और ऊनी स्वेटर बनाना आदि काम भी हमेशा करती रहती थी। खाली समय में मां के पास बैठकर बात करते समय भी उसके दोनों हाथ अनवरत काम करते रहते थे। कभी कभी वह मन ही मन असमिया धर्म संगीत गाती रहती थी। उसके मधुर कंठ स्वर को सुनकर राहगीर अपनी चाल धीमी कर देते थे।

## 9

बी.ए. की परीक्षा देने के बाद धर्मकांत ने अन्य छात्रों की तरह शीघ्रातिशीघ्र घर जाना नहीं चाहा। कलकत्ता में उस समय राष्ट्रीयतावाद की लहर एक नई दिशा पकड़ रही थी। राष्ट्रीयतावादी नेतागण घर-घर में सभाएं किया करते थे। भारतीयों के कष्ट आपत्ति आदि के विषय में सरकार को देने के लिए नए-नए प्रारूप तैयार किए जाते थे। धर्मकांत इस परिवेश से अलग रहना नहीं चाहता था। बम्बई में होने वाले कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में उपस्थित रहने की उसकी बड़ी इच्छा थी। शशिपद बनर्जी के 'भारत श्रमजीवी' पत्र के कार्यालय में कई राष्ट्रीय अग्रणी नेताओं के साथ उसने बातचीत की और तर्क-वितर्क भी किया। उसका विचार था कि पूर्ण स्वराज प्राप्त करना कांग्रेस का लक्ष्य होना चाहिए। सन् 1857 में भारतीयों ने सशस्त्र क्रांति द्वारा जिस कार्य में सफलता नहीं पाई थी, अब कांग्रेस को सुपरिकल्पित रूप से आगे बढ़कर उस कार्य को संपन्न करना चाहिए किंतु, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहनबसु आदि नेताओं के भाषणों से धर्मकांत को ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि अपने पुनीत लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में कोई त्वरित कार्य किया जाएगा। वे लोग कांग्रेस को पहले के 'इंडियन एसोसिएशन' की तरह एक संस्था का रूप देना चाहते हैं जिसका उद्देश्य होगा अंग्रेज सरकार की सेवा में आवेदन-निवेदन करके भारतीयों के लिए

पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराना किंतु अंग्रेज सरकार से भारत को मुक्त कराने की बात उनमें से किसी ने नहीं कही।

एक दिन प्रेसीडेंसी कॉलेज के निकटवर्ती चाय की दुकान में छात्रों के दो दलों के बीच बहस छिड़ी हुई थी। इस वितर्क का प्रारंभ उस दिन कालेज स्क्वेयर की एक सभा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा दिए गए भाषण पर केंद्रित था। एक पक्ष का नेतृत्व धर्मकांत कर रहा था और दूसरे पक्ष का उमाचरण मुखर्जी नामक छात्र जो धर्मकांत का एक सहपाठी था। उमाचरण का सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के समर्थन में कहना था कि भारत के शिक्षित वर्ग के लिए एक होकर कतिपय राजनीतिक सुधारों के लिए संघर्ष करना ही उचित है। उमाचरण उस वर्ष बी. ए. परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाने के बाद विदेश जाने की योजना बना रहा था। आई.सी.एस. परीक्षा पास करके सरकारी उच्च नौकरी करना ही, उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। इसलिए आई.सी.एस. पद को ठुकरा देने वाले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, उमाचरण जैसे छात्रों की दृष्टि में एक आकर्षक व्यक्ति थे। उस समय शिक्षित भारतीयों के लिए आई.सी.एस. का परित्याग करना ही मानो जीवन का सर्वोच्च त्याग हो गया था।

धर्मकांत ने जब अपनी ओजस्वी भाषा में अकाट्य युक्तियों से उस दिन की सभा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की बातों का प्रतिवाद करना आरंभ किया तो छात्रों के एक दल ने उसकी वाक् शक्ति से प्रभावित होकर उसके समर्थन में करतल ध्वनि की। किंतु, जब उसने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों को निकाल बाहरकर स्वाधीन भारत के निर्माण की बात कही तो उसके समर्थकों की संख्या कम होने लगीं। उस समय कोई भी अपने भविष्य को अंधकारमय बनाकर आग में कूदने के लिए प्रस्तुत न था। दो एक छात्र मन ही मन धर्मकांत की सत्यता पर विश्वास करने पर भी अंग्रेज शासन की कोप-दृष्टि के भय से उमाचरण के पक्ष में होने को बाध्य थे।

उस दिन मेस में अकेले बैठकर धर्मकांत बहुत देर तक सोच-विचार करता रहा। कलकत्ता के शिक्षित-समाज से उसने बहुत कुछ सीखा था। इस विचित्र महानगरी में न आने पर वह कभी इस तथ्य को हृदयंगम नहीं कर पाता कि अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत देश एक अद्‌भुत प्रकार की मिलनस्थली है। कलकत्ता में उसने जितने भी शिक्षित व्यक्तियों के साथ तर्क-वितर्क किया, द्वंद्व किया और अंतरंग बंधुत्व स्थापित किया, उनमें उसने किसी न किसी रूप में स्वयं अपने व्यक्तित्व की ही झलक पाई। जिन बातों को लेकर उसके मन में सदा विशृंखलता की सृष्टि होती रहती थी, उसका रहस्य सूत्र मानो उसे कलकत्ता नगरी में मिल गया था। किंतु, उस सूत्र को पकड़कर अब उसे और आगे बढ़ना चाहिए, यह धर्मकांत के लिए एक बड़ा प्रश्न था। यदि वह चाहता तो कलकत्ता में ही अपना समस्त जीवन व्यतीत कर सकता था। शशिपद बनर्जी और दो एक अन्य

व्यक्ति उसे कलकत्ता में ही रखना चाहते थे किंतु, धर्मकांत स्वयं से प्रश्न करता कि उसकी अपनी मानसिक तृप्ति के लिए तो कलकत्ता का परिवेश अत्यंत आवश्यक है पर कलकत्ता के लिए भी क्या उसकी उतनी ही उपयोगिता है? कलकत्ता में समाज-सुधारक, धर्म-सुधारक और राजनेता किसी का भी अभाव नहीं है। किंतु असम देश में नवीन विचारधारा का बीजारोपण करना नितांत आवश्यक है।

कालेज स्कवेयर की चाय-दुकान के तर्क-वितर्क का अपना विशेष महत्व है किंतु, धर्मकांत के विचार में असम लौटकर वहां की जनता को वास्तविक संघर्ष के लिए तैयार करना ही उसका सर्वोपरि नैतिक दायित्व था। चाय-दुकान की गोष्ठी के बाद उसने अपने मन में संकल्प किया कि जितना शीघ्र हो सके, उसे असम जाकर एक नवीन कर्मक्षेत्र तैयार करना चाहिए।

धर्मकांत ने पहले सोचा था कि वह सीधे जाकर पहले तपतजुरि बागान के मालिक देवनाथ बरुआ से भेंट करेगा। गुणाभिराम बरुआ ने नगांव में उसे एक चिट्ठी दी थी कि देवनाथ बरुआ उसे बागान में काम देना चाहते हैं। इसलिए कलकत्ता से लौटकर वह उनके पास ही जाए। धर्मकांत ने यही सोचकर जहाज का टिकट गुवाहाटी तक का कराया था किंतु, यात्रा आरंभ करने के ठीक पहले हठात् उसके मन में आया कि उसे पहले शिवसागर जाना चाहिए। जब से उसके मामा बागान के काम से सेवा-निवृत्त होकर शिवसागर में रहने लगे थे तब से उसने उनके दर्शन नहीं किए थे। मां को भी बहुत दिनों से नहीं देखा था। यही सब सोच-विचार कर बाद में उसने अपना टिकट दिखौमुख तक करा लिया।

धर्मकांत की धारणा थी कि नवीन विचारों और चिंतन के क्षेत्र में असम बहुत पीछे हैं। किंतु, शिवसागर जाकर उसने अनुभव किया कि पश्चिम की ओर से प्रवाहित नवबयार ने इस नगर का भी स्पर्श कर लिया है। एक दिन जब वह शिवसागर हाईस्कूल में अपने पुराने सहपाठी नकुल गगै के घर घूमता हुआ गया तो वास्तव में उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसके घर में एक सभा हो रही थी, जिसका विचारणीय विषय था सरकार द्वारा लगाए गए करों के विरुद्ध जनता को जाग्रत करना। नकुल गगै उस समय शिवसागर हाईस्कूल में अध्यापन कार्य करता था। बाकी कई शिक्षित युवकों में से कुछ एन्ट्रेन्स परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और कुछ आर्थिक अभाव के कारण हाईस्कूल की पढ़ाई अधूरी छोड़कर कचहरी में छोटे-मोटे कामों में लग गए थे। नकुल गगै ने बड़े आग्रह पूर्वक धर्मकांत को बुलाकर सबसे परिचय कराने के बाद कहा, "हम इस बार जन-कार्य करने के लिए निकले हैं। जोरहाट में श्रीयुत जगन्नाथ बरुआ द्वारा स्थापित सार्वजनिक सभा के अनुरूप हम भी यहां एक सभा आयोजित कर रहे हैं। बतलाओ बरुआ कि कलकत्ता में ऐसी सभाएं किस प्रकार चलती है?"

धर्मकांत ने इसके पहले सार्वजनिक सभाओं की बात नहीं सुनी थी। उसे अपनी

अज्ञानता पर लज्जा का अनुभव हुआ पर साथ ही समाचार पाकर खुशी भी हुई। गगै आदि से उसने सभा के कामकाज के विषय में जानकारी ली। यद्यपि वहां दर्शनीय कार्य कुछ नहीं हो पाया था किंतु, राजनीतिक चिंताधारा के बीज अंकुरित हो रहे थे। उस दिन धर्मकांत ने बहुत देर तक गगै के घर में समवेत जनों के समक्ष कलकत्ता की सभाओं आदि के विषय में बातचीत की। नवीन रूप में गठित की जाने वाली कांग्रेस के अधिवेशन की चर्चा भी विस्तार से की। प्रत्येक व्यक्ति ने साग्रह अनेक प्रश्न पूछे, "इंडियन लीग और कांग्रेस की नीति में क्या अंतर है? किसका मार्ग सही और किसका गलत है?" धर्मकांत ने सभी विषयों पर अपना सुस्पष्ट मत अभिव्यक्त किया।

"अंग्रेज सरकार के पास आवेदन-निवेदन करने वाले दिन लद गए। अब जनता को कमर कसकर बाहर निकलना होगा और अपने प्राप्य अधिकारों को अंग्रेजों के हाथ से छीनना होगा। कांग्रेस यदि यह नीति अपनाएगी तो उसे जनता का समर्थन अवश्य मिलेगा।"

"मेरा भी यही विचार है। फूल गुड़ी के युद्ध की घटना स्मरण है न? क्या उस तरह का साहस कलकत्ता के लोग दिखला सकेंगे?" एक युवक ने गर्व के साथ कहा।

धर्मकांत शिवसागर में लगभग एक सप्ताह रहा। इन दिनों उसने अपने मित्रों और शिक्षकों से मिलकर बातचीत की। वह कलकत्ता से सम्मानपूर्वक बी.ए. पास करके आया है। यह जानकर उसके प्रति सभी का कौतूहल बढ़ गया। ग्रेजुएट होकर भी उसे तनिक घमंड नहीं है और पहले की तरह ही वह सबके साथ बातचीत करता है, इस बात पर सबको आश्चर्य हुआ। उसकी बातों को सबने खूब ध्यान से सुना। धर्मकांत ने आधुनिक राजनीतिक दर्शन, बंगदेश के नवजागरण और जातीय उत्थान के विषय में अनेक नवीन बातें बतलाईं। उसकी बातों से मानो सबके मन में एक नवीन आशा का संचार हुआ और यह विश्वास हुआ कि शीघ्र ही कोई परिवर्तन होने वाला है।

धर्मकांत चाय बागान में नौकरी करेगा, यह जानकर उसके मामा के मन में बड़ा दुःख हुआ। इतने कष्ट से कलकत्ता नगर में अध्ययन करने के बाद उच्च सरकारी अफसर न बनकर बागान में साधारण किरानी का कार्य करेगा, यह सुनकर वे अवाक् रह गए। धर्मकांत मामा से बहस करना नहीं चाहता था। बचपन से ही वह मामा का स्नेह और प्रेम पाता रहा था। यद्यपि इस समय वे उसके मन की बात नहीं समझ रहे थे, तो भी उनके प्रति धर्मकांत की श्रद्धा भक्ति अटूट थी। धर्मकांत ने मामा को आश्वासन देते हुए कहा, "मैं अंग्रेज सरकार के मातहत नौकरी करना नहीं चाहता। इसीलिए असमिया मालिक के बागान में कार्य करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन आप लोग मेरे कामकाज पर गर्व का अनुभव करेंगे। मैंने सोच रखा है कि मैं अनेक महान कार्य संपन्न करूंगा।"

धर्मकांत की मां उसके मन की बात समझकर उसे केवल मन से आशीर्वाद दे सकी। उसने बेटे से कभी कुछ नहीं चाहा था किंतु, उसका विश्वास था कि वह कभी उसके मन

को दुखी करने वाला कोई काम नहीं करेगा।

तपनजुरि चाय बागान गोहाटी से कुछ मील पूर्व में था। अंग्रेजों के बागानों की अपेक्षा आकार में यह बहुत छोटा था। किंतु असमिया मालिक के असीम उद्योग द्वारा उसमें चाय का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होने लगा था। बाहर से 'गिरमिटिया' मजदूरों को काम पर न लगाकर स्थानीय बोड़ों कछारी श्रमिकों की सहायता से बरुआ चाय की खेती करने में सफल हुए थे। अवश्य, उनके बागान में मशीनें न थीं। गुवाहाटी से 'बरुआ फूकन ब्रदर्स' कच्ची चाय पत्ती का चालान कलकत्ता को किया जाता था। 'बरुआ फूकन ब्रदर्स' के साथ व्यावसायिक लेन-देन देखने तथा हिसाब पत्र आदि रखने के काम में बागान के मालिक ने धर्मकांत को नियुक्त किया था। धर्मकांत को भी काम बुरा नहीं लगा। प्रायः गोहाटी आना-जाना करते रहने के कारण राजनीतिक विषयों पर आलोचना करने के लिए लोगों से मिलने-जुलने की सुविधा भी उसे मिल गई थी। बागान में अपना निवास-काल उसने कार्यालय की फाइल निपटाने में ही व्यतीत नहीं किया, समय मिलने पर वह पास के गांवों में चला जाता और किसी चबूतरे पर बैठकर लोगों से देश-विदेश की बातें करता था। साथ ही वह उन्हें यह भी बतलाता कि अंग्रेजी शासन में हमारे देश की जनता की कितनी दुरवस्था हुई है। गांव के लोग उसकी बातें मनोयोग पूर्वक सुनते थे और धर्मकांत से अपने नाना प्रश्नों के सटीक उत्तर सुनकर निम्न श्रेणी के उन दुखी लोगों का मन आश्चर्य से भर जाता था। उनके गांव की सीमा के बाहर भी एक विशाल संसार है, जहां की घटनाएं अज्ञात रूप से उनके गांव को भी प्रभावित करती हैं, यह बात उन्हें सर्वप्रथम धर्मकांत से ही मालूम हुई।

धर्मकांत ने पत्राचार द्वारा गुणाभिराम बरुआ के साथ अपना संबंध यथावत बना रखा था। उसे उनके पत्र से ही ज्ञात हुआ कि असमिया पत्रिका के प्रकाशन का काम द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था। उसका प्रथम अंक माघ महीने में प्रकाशित होने की बात थी। पत्रिका का नाम रखा गया था "आसाम बंधु"। मुद्रणालय से आने के बाद पत्रिका के वितरण आदि के काम में सहायता करने के लिए गुणाभिराम बरुआ ने धर्मकांत को नगांव बुलाया था। पत्र आते ही धर्मकांत ने बागान के मालिक बरुआ को इस विषय में बतला कर दो दिनों की छुट्टी चाही। बरुआ ने कोई आपत्ति न की। हाकिम गुणाभिराम बरुआ उनके मित्र थे, धर्मकांत को मना करने से उनके द्वारा मित्र की इच्छा की अवहेलना होती और गुणाभिराम जैसे ज्ञानी व्यक्ति की उपेक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था। अतः माघबिहू के समय एक सप्ताह की छुट्टी लेकर धर्मकांत ने नगांव जाने का निर्णय कर लिया।

# 10

जब धर्मकांत नगांव पहुंचा तो बिल्व कुटीर में एक उत्सव जैसा वातावरण था। कलकत्ता से मुद्रित होकर आई "आसाम बंधु" पत्रिका को देखने के लिए नगांव के शिक्षित जनों में हलचल मच रही थी। सत्यनाथ बरा, रत्नकांत महंत, हेमचन्द्र गोस्वामी आदि युवकों का उत्साह असीम था। उनमें से प्रत्येक ने पत्रिका की एक एक प्रति अपने लिए खरीदी थी और दो-दो प्रतियां वे अपने परिचित जनों में बिक्री करने के लिए ले गए थे। अगले अंक के लिए निबंध और कविता लिखने का दायित्व प्रायः सभी युवकों ने लिया। वयस्क लोगों में भी उत्साह की कमी न थी। गुरुनाथ दत्त, पद्महास गोस्वामी, पंचानन शर्मा आदि में प्रत्येक ने गुणाभिराम बरुआ के प्रयास की सराहना की और अपने परामर्श भी दिए।

धर्मकांत के नगांव पहुंचने पर गुणाभिराम ने इस प्रकार के भाव प्रदर्शित किए, मानो आसाम बंधु का वास्तविक जन्मदाता ही वहां आकर उपस्थित हो गया है। धर्मकांत उनके व्यवहार से अपने को थोड़ा संकुचित अनुभव करता हुआ एकाग्रचित होकर पत्रिका पढ़ता रहा।

'कैसा लगा' गुणाभिराम इतनी देर तक उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बात पर धर्मकांत का ध्यान ही नहीं गया। उसने सिर उठाया तो देखा कि गुणाभिराम ही नहीं बल्कि स्वर्णलता और विष्णुप्रिया भी उसका उत्तर सुनने के लिए प्रतीक्षारत थीं। धर्मकांत असमंजस में पड़ गया। वह दो शब्दों में इतना भी नहीं बोल पाया कि बहुत अच्छा हुआ है। 'आसाम बंधु' के मूल उद्देश्य के विषय में लिखित बातों के साथ कई अंशों में उसका मतभेद था। गुणाभिराम ने लिखा था कि 'आसम बंधु' पत्रिका में केवल ज्ञान-विज्ञान की चर्चा रहेगी और शासन-विचार आदि राजनीतिक विषयों में हम हस्तक्षेप नहीं करना चाहते' किंतु धर्मकांत का विश्वास था कि अज्ञानता, अंधविश्वास, अत्याचार, अविचार आदि की सुविवेचना किए बिना ज्ञान-विज्ञान की चर्चा करना असंभव है।

इसके अतिरिक्त यदि 'आसाम बंधु' जनता को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का साहस नहीं दे सकता और उसका मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता तो फिर वह कैसा बंधु हुआ?

पहले की बात होती तो धर्मकांत बिना किसी विकल्प के अपने विचार व्यक्त कर सकता था किंतु इस समय जीवन में पहली बार उसने अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखा। 'बिल्व कुटीर' के उद्यमी परिवार के मन को दुःख देना उसे उचित नहीं लगा। इसलिए उसने मुस्कुराते हुए सौहार्द पूर्वक कहा, "मैंने अभी पत्रिका को केवल ऊपर-ऊपर से ही देखा है। देखने में इसकी विषय-सामग्री बहुत उपयोगी प्रतीत होती है। असम में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का बहुत अभाव है। यह पत्रिका बहुत अंशों में उस अभाव की पूर्ति करेगी। किंतु, अक्षरों की आकृति असमिया के अनुरूप होने से अच्छा होता। कम से कम 'र' वर्ण

को तो असमिया 'र' के सदृश्य लिखा जा सकता था।

स्वर्ण बोली, "मैं भी यही कह रही हूं किंतु सुनती हूं कि कलकत्ता के प्रेस में पेट कटा 'व' उपलब्ध ही नहीं है।"

"क्यों, 'अरुणोदय' को कहां से मिल गया था? क्या मिशनरी लोगों ने मुद्रण के लिए अक्षर कलकत्ता से नहीं मंगाए थे?" धर्मकांत ने कहा।

"शिवसागर के मिशन प्रेस की बात मत करो, धर्मकांत! पादरी लोग सभी कामों में चतुर होते हैं। ब्राउन साहब ने अपने हाथों से नक्शा खींचकर असमिया कारीगरों द्वारा सांचा बनवाया था। लगता है उनके अक्षर भी स्वनिर्मित थे। क्योंकि हमारे पास ये सब सुविधाएं नहीं हैं, इसलिए जो अक्षर कलकत्ता में हमें मिले, उन्हीं से हमें संतुष्ट रहना होगा", गुणाभिराम ने मानो इस प्रसंग को समाप्त करने के उद्देश्य से कहा।

किंतु धर्मकांत को इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। उसने परामर्श दिया कि कलकत्ता के ढलाई-कारखाने में आर्डर देकर असमिया 'र' और व आदि कुछ अक्षरों को गढ़वा लेना कोई दुःसाध्य कार्य नहीं है। वह स्वयं इस काम का दायित्व लेने को तैयार हो गया। धर्मकांत की युक्ति को अमान्य नहीं किया जा सकता, यह मानकर गुणाभिराम ने अक्षरों का एक सेट तैयार करने का आर्डर देने के लिए कलकत्ता पत्र भेजा। इस पत्र से अपेक्षित कार्य सिद्ध हो गया। तृतीय अंक से 'आसाम बंधु' अपने वास्तविक असमिया स्वरूप में प्रकाशित होने लगा। बिल्व कुटीर में वह सप्ताह धर्मकांत ने बहुत व्यस्तता में बिताया। आसम के इस कोने से उस कोने तक गुणाभिराम के जितने परिचित शिक्षित लोग थे, सभी को 'आसाम बंधु' की प्रतियां बिना मूल्य डाक से भेज दी गईं। साथ में वार्षिक चंदा भेजने का अनुरोध करते हुए एक पत्र भी दिया गया। पते एकत्रित करना, लेबलों पर पता लिखना, कागज में बांधी पत्रिका पर लेबल चिपकाना, उसके बाद डाकघर में जाकर वजन के अनुसार टिकट लगाना आदि अनेक काम निकल आए। स्वर्ण की लिखावट सुंदर थी इसलिए पता लिखने का काम धर्मकांत ने उसे ही सौंपा। स्वर्ण ने तारा और लक्ष्मी को भी वहां बुलवा लिया। वह जानती थी कि उन्हें ये सब काम करना अच्छा लगेगा। इसके अतिरिक्त तीनों सहेलियों को एक साथ बैठने का सुयोग भी मिल जाएगा। समाचार पाते ही तारा और लक्ष्मी स्कूल से बाहर ही बाहर बिल्व कुटीर पहुंच गई। गुणाभिराम के बैठकखाने के एक कोने में बैठकर धर्मकांत पत्रिका को कागजों पर लपेटकर बांध रहे थे। स्वर्ण मेज के पास बैठकर कागज के लेबलों पर पता लिख रही थी और तारा और लक्ष्मी भी उसके समीप बैठकर पता लिखने और गोंद लगाने के काम में सहायता करने लगी। स्वर्ण ने लक्ष्मी से कहा, "तुम घर में बिना बताए यहां आ गई हो, तुम्हारे माता-पिता चिंता नहीं करेंगे?"

"अधिक देर होने पर चिंता करेंगे। किंतु, आजकल मां लोग मुझ पर विश्वास करती हैं। पहले की तरह मेरे साथ में भाई अथवा किसी नौकर को नहीं भेजतीं", लक्ष्मी ने हंसते

हंसते कहा।

"हमारे देश में लड़कियों का कहीं अकेले पैदल जाना, बुरा क्यों समझा जाता है? आगे पीछे सब समय दूसरों पर निर्भर रहने वाली लड़की ही क्या अच्छी होती है?" तारा ने पूछा।

"हमारे समाज के विचार ऐसे ही हैं। जो लड़कियां घूंघट डालकर घर की चहारदीवारी में बंद रहती हैं उन्हें ही अच्छी लड़की माना जाता है और हम जैसी लड़कियों को निर्लज्ज समझा जाता है। आजकल कुछ व्यक्ति पुनः स्त्री-स्वाधीनता की बात करने लगे हैं किंतु अपनी पुत्रियों और परिवार की महिलाओं को घर से बाहर निकलने नहीं देते।" लक्ष्मी ने विद्रूप स्वर में कहा।

स्वर्ण, इतनी देर तक चुपचाप लेखन कार्य में व्यस्त थी। इस बार लेखनी को विराम देकर गंभीर स्वर में बोली "हमारा पुरुष वर्ग स्त्री-स्वाधीनता के वास्तविक अर्थ को नहीं समझता, इसी कारण उसके ऐसे विचार हैं। स्वाभाविक लज्जा का क्या अर्थ है? सिर पर ओढ़नी लेकर मुख छुपाकर रखना ही क्या लज्जा का लक्षण है? लज्जा का वास्तविक अर्थ है, पाप कार्यों से भय करना। जो निर्भीकता पूर्वक आगे बढ़ते हैं और पाप कार्यों से दूर रहते हैं वे ही सच्चे अर्थ में लज्जाशील हैं। जो मेम अच्छे कार्य करती हैं उनमें भी लज्जा होती है यद्यपि वे लोग सिर पर ओढ़नी नहीं लेतीं और पुरुषों के साथ घूमती हैं। स्त्री-स्वाधीनता वास्तव में इसी को कहते हैं।"

दोनों लड़कियां स्वर्ण की युक्ति सुनकर मुग्ध हो गईं। लक्ष्मी अपना हाथ स्वर्ण के हाथ पर रखकर उत्साह पूर्वक बोली, "तुमने मेरे मन की बहुत पुरानी दुविधा इतने सुंदर ढंग से दूर कर दी। अब मैं कर्त्तव्य-पालन करने में समाज का और भय नहीं करूंगी। विधवा होकर भी नारी अपना निजी जीवन जी सकती है, सत्कार्य करके मैं यह सिद्ध करने का प्रयास करूंगी।"

धर्मकांत इतनी देर तक सिर नीचा करके अपना काम कर रहा था और तीनों लड़कियों का कथोपकथन भी बड़े मनोयोग से सुन रहा था। लक्ष्मी के अंतिम वाक्य को सुनते ही वह अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगा। कुछ समय पहले स्वर्ण ने उससे इन दोनों का परिचय कराया था किंतु, तब उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था कि लक्ष्मी नाम की यह दुबली पतली लड़की विधवा है। उसके मूंगा मेखला और हरे रंग वाली सूती चादर को देखकर उसमें उसे वैधव्य के कोई लक्षण दृष्टिगत नहीं हुए थे। हां, उसे समझना चाहिए था कि यदि कोई ब्राह्मण कन्या पूर्ण यौवना होकर भी सिंदूर नहीं लगाती तो वह विधवा ही होगी। किंतु, विधवा ब्राह्मण लड़की मिशन स्कूल की अध्यापिका क्योंकर बनी? लक्ष्मी के संबंध में जानने के लिए धर्मकांत के मन में तीव्र जिज्ञासा जाग्रत हुई।

इसी बीच तारा और लक्ष्मी विदा होकर चली गईं। उनको विदा करने के बाद स्वर्ण सामने के बरामदे में एक कुर्सी पर बैठ गई। धर्मकांत भी बाहर निकल आया था। थोड़ा

इधर-उधर करके वह स्वर्ण के पास दूसरी कुर्सी पर बैठकर गंभीर स्वर में थोड़ी हिचकिचाहट के साथ बोला, "अभी तुम लोगों की बातें सुनकर बहुत अच्छा लगा। मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता है कि तुम्हारे जैसी शिक्षित लड़कियां नारी के प्रकृत गुणों के विषय में सोच-विचार करती हैं, यह बहुत अच्छी बात है। मेरे विचार से आज का यह कथोपकथन लिखकर तुम्हें 'आसाम बंधु' में प्रकाशित करा देना चाहिए।"

स्वर्ण नहीं जानती थीं कि धर्मकांत उनकी बातें सुन रहा था। उसने अनमने भाव से कहा, "हमारी बातें पढ़कर किसे अच्छा लगेगा?"

"क्यों? मेरी तरह बहुत से लोगों को अच्छा लगेगा। आजकल नारी मुक्ति का प्रसंग आने पर सभी उपहास करते हैं। तुम्हारी बातों से बहुत कुछ सीख मिलेगी।"

थोड़ी देर दोनों चुपचाप रहे। धर्मकांत लक्ष्मी की बात निकालना चाहता था किंतु, हठात् वह अन्यमनस्क हो गया। यद्यपि वह स्वर्ण को अपनी छोटी बहन की तरह मानता था और उसके साथ साहित्य, राजनीति धर्म आदि पर निस्संकोच होकर बातचीत किया करता था फिर भी उसका व्यवहार अत्यंत संयत रहता था। वह लड़कियों के विषय में साधारणतः किसी तरह की बातचीत में भाग नहीं लेता था। लड़कियों के विषय में उसकी जानकारी भी बहुत कम थी। स्कूल और कालेज में पढ़ते समय सहपाठी के रूप में वह किसी लड़की से नहीं मिला था। स्वर्ण से मिलने के पूर्व उसकी धारणा थी कि लड़कियां एक भिन्न जगत की प्राणी हैं। वे विद्या-बुद्धि में लड़कों से पीछे हैं। गुणाभिराम बरुआ के परिवार के साथ घनिष्ठता होने के उपरांत वह कई बंगाली सुशिक्षिता लड़कियों से मिला था और उनकी ज्ञान-बुद्धि ने उसे चमत्कृत किया था। किंतु, आसाम में स्वर्ण को छोड़कर अन्य शिक्षिता लड़कियां भी हैं, यह बात वह तारा और लक्ष्मी को देखने के बाद ही समझ पाया था।

इतनी देर तक स्वर्ण अपने विचारों में इतनी विभोर थी कि धर्मकांत की मौन उपस्थिति को उसने लक्ष्य ही नहीं किया था। उस समय वह लेखिका बनने का स्वप्न देख रही थी और धर्मकांत के परामर्श के अनुसार वह उस दिन के पारस्परिक संवाद को लिखकर पत्रिका में देने की बात मन ही मन सोच रही थी। कुछ क्षणों के बाद वह अपने आप बोलने लगी

"काश, मैं बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की तरह लिख सकती।"

"क्या तुम्हें उनका लेखन अच्छा लगता है? उनकी लिखी कौन-कौन सी पुस्तकें तुमने पढ़ी हैं?"

"कलकत्ता में रहते समय मैंने 'दुर्गेश नंदिनी' पुस्तक पढ़ी थी। यहां पर लक्ष्मी से लेकर 'कपालकुंडला' पुस्तक पढ़ी है। अद्भुत पुस्तक है! उसे बार-बार पढ़ने का मन होता है। लक्ष्मी को तो उसके बहुत सारे वाक्य कंठस्थ भी हो गए हैं।"

"लक्ष्मी को पढ़ने के लिए ये किताबें कहां से मिलीं? धर्मकांत ने विस्मय से पूछा।

"चारुशीला बहन जी, उसे पढ़ने के लिए देती हैं। वे उसके स्कूल जाने के प्रथम दिन से ही उसे उत्साह देती रही हैं। उनकी सहायता न मिलने पर लक्ष्मी के जीवन की क्या हालत होती?" स्वर्ण ने लंबी सांस भरते हुए कहा।

"लक्ष्मी के जीवन के बारे में मुझे बतलाओ। मुझे आश्चर्य है कि उसने किस तरह इतना पढ़ना-लिखना सीखा?" इस बार धर्मकांत ने स्पष्ट रूप से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

तारा और लक्ष्मी के बारे में जिज्ञासा होना स्वर्ण को स्वाभाविक लगता था क्योंकि दोनों ही अन्य लड़कियों से अलग स्वभाव की थीं। उनके विषय में कुछ कहकर उसे आंतरिक परितोष मिलता था। उसने लक्ष्मी के संघर्षमय जीवन की एक आदर्श छवि धर्मकांत के समक्ष प्रस्तुत की। अपनी बातों में उसने कुछ अतिशयोक्ति अवश्य की थी। कलकत्ता की बंगाली लड़कियों के संपर्क में रहने के बाद भी उसमें ऐसी चारित्रिक विशेषताओं का न होना ही अस्वाभाविक होता किंतु अपने सामने एक मुग्ध श्रोता को पाकर कौन चित्रकार वास्तविक चित्रांकन पर थोड़ा बहुत हाथ घुमाकर उसे और अधिक मनोग्राही बनाना नहीं चाहेगा? इसके अतिरिक्त उस दिन धर्मकांत लक्ष्मी की जीवन-कथा सुनकर इतना अधिक मंत्रमुग्ध था कि स्वर्ण की अतिरंजित बातों पर उसका तनिक भी ध्यान नहीं गया। उसकी दृष्टि में लक्ष्मी एक संघर्षशीला नारी-शक्ति का प्रतीक थी। इसमें संदेह नहीं कि तब अज्ञात रूप से कुछ और कोमल भाव भी धर्मकांत के हृदय में जन्म ले रहे थे।

इन दिनों लक्ष्मी और तारा नियमित रूप से बिल्व कुटीर में आया करती थीं। एक साथ मिलकर काम करने में उन्हें एक नवीन आनंद का अनुभव होता था। गुणाभिराम भी प्रायः उनके पास बैठकर मार्ग-निर्देशन किया करते और भविष्य के संबंध में अनेक योजनाएं बनाया करते थे। विष्णुप्रिया भी बीच-बीच में चाय-जलपान की व्यवस्था करती और स्वयं भी बैठकर जब तब परामर्श दिया करती थी। ग्यारह वर्षीय करुणा का उद्यम भी कुछ कम न था। स्कूल से आते ही वह पत्रिका के बंडलों पर डाक टिकट लगाने के काम में लग जाता था। प्रत्येक व्यक्ति की धारणा थी कि एक महान् काम संपन्न होने जा रहा है। एक दिन तारा सारे दृश्य को देखकर हंसती-हंसती बोली, "ऐसा लग रहा है जैसे बड़े दिन के अवसर पर मिशन में काम हो रहा हो। वहां भी हम सब ठीक इसी तरह मिल कर काम करते हैं।"

"बिहू के ऊरुका के दिन अथवा विशेष आवश्यक कार्य के दिन और उसके अगले दिन भी घर की बहू–बेटियां सारी रात जगकर काम करती हैं। किंतु, उन सब कामों में हमें इतना आनंद नहीं मिलता। ये कार्य केवल व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक मंगल के लिए ही किए जाते हैं किंतु, अभी हम मिलकर जो काम कर रहे हैं, वे देश के मंगल और सुख के लिए हैं, नहीं?" लक्ष्मी ने गंभीर भाव से कहा।

"हां, यदि हमारी यह लघु पत्रिका असम वासियों में थोड़ा भी ज्ञान का प्रकाश भर सके तो हमारा परिश्रम वास्तव में सार्थक हो जाएगा, गुणाभिराम ने पत्रिका की एक प्रति के ऊपर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा।उस समय धर्मकांत के मन में यह विचार आया कि गुणाभिराम मानो् एक ऐसे ऊंचे छायादार वृक्ष हैं, जिसकी छत्र-छाया में एक क्षण बैठकर हम सभी भविष्य के लिए अपने को तैयार कर रहे हैं। कमरे में उपस्थित सभी व्यक्तियों की ओर उसने लक्ष्य किया। उसे लगा कि विष्णुप्रिया फल-फूलों से लदे एक वृक्ष के समान ही है। उसके सिर के ऊपर से न जाने कितने झंझावात निकल चुके हैं, किंतु फिर भी वह अत्यंत शांत, आदरास्पद मातृमूर्ति की भांति लगी। स्वर्ण उसे एक ऐसे प्रस्फुटित गुलाब पुष्प की भांति लगी, जिसे अभी तक जीवन में कांटों का स्पर्श नहीं हुआ है। तारा, एक व्यस्त निर्झर की तरह है, किसी के लिए रुकने का समय उसके पास नहीं है। उसकी अक्लांत शक्ति का उपयोग काश, देश-हित में हो सकता। धर्मकांत सोचने लगा और लक्ष्मी? उसकी समानता किसके साथ करें, वह कुछ सोच नहीं पाया। आज तक उसने जितनी लड़कियों को देखा है, वह सबसे विलक्षण है। कुछ दिनों से धर्मकांत अनुभव कर रहा है कि लक्ष्मी को देखने के बाद से वह पहले की तरह नहीं रहा। अकेले रहने पर अब उसका समस्त मन-प्राण लक्ष्मी की स्मृतियों में खो जाने लगा। ऐसी भावनाओं के कारण वह पथभ्रष्ट न हो जाए, इसके प्रति वह जागरूक था। लक्ष्मी के विषय में सोचकर वह कोई पाप कर रहा है, यह मानने को उसका मन तैयार न था। अस्त-व्यस्त मन लेकर धर्मकांत एक सप्ताह के बाद तपनजुरि बागान में वापस चला गया।

## 11

शीतऋतु की छुट्टियों के बाद स्वर्ण के कलकत्ता वापस जाने का समय होने पर गुणभिराम और विष्णुप्रिया के मन में अनेक चिंताएं घिरने लगीं। उपयुक्त वर मिल जाने पर दो एक वर्ष के भीतर ही विवाह कर देने का उन्होंने निश्चय कर रखा था। इसलिए बेटी को बोर्डिंग में रखने की इच्छा उन्हें बिल्कुल न थी। इधर स्वर्ण स्कूल छोड़ने की बात सुनना ही नहीं चाहती थी। उसके साथ की कई लड़कियों को एन्ट्रेन्स तक पढ़ने की इच्छा थी पर, उनके माता-पिता ने बीच में ही स्कूल छुड़ाकर उनका विवाह कर दिया। यह देखकर स्वर्ण को बहुत दुःख हुआ था। उसे पूरा विश्वास था कि उसके माता-पिता ऐसे नहीं हैं, वे उसकी इच्छानुसार उसे पढ़ने देंगे। स्वर्ण के विश्वास को आघात न पहुंचाने के उद्देश्य से ही गुणभिराम और विष्णुप्रिया ने एक विकल्प मार्ग चुना। दो वर्षों के लिए विष्णुप्रिया स्वर्ण के साथ कलकत्ता में रहकर उसे स्कूल में पढ़ाएगी। उस समय वह हाईस्कूल में तृतीय श्रेणी की छात्रा थी। सभी अध्यापिकाओं को विश्वास था कि तीन वर्ष बाद वह एन्ट्रेन्स परीक्षा दे सकेगी।

गुणाभिराम ने कलकत्ता के मानिकतला स्ट्रीट में एक बड़ा घर भाड़े पर लेकर अपनी पत्नी और कई बच्चों को वहां छोड़ दिया। 'बिल्व कुटीर' सूना हो गया। किंतु, प्रति मास 'आसाम बंधु' के प्रकाशन के समय घर में अनेक लोगों का समागम होता रहता था। गुणाभिराम अकेले होने के कारण अब पहले से अधिक समय लिखने पढ़ने में व्यतीत करते थे। धर्मकांत भी प्रत्येक महीने नगांव आता था। यद्यपि इतनी दूर आने का मुख्य कारण 'आसाम बंधु' ही था तथापि गुणाभिराम ने लक्ष्य किया कि धर्मकांत और लक्ष्मी के बीच गहरा संबंध जुड़ रहा है। इस विषय में धर्मकांत से बातचीत करने की इच्छा होने पर भी आयु के विशेष अंतर के कारण गुणाभिराम को स्वयं बात का प्रसंग निकालने में संकोच हो रहा था। धर्मकांत ही इस विषय में कुछ बात करेगा, ऐसा सोचकर वे चुप रहे। उन्हें धर्मकांत और लक्ष्मी के ऊपर अगाध विश्वास था। वे लोग कोई गलत काम करेंगे, ऐसा सोचने का उन्हें कोई कारण नहीं दीख रहा था।

इधर स्वर्ण ने कलकत्ता के घर में अपने को तीनों छोटे भाइयों के अभिभावक के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया था। स्वयं को कलकत्ता के नए परिवेश के अनुकूल बनाने में विष्णुप्रिया कठिनाई का अनुभव कर रही थी। यों तो खोज-खबर लेने वाले बहुत से आदमी थे फिर भी पग-पग पर उसे स्वर्ण की मदद लेनी पड़ती थी। स्वर्ण बंगला और अंग्रेजी फर्राटे से बोल सकती थी। इसलिए घर के नौकर की बात समझने से लेकर भाइयों के लिए स्कूल के प्रधानाध्यापक के नाम अंग्रेजी में आवेदन-पत्र लिखने तक सभी काम स्वर्ण को करने पड़ते थे। इन सब कामों में स्वर्ण एक नवीन आनंद का अनुभव करती थी। बहुत दिनों तक घर से बाहर रहने के कारण अब उसे अपने भाइयों को एक नए रूप में समझने का अवसर मिला था। उन्हें अच्छी तरह कपड़े पहनने, किताब-कापियां यत्न से रखने, उनके पढ़ने लिखने पर ध्यान देने और उन्हें कहानी सुनाने आदि में उसे अपार आनंद मिलता था। उन लोगों के लिए भी दीदी ही संसार की सर्वाधिक ज्ञानी, गुणी और सुंदर लड़की थी। उसके हर आदेश को वे बिना ननु-नच किए मान लेते थे।

स्वर्ण के स्कूल आने-जाने के लिए पिता ने एक तांगे की व्यवस्था कर दी थी। स्कूल आते-जाते समय महानगरी के दृश्य स्वर्ण को आश्चर्यजनक रूप में रोमांचित करते थे। अपने किशोर और यौवन के संधिकाल में स्वर्ण को यह महानगरी अनेक आवेग भरी स्मृतियों से जड़ित होने के कारण बहुत अच्छी लगती थी। शिशु को अपनी मां के प्रति जैसी ममता होती है वैसी ही स्वर्ण को नगांव के प्रति थी किंतु कलकत्ता का आकर्षण उसके लिए रहस्यमय प्रेमी की तरह था। यहां के विचित्र जीवन की मादकता का उपभोग करने वाले ही इसका अनुभव कर सकते हैं। बसंत में दक्षिण का मलय-पवन तो वृद्ध को भी उन्मत्त कर देता था, फिर तरुणों की तो बात ही क्या? यहां की शीतल मंद बयार न जाने कितने नीरस व्यक्ति को कविता-लेखन में प्रेरणा देती है। एक मादक संध्या को स्वर्ण अपने घर के दक्षिण

तरफ की खिड़की के पास खड़ी होकर रवीन्द्रनाथ का गीत गुनगुना रही थी। माघोत्सव की उस संध्या के बाद वह दुबारा कवि से नहीं मिली थी। किंतु, हेमप्रभा आदि के मुख से उसने सुना था कि एक बाल कन्या के साथ उनका विवाह हो गया है। रवीन्द्रनाथ के साथ अपने विवाह की बातचीत और बाद में किसी कारण से संबंध न होने की बात उसे हेमप्रभा से ही ज्ञात हुई थी। इसीलिए वह रवीन्द्रनाथ के साथ एक रहस्यमय संपर्क का अनुभव करती थी। माघोत्सव के दिन संध्या समय वापस आते हुए कवि की गंभीर दृष्टि की स्मृति से रह-रहकर स्वर्ण का हृदय धड़कने लगता था। स्वर्ण को लगता था कि 'मायार खेलार' और 'रोदन भरा ए वसन्त' शीर्षक गीतों की रचना कवि ने स्वर्ण के लिए ही की थी।

## 12

'आसाम बंधु' मात्र एक वर्ष नियमित रूप से प्रकाशित हुआ। इसके बाद यह पत्रिका समाप्त प्राय हालत में हो गई। ग्राहकों की संख्या अनुमान के अनुसार नहीं बढ़ पाई। पुराने ग्राहकों ने भी दुबारा वार्षिक चंदा भेजने में उत्साह नहीं दिखाया। चंदे के लिए गुणाभिराम ने बहुत से ग्राहकों के पास पत्र लिखे किंतु, दो एक को छोड़कर किसी ने पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। नए ग्राहकों की खोज में धर्मकांत गुवाहाटी और नगांव के घर-घर में घूमा। झोले में पत्रिका की प्रतियां लेकर वह अनेक परिचित-अपरिचित व्यक्तियों से मिला। एक प्रति खरीदने में तो किसी को आपत्ति न थी किंतु एक वर्ष का चंदा देने में सभी आनाकानी करने लगे। उनको संदेह था कि पत्रिका एक वर्ष तक निकल भी पाएगी अथवा नहीं? गरीब पाठकों की बात तो छोड़ ही दें। धर्मकांत को आश्चर्य होता था कि सामर्थ्य रहने पर भी लोग मात्र तीन रुपए वार्षिक चंदा देने के समय अनेक प्रश्न पूछते हैं और आपत्तियां करते हैं। कुछ लोगों ने अपने अभाव का नाटक किया। दो एक ने 'पत्रिका' की भाषा और विषय वस्तु की आलोचना करते हुए चंदा देने में आनाकानी की। एक बार गुवाहाटी जाते समय गुणाभिराम के अनुरोध पर धर्मकांत गुवाहाटी में लक्षेश्वर कटकी के पास गया। लक्षेश्वर ने बी.ए. तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण करके गुणाभिराम के साथ विशेष संपर्क नहीं रखा था। बीच में एक बार उसने चिट्ठी देकर यह खबर भेज दी थी कि उसने अपने माता पिता की इच्छा के अनुसार कलियावर के गोसांई परिवार की एक नौ वर्षीया कन्या के साथ विवाह कर लिया है। धर्मकांत कालेज में पढ़ने के समय से ही लक्षेश्वर के विचारों और रहन-सहन को पसंद नहीं करता था। उच्च-शिक्षा पाकर भी मनुष्य संकीर्ण विचारों से मुक्त नहीं हो पाता, यह बात वह लक्षेश्वर से मिलने के बाद ही समझ सका था। कलकत्ता के मेस की एक विचारगोष्ठी में लक्षेश्वर द्वारा पठित एक रचना की बात धर्मकांत भूला न था। 'नारी

की प्रकृत स्वाधीनता क्या है' नामक लेख में लक्षेश्वर ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह शिक्षा समाज में ध्वंस के बीज अंकुरित करेगी। लक्षेश्वर के मतानुसार घर का काम-काज सुचारु रूप से करने में ही स्त्रियों की स्वाभाविक प्रतिष्ठा है। उस लेख में और भी बहुत सी बातें थीं जिनका धर्मकांत ने समर्थन नहीं किया था। उस दिन इस विषय पर मेस के छात्रों के बीच अच्छा खासा वाद-विवाद हो गया था। धर्मकांत ने ब्राह्मसमाज के आदर्शों की ओर संकेत करते हुए अपनी युक्ति रखी थी और अंत में उसी की विजय हुई थी किंतु लक्षेश्वर के विचारों का समर्थन करने वाले छात्रों की संख्या भी उस दिन कम न थी।

लक्षेश्वर के पास जाते समय धर्मकांत के मन में ये सारी बातें आ रही थीं फिर भी, पत्रिका को जीवित रखने के लिए सबका सहयोग अपेक्षित है, यह सोचकर वह लक्षेश्वर के पास गया था। प्रारंभ से ही उसने लक्ष्य किया था कि लक्षेश्वर उससे व्यंग्यात्मक स्वर में बातें कर रहा था। 'आसाम बंधु' के विषय में भी उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया। गुणाभिराम बरुआ के विषय में दो एक बात पूछकर लक्षेश्वर ने दुविधा के भाव से तीन रुपए निकालकर दे दिए और कहा, "इस प्रकार दूसरों से दान लेकर और कितने दिन पत्रिका को चला पाओगे? बरुआ ! अच्छी-अच्छी बंगला पत्रिकाओं के होते हुए कोई असमिया पत्रिका नहीं पढ़ेगा, समझे। मैंने यह सब कब का छोड़ दिया।"

"आपके समान शिक्षित लोग ही यदि इस प्रकार की निराशाजनक बातें करेंगे तो असमिया भाषा और साहित्य की उन्नति कभी नहीं होगी," धर्मकांत ने विरक्ति से कहा।

"अच्छा भाषा-साहित्य की बात छोड़ो। इधर जो बात सुनने में आई है, वह सच है क्या?" लक्षेश्वर ने धीमी आवाज में पूछा।

"कौन सी बात", धर्मकांत ने आश्चर्य से पूछा।

"आप भी, बड़े घुन्ने आदमी हैं। पंचानन शर्मा की विधवा बेटी के साथ आपके मेलजोल की खबर यहां तक भी पहुंच गई है। पर, थोड़ा सावधान रहिएगा। पंचानन शर्मा देखने में बड़े निरीह आदमी लगते हैं, पर हैं बड़े उस्ताद। अपनी बेटी के साथ कुछ अघटित घट जाने पर पता नहीं, क्या करेंगे?'' धर्मकांत को निरस्त करने के दूसरे उद्देश्य से लक्षेश्वर आंख मारकर अपनी शान में बोलता गया, "लक्ष्मी प्रिया भी कम नहीं है। एक दिन मजाक-मजाक में उसका हाथ पकड़ते ही वह छिटककर भाग गई थी, मानो बड़ी सती-साध्वी हो।"

धर्मकांत पहले क्रोध और आश्चर्य से क्षुब्ध हो गया। मानव मन की ऐसी नीचता उसके लिए अकल्पनीय थी। लक्ष्मी और उसके बीच के पवित्र संबंध को इतनी नीची दृष्टि से देखकर लोग उसकी बदनामी कर रहे हैं, इसका आभास उसे लक्षेश्वर की बात सुनकर हुआ। वह समझ गया कि लक्षेश्वर जैसे निम्न कोटि के व्यक्ति के साथ तर्क करने से कोई

लाभ नहीं फिर भी, लक्ष्मी की सम्मान-रक्षा के लिए एक बड़ी बात उसके मुंह से निकल गई, जिस बात को वह अब तक स्पष्ट रूप में लक्ष्मी से नहीं कह पाया था, "कटकी ! मेरी भावी पत्नी के बारे में इतनी अनर्गल बातें न करते तो अच्छा होता। आज से मैं तुम्हें अपना मित्र कभी नहीं मान सकूंगा।"

"आपकी भावी पत्नी? कौन? लक्ष्मी प्रिया?," लक्षेश्वर अविश्वास से देखकर बोला।

"हां, लक्ष्मीप्रिया, आपके समान नीच लोगों के लिए भले ही यह असंभव हो पर मेरे लिए सम्भव है। आपके लिए एक अबला विधवा स्त्री का सतीत्व नष्ट करना खिलवाड़ है, पर मेरे लिए उसे नारी के रूप में सामाजिक मर्यादा प्रदान करके जीवित रहने का सुयोग दिलाना ही पवित्र कर्त्तव्य है। जाता हूं।"

लक्षेश्वर को हतप्रभ करके धर्मकांत धामधूम बाहर निकल गया। जाते समय उसने अपने मन में दृढ़ संकल्प किया कि अगली बार नगांव जाने पर वह अपने साथ जल्दी ही विवाह करने का प्रस्ताव लक्ष्मीप्रिया को देगा। लक्ष्मी से वह दो या तीन बार अकेले में मिला था। दो दिन मिशन स्कूल के सामने और एक दिन बिल्व कुटीर से उसके घर तक उसे छोड़ने साथ में गया था। इतने समय के भीतर दोनों ही एक दूसरे के प्रति अपने मन के भावों को व्यक्त नहीं कर पाए थे किंतु, जब बात इतनी बुरी तरह फैल ही गई तो धर्मकांत ने निश्चय कर लिया कि वह लक्ष्मी को समाज के निष्ठुर-प्रहार से बचाने के लिए जैसे भी हो, उसके साथ विवाह अवश्य करेगा।

'आसाम बंधु' का चंदा उठाते समय धर्मकांत को जो कड़ुए अनुभव हुए थे, उसका थोड़ा सा आभास उसने गुणाभिराम बरुआ को दिया था। एक दिन हताश स्वर में उसने कहा, "हमारे असमिया लोग समाज-देश-हित का काम करने वाले व्यक्ति को कभी प्रोत्साहन नहीं देते। केवल उसमें दोष ही देखते हैं।"

"ठीक है, किंतु दूसरों में दोष देखने वाले स्वयं कुछ नहीं करते। यदि प्रत्येक जन अपने मन के विचारों को स्पष्ट रूप में प्रकाश करने का गुण बंगाली लोगों से अपना लेता तो अब तक हमारी बहुत उन्नति हो गई होती। किंतु, हमारे शिक्षित जनों को आग तापते हुए बड़े आराम से बैठकर दूसरों के दोष ढूंढ़ने में ही अच्छा लगता हैं वे पत्र-पत्रिकाओं में कुछ नहीं लिखते।"

वर्तमान में जैसी स्थिति है, लगता है, उससे अधिक दिनों तक 'आसाम बंधु' को निकाल पाना संभव नहीं। पिछले दो तीन अंकों का पूरा खर्च आपने ही दिया। कुछ लेखकों को छोड़कर अब कोई ग्राहक नहीं रहेगा। क्या इस तरह कहीं कोई पत्रिका निकल सकती है? इसके अतिरिक्त लेखकों की संख्या भी दिनोंदिन कम होती जा रही है।"

धर्मकांत के स्वर में क्षोभ और निराशा की झलक थी। उसे ऐसा लग रहा था कि पत्रिका बंद हो जाने पर मानो उसकी अपनी कोई प्रिय वस्तु खो जाएगी। इसी पत्रिका

के माध्यम से उसने लक्ष्मी को पाया है, तारा के समान मित्र पाया है और बिल्व कुटीर के सभी सदस्यों का असीम स्नेह और प्यार पाया है। 'आसाम बंधु' के बंद हो जाने पर ये सारे योग सूत्र भी विच्छिन्न हो जाएंगे। लक्ष्मी को अपना बनाकर उसने एक प्रकार से इस सपंर्क को चिरस्थायी करने की चेष्टा की।

नगांव जैसे छोटे शहर में कोई बात अधिक दिनों तक छुपी नहीं रह सकती थी। लक्ष्मी और धर्मकांत की बात जब गुवाहाटी में लक्षेश्वर के कानों तक पहुंच गई थी तो इतने दिनों तक पंचानन शर्मा को इसका पता न होना, आश्चर्य की बात थी। उन्होंने धर्मकांत को बिल्व कुटीर में कितनी ही बार देखा था और उस लड़के की बातचीत और उसका गंभीर व्यवहार उन्हें बहुत अच्छा लगा था। किंतु, लक्ष्मी के साथ धर्मकांत का कोई संपर्क है, इसकी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। इसी कारण किसी एक व्यक्ति के मुख से ऐसी खबर सुनकर वे हक्के-बक्के रह गए। घर पहुंचते ही उन्होंने अपनी पत्नी और बेटी को शयनागार में बुलाकर किवाड़ बंद कर लिए। पिता का चेहरा देखकर ही लक्ष्मी को बात का अनुमान हो गया। वह जानती थी कि सच बात कह देने पर माता-पिता को अत्यंत दुःख होगा। वह उन्हें धोखे में रखना भी नहीं चाहती थी। धर्मकांत और लक्ष्मी ने एक दिन पहले कलंग नदी के किनारे घूमते हुए यह निश्चय किया था कि दोनों पंचानन शर्मा को सारी बातें बतलाकर उनसे आशीर्वाद लेंगे। वे जानते थे कि शर्मा उन्हें विवाह करने की आज्ञा कभी नहीं देंगे किंतु इतना बड़ा कदम उठाने और घर से हमेशा के लिए विदाई लेने के पहले लक्ष्मी थोड़ा सोच-विचार लेना चाहती थी। किंतु किसी शुभाकांक्षी ने ऐसा नहीं होने दिया। लक्ष्मी ने लंबी सांस भरते हुए अपने मां-बाप के समक्ष स्पष्ट रूप से कह दिया कि उसने और धर्मकांत ने विवाह करने का निश्चय कर लिया है। पंचानन शर्मा और उनकी पत्नी दोनों कुछ पल के लिए स्तब्ध रह गए मानो, उन पर वज्रपात हो गया हो। ऐसा असंभावित कांड रचने का साहस लक्ष्मी में कहां से आया? पंचानन शर्मा ने बेटी की ओर देखा। स्कूल जाने के लिए जिद करने वाली लक्ष्मी का मुख। उन्होंने समझ लिया कि आंखें नीची होने पर भी लक्ष्मी की दृष्टि में कोई संशय नहीं हैं, तो भी अंतिम बार कर्त्तव्य-पूर्ति करने का एक क्षीण प्रयास उन्होंने किया।

"किस विधान के अनुसार तुम लोग विवाह करने चले हो? हिंदू धर्मानुसार तो असवर्ण विवाह अमान्य है। हां, अगर लड़का उच्चवर्ण का हो और लड़की उससे नीचे वर्ण की तो विवाह संभव है। किंतु, तुम लोगों की बात ठीक इसके विपरीत हैं। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह हमारे यहां अभी भी प्रचलित नहीं हुआ हैं। कोई भी उसे स्वीकृति नहीं देगा। अतः ऐसा विवाह कदापि नहीं हो सकता।"

लक्ष्मी को अपने पिता की बातों में क्रोध की अपेक्षा उनके असहाय भाव का ही अधिक आभास मिला। ऐसा लगा कि यदि विवाह हो सकता तो वे अवश्य अपनी सम्मति दे देते।

वह अपने पिता को जानती थी। उसके प्रति उनके स्नेह और सामाजिक विधि-विधानों के बीच उनके मन में सदैव एक तुमुल संघर्ष होता रहता था। इतने दिनों तक पितृ-स्नेह की विजय होती आई थी। किंतु, इस बार क्या जाने यह संभव हो पाएगा या नहीं?

लक्ष्मी ने अपने पिता के प्रश्न के उत्तर में दृढ़ भाव से कहा, "पिता जी, हम ब्राह्म धर्म के अनुसार विवाह करेंगे। उसमें ये सब बाधा-निषेध नहीं है।"

"अपना धर्म छोड़ पाओगी? धर्म के साथ-साथ तुम्हें समाज को भी त्यागना पड़ेगा। विपत्ति के समय कोई तुम्हारा साथ नहीं देगा।"

"ब्राह्म धर्म कोई भिन्न धर्म नहीं है पिता जी। हिंदू धर्म का ही एक रूप है। नियमों की भिन्नता के कारण लोग उसे क्रिश्चियन धर्म कहते हैं। हमारा समाज हमें अलग कर भी देगा तो भी हम उसके कल्याण के लिए सदा काम करते रहेंगे। एक न एक दिन समाज हमें अवश्य अपना लेगा।"

पंचानन शर्मा ने लंबी सांस भरकर मात्र सिर हिलाया, कहा कुछ नहीं। इस बीच लक्ष्मी की मां सिसक सिसककर रोती हुई कह रही थी, "अरे ! हाकिम बरुआ ने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया है। उस घर के लोगों के साथ मेल-मिलाप करने के लिए तुमसे किसने कहा था?"

मां की अवस्था देखकर लक्ष्मी को बहुत दुःख हुआ। हठात् उसको लगा मानो आयु में मां बहुत छोटी हो। इतनी कम उम्र में उसने जितना कुछ सीख लिया है, मां उसका आधा भी नहीं जान पाई है। कुछ बातों में वह शिशु के समान है। लक्ष्मी मां के गले से लिपट कर बाहों में सिर डालकर बोली, ''हाकिम बरुआ ! मेरी बात बिल्कुल नहीं जानते, मां! उन लोगों को व्यर्थ में दोष मत देना। अपने भाग्य के लिए मैं स्वयं जवाबदेह हूं। तुम लोग मेरे लिए दुःखी मत होओ। मुझे केवल आशीर्वाद दो कि मैं कभी कोई पाप का काम करके तुम्हें दुखी न करूं।" शर्मा की पत्नी अपनी विचित्र पुत्री की बात कतई नहीं समझ सकीं। वह जिस काम को पाप मानती है उसकी बेटी उसे पाप नहीं समझती। फिर भी, क्षणभर बेटी के सिर पर हाथ रखकर वह बिछौने पर पड़कर रोने लगी। पंचानन शर्मा धीरे-धीरे घर से बाहर निकल गए।

अपने मन का दुःख व्यक्त करने के लिए शर्मा गुणाभिराम बरुआ के पास गए और शिकायत की कि हाकिम बरुआ ने इतनी बड़ी बात उन्हें पहले क्यों नहीं बताई। गुणाभिराम उस दिन बहुत समय तक सिर नीचा किए बैठे रहे। फिर अपराध भाव के साथ बोले, "हां, मुझे इस विषय में आपको पहले ही सावधान कर देना चाहिए था। मैंने यह बात पहले ही लक्ष्य कर ली थी किंतु, यह नहीं सोचा था कि वे इतने आगे बढ़ जाएंगे। धर्मकांत ने मुझसे इस विषय में न तो कुछ कहा है और न मैंने ही उससे कुछ पूछा है। वास्तव में मैं

इन दिनों स्वर्ण के विवाह की चिंता में ही इतना मग्न था कि दूसरी बात पर विचार करने के लिए मुझे अवकाश ही नहीं मिल पाया। उसका विवाह अब ठीक हो गया है। ढाका निवासी नंद कुमार राय नामक, विदेश में शिक्षित एक डॉक्टर के साथ।"

"आप बहुत भाग्यशाली पिता हैं जो आपने ऐसे एक सुपात्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह तय किया है। मुझ जैसा अभागा इस संसार में कौन होगा?" शर्मा ने लंबी सांस खींचकर कहा।

"शर्मा, किसके भाग्य में क्या लिखा है, कोई नहीं कह सकता। धर्मकांत यद्यपि ब्राह्मण कुल का नहीं है किंतु, कुलीन घर का लड़का अवश्य है। उसके समान बुद्धिमान और सच्चरित्र लड़का कोई दूसरा है, ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता। कितने लड़के एक विधवा से विवाह करने का साहस करेंगे। बंग देश में भी ऐसा लड़का मिलना दुर्लभ है। मेरे विचार से यदि ये दोनों सद्भाव पूर्वक अपना संसार बसाना चाहते हैं तो हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। हिंदू-शास्त्रों में विधवा-विवाह का निषेध नहीं किया गया है। पराशर मुनि ने इसका समर्थन किया है। अन्यथा, क्या विद्यासागर महोदय शास्त्र के वचनों के अनुसार विधवा-विवाह के पक्ष में इतनी सशक्त युक्तियां दे सकते थे? मैंने एक बार आपको विद्यासागर द्वारा लिखित एक पुस्तक पढ़ने को दी थी न?"

"हां, उसका नाम था। 'विधवा विवाह प्रचलित होना उचित है या नहीं?' मैंने उसे पढ़ा है। पढ़ते समय सारी बातें बिल्कुल सत्य मालूम पड़ती थीं। किंतु, हमारे समाज को यह कौन समझा पाएगा? लक्ष्मी के निज धर्म त्यागकर ब्राह्म हो जाने पर भी सारे समाज में हलचल मच जाएगी। हमें भी जाति-च्युत कर दिया जाएगा।"

गुणाभिराम कुछ देर चुपचाप रहे। शर्मा ने ठीक ही कहा था। नैष्टिक ब्राह्मणों की दृष्टि में ब्राह्म और क्रिश्चियन के बीच कोई पार्थक्य नहीं है। ब्राह्म लोग बदनाम हैं कि वे अभक्ष्य-भक्षण करते हैं और जाति-पांति का भेद नहीं मानते। इसके अतिरिक्त उनकी तरह विधवा विवाह करने वाले समाज-विप्लवी लोग भी ब्राह्म समाज में हैं। इसलिए सरकारी काम से अवकाश लेने के बाद स्वयं उनको समाज से बहिष्कृत होने की आशंका नहीं है, ऐसी बात नहीं। फिर भी पंचानन शर्मा को आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा, "ब्राह्म धर्म ग्रहण करने के लिए हिंदू धर्म का परित्याग करना जरूरी नहीं है। ब्राह्म लोगों ने हिंदुओं के ही आदिम पवित्र वैदिक धर्म को अपनाया है, इसलिए इस विषय में आप निश्चिंत रहें। लक्ष्मी और धर्मकांत अधर्म का आश्रय लेना नहीं चाहते हैं, फिर आप जिस बात को स्वयं शुद्ध मानकर विश्वास करते हैं, उसके लिए समाज का रोष भी कभी सहन करना पड़ सकता है, भय न करें। दूसरे लोग आपको समाज से बाहर भले ही कर दें पर हम कभी नहीं करेंगे।"

अंतिम बात गुणाभिराम बरुआ ने थोड़े धीमे स्वर में कही। शर्मा ने भी हंसने की चेष्टा की। उनका मन पहले से थोड़ा हल्का लगने लगा। फिर भी मन की एक दुविधा के कारण

उन्होंने पूछा, "क्या ब्राह्म समाज असवर्ण विवाह को स्वीकार करता है? आदि-ब्राह्म समाज के महर्षि देवेन्द्रनाथ जैसे प्रमुख व्यक्तियों को ऐसा विवाह मान्य नहीं है। मैं भी इतने दिनों तक यही मानता आया हूं। किंतु, केशवचन्द्र सेन द्वारा एक असवर्ण विवाह कराकर ब्राह्म-समाज में हलचल उत्पन्न कर देने के पश्चात् पिछले दिनों कलकत्ता के साधारण ब्राह्म-समाज के सदस्यों के भीतर इस तरह के कई विवाह हुए हैं। मेरे अनेक मित्रों ने भी असवर्ण विवाह को मान्यता दे दी है। किंतु, क्या लक्ष्मी और धर्मकांत के विवाह को आप मान्यता देंगे?" शर्मा के इस सीधे प्रश्न का उत्तर देने में गुणाभिराम को थोड़ी असुविधा महसूस हुई। वे इसके लिए प्रस्तुत नहीं थे। थोड़ा सोचकर उन्होंने कहा, "परिस्थिति मानव की विचारधारा को बदल देती है। लक्ष्मी और धर्मकांत दोनों ही मेरे स्नेह-पात्र हैं। इसलिए उनके साथ मतभेद होने पर भी मैं उन्हें अंतरंग से आशीर्वाद दूंगा।"

## 13

नगांव के बेप्टिस्ट मिशन की परिसीमा के शांत परिवेश में अचानक एक चहल-पहल का जन्म हुआ। मिशन के सभी कार्यकर्ताओं में अभिनव व्यस्तता और तत्परता दिखाई पड़ने लगी। मिशन में प्रतिदिन एक न एक छोटी मोटी सभा होती थी जिसमें आगामी स्वर्ण जयंती समारोह के सुचारु रूप से संपन्न करने के विषय में विचार-विमर्श होता थां और योजनाएं बनाई जाती थीं। पचास वर्ष पूर्व नाथन ब्राउन और आलिवर कार्टर साहबों के परिवारों ने असम आकर अनेक कष्ट सहते हुए ईसाई धर्म-प्रचार का जो शुभारंभ किया था उसी की सश्रद्ध स्मृति में यह जयंती उत्सव नगांव में मनाने की आयोजना की गई थी। समग्र पूर्व भारत के सभी धर्म प्रचारकों ने इस अवसर पर नगांव में एकत्र होकर अपने-अपने कार्य-कलापों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने की परिकल्पना की थी। इस उत्सव को मनाने का और भी एक उद्देश्य था। असम के पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों में जो ईसाई कार्यकर्त्ता अथक प्रयास द्वारा अकेले ही शिक्षादान एवं धर्म प्रचार का कार्य कर रहे थे उन्हें दो दिनों के लिए एक स्थान पर एकत्र करके मिशन के भातृभाव को सुदृढ़ बनाना भी इस उत्सव का उद्देश्य था।

तारा ने सर्वप्रथम युवा बंधुओं की बुधवार की सभा में जयंती उत्सव की बात सुनी थी। यह सभा मिशन के बंगले में प्रति सप्ताह एक बार होती थी। किसी एक युवा अथवा युवती द्वारा बाइबिल की किसी एक घटना को लेकर चर्चा आरंभ होती थी। उसके बाद सब अपना-अपना मंतव्य प्रकट करते थे।

अंत में सभा में उपस्थित पास्टर या कोई एक पादरी साहब उस उपाख्यान के प्रकृत महत्त्व के विषय में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करते थे। उन दिनों तारा ने मेरी मेकडेलेन की

जीवन-कथा पढ़कर सुनाई थी। मेरी ने किस प्रकार अपने पवित्र अश्रुजल से जीसू के चरण पखारे थे, इस दृश्य का वर्णन करते समय तारा के स्वर आवेग के कारण अस्पष्ट हो गए थे। कमरे में लगभग पच्चीस-तीस युवक और युवतियां उपस्थित थीं। अधिकांश व्यक्तियों के घर नगांव के आसपास थे। दूर से आए अतिथियों में दो दिनों के लिए नगांव मिशन में समागत हेनरी टामस नामक एक युवा था। विदेशी नाम होने के बावजूद वह एक शुद्ध असमिया परिवार का लड़का था। उसका असली घर शिव सागर में था। बचपन में माता-पिता द्वारा दिया गया नाम आहिना था। बाद में बाल्यावस्था में ही अनाथ हुए आहिना को किसी ने ले जाकर शिवसागर के मिशन में दे दिया था। तभी से उसका लालन-पालन मिशन में ही हुआ और बड़ा होकर वह क्रिश्चियन धर्म में दीक्षित हो गया। पादरियों ने उसे नया नाम दिया हेनरी टामस। गारो पहाड़-क्षेत्र में काफी दिन मिशन का काम करने के बाद अब उसे नागा पहाड़-क्षेत्र में भेजने के लिए मनोनीत किया गया था।

नागा पहाड़ के निवासी आऊ लोगों के साथ उसका दीर्घकालीन परिचय था। शिवसागर के मिशन में रहने के समय से ही सुवंगमेरंग नामक नागा क्रिश्चियन के साथ उसकी प्रायः भेंट होती थी। सुवंगमेरंग शिवसागर के रेवेरेंड क्लर्क साहब का विशेष प्रिय-पात्र था। उससे ही हेनरी ने नागा पहाड़ के विषय में बहुत कुछ सीखा था। उस समय हेनरी स्कूल में पढ़ता था किंतु शिवसागर मिशन के गधूला ककाइटी के साथ धर्म प्रचार के काम में वह कितनी ही बार नागा पहाड़ के डेका हाइमंगल अंचल में गया था। गधूला ककाइटी फर्राटे के साथ आऊ भाषा बोल सकते थे और उनके साथ रहकर हेनरी ने भी वह भाषा सीख ली थी। पर, गारो पहाड़ जाने के बाद वह उस भाषा के बहुत से शब्द भूल गया था। बाल्य-काल की स्मृति उसे प्रायः नागा पहाड़ की ओर आकर्षित करती थी। एक समय उसकी इच्छा थी कि वह आऊ लोगों के बीच अपने मिशनरी जीवन का आरंभ करेगा किंतु, मिशन के कर्तृपक्ष की उसके विषय में कुछ और ही परिकल्पना थी। इसी कारण उसका सोचा हुआ कार्य नहीं हो पाया। बाद में जब क्लर्क साहब ने डेका हाइमंगल में नया मिशन खोला तो उन्होंने हेनरी को वहां बुला भेजा। पहले तुरा का मिशन हेनरी को जाने देना नहीं चाहता था किंतु बाद में जयंती उत्सव के पहले उन लोगों ने हेनरी को क्लर्क साहब से मिलने के लिए नगांव भेज दिया। नए मिशन में जाने के पहले हेनरी दो दिन शिवसागर में आराम करना चाहता था किंतु जुबिली उत्सव में फिर उसका लौटकर आना संभव नहीं होगा यह सोचकर अंत में उसने नगांव में ही चंद दिन रहने का निश्चय कर लिया।

मिशन में आने के पहले के जीवन की स्मृति हेनरी को न थी। कभी-कभी उसके मन में आता था कि शायद उसके पिता की कुछ भू-संपत्ति रही हो और उससे वंचित करने के उद्देश्य से किसी स्वजन ने उसे लाकर मिशन में दे दिया हो। नहीं तो क्या उस गांव

में एक भी घर ऐसा नहीं था जो उसका लालन-पालन कर सकता। जहां तक उसे याद पड़ता है शिवसागर मिशन में सभी पादरी और मेम उससे बहुत स्नेह करते थे। बचपन से ही उसे मिशन का काम करने के लिए तैयार किया गया था। उसने भी यह कभी नहीं सोचा था कि पृथ्वी पर उसके लिए अन्य कोई काम भी हो सकता है। साहब और मेम लोगों को संतुष्ट करने के लिए ही मानो उसका जन्म हुआ था और उन लोगों की अवज्ञा करना ही उसके लिए सबसे बड़ा अपराध था।

हमेशा साहबों और मेमों के साथ रहने के कारण शायद हेनरी की बोलचाल और वेशभूषा आदि बातों में एक परिपाटी एवं नियमानुवर्तिता दिखाई देती थी। हेनरी को शैशव काल से यह शिक्षा मिली थी कि अपने स्वाभाविक आवेगों को दमन करके व्यक्ति को भद्र एवं गुणी बनना चाहिए। जिस समय उसके गांव के समवयस्क लड़के गमछा पहनकर पोखरी में कूद-कूदकर नहाया करते थे या पेड़ पर चढ़कर कच्चे आम तोड़-तोड़कर खाते थे, उस समय हेनरी स्वच्छ पैंट और शर्ट पहनकर गिरजा में प्रार्थना करने या स्कूल में पढ़ने जाता था। मिशन के बाहर की दुनिया से हेनरी का विशेष परिचय न था। बचपन में कभी कभी वह असमिया गृहस्थ-घरों के फाटक के सामने कुछ दूर खड़ा रहकर देखता रहता था। सांसारिक जीवन के साधारण दृश्य उसे अद्भुत रूप से आकृष्ट करते थे मानो दूर से आती परिचित स्वर लहरी को सुन पा रहा हो। किंतु, घरों के भीतर जाकर बातचीत करने का साहस उसे नहीं होता था। मिशन के अभिभावकगण, बिना उनकी अनुमति के क्रिश्चियन के सिवा किसी अन्य व्यक्ति के घर जाने को मना भी करते थे। अतएव बाहरी संसार उसके लिए निषिद्ध क्षेत्र की तरह था।

हेनरी जब गारो पहाड़ से नगांव के मिशन में आया तो वहां जुबली उत्सव के कार्यक्रम की तैयारी पूरे जोर शोर से चल रही थी। मिशन का दायित्व वहन करने वाले रेवेरेंड मूर और उनकी पत्नी ने हेनरी को उत्सव में असमिया धर्म संगीत के संचालन का भार सौंपा। इस कार्य में उसे सहयोग देने वाली तारा थी। पहले तो हेनरी ने थोड़ी आनाकानी की क्योंकि केवल दो दिनों के लिए नई जगह में आकर वह इतना बड़ा दायित्व लेना नहीं चाहता था, किंतु तारा की कार्यतत्परता और सभी कामों में सुदक्षता को देखकर वह अवाक् रह गया और उसे आश्वासन भी मिला। नगांव में आने के बाद से ही उसके मन में अनेक चिंताएं उद्वेलित हो रही थीं। वे किसी काम में भी एकाग्रचित नहीं हो पा रहा था। तारा के सान्निध्य में रहकर यत्किंचित निर्देश दे देने मात्र से ही वह अपने को उन्मुक्त अनुभव करने लगा था। पहले दिन से ही तारा उसे अच्छी लगी थी। उसकी व्यस्तता, कर्मनिष्ठा और आत्मविश्वास आदि गुणों पर हेनरी मोहित हो गया था। उसके जैसा अल्पभाषी तथा गंभीर व्यक्ति भी तारा के साथ रहकर उन्मुक्त रूप से हंसना, बोलना सीख गया था। स्वयं में घटित इस परिवर्तन पर वह स्वयं अवाक् था।

वास्तव में परिवर्तन का भाव हेनरी के मन में पिछले कुछ दिनों से आ रहा था। इतने दिनों तक उसका संसार अत्यंत संकुचित एवं परम्परागत था। संदेह, संशय और भेदभाव का जन्म उसमें नहीं हुआ था। उसे अपने सब प्रश्नों के उत्तर पादरी और मेम साहबों से ही मिल जाते थे और जिन प्रश्नों के सटीक उत्तर वे नहीं दे सकते थे, वे प्रश्न उसके मन में कदाचित आते भी तो वह उन्हें प्रश्रय नहीं देता था। उसने बचपन से यही सीखा था कि धर्म के क्षेत्र में निर्विवाद विश्वास कर लेना ही प्रकृतभक्त का चिह्न है।

किंतु, इस बार शिलामारी में ऊपरी असम की ओर आने वाले जहाज पर पैर रखते ही उसे लगा कि उसके पांवों के नीचे की धरती डगमगा रही है। लगा कि अपरिचित वायु के झकोरों ने उसके यत्नपूर्वक संवारे केशों को अस्त-व्यस्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त जहाज में प्रवेश करने के एक मुहूर्त पहले तक उसे यह ज्ञात नहीं था कि संसार में इतने परिवर्तन घटित हो रहे हैं। संभवतः हेनरी को मिशनरी समझकर ही जहाज के एक विशेष कक्ष में उसे स्थान दिया गया था। उस कक्ष में दूसरे यात्री थे एक बंगाली सज्जन। हेनरी के केबिन में प्रवेश करने के साथ-साथ सज्जन स्वगत बोले, 'थैंक गॉड'। हेनरी ने भी दीर्घकालीन अभ्यास के अनुसार कह दिया, 'आमेन'। उसके बाद वह अपने सामान को व्यवस्थित करने लगा। अपरिचितों के साथ बात करने में हेनरी को बड़ा असमंजस होता था किंतु, बंगाली सज्जन बहुत खुले स्वभाव के थे। स्वयं आगे बढ़कर हेनरी से हाथ मिलाते हुए उन्होंने अपना परिचय दिया, "मैं राजनारायण चट्टोपाध्याय हूं। कलकत्ता के जनरल एसेम्बली कालेज में अध्यापन करता हूं। आपका नाम सुनकर पहले तो मैं डर गया था। फिरंगी के साथ एक ही केबिन में यात्रा करना कितना मुश्किल है, आप जानते ही हैं। आपका साथ पाकर मुझे खुशी हुई। आप कहां तक जाएंगे?"

"शिलघाट तक, और आप कहां जाएंगे।"

"मैं गुवाहाटी में उतर जाऊंगा। वहां मेरा छोटा भाई सरकारी नौकरी में है। बहुत दिनों से वह मुझे बुला रहा था। सोचा, मां कामाख्या का एक बार दर्शन कर आऊं। आप तो क्रिश्चियन हैं। नहीं तो आपसे ही पूछ लेता कि गुवाहाटी में और कौन-कौन से दर्शनीय मठ मंदिर हैं।" चट्टोपाध्याय ने हंसते-हंसते कहा।

हेनरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल हल्के से मुस्कुरा दिया। चट्टोपाध्याय ने एक पोटली में कड़ापाक के संदेश निकालकर हेनरी की तरफ बढ़ाए।

"खाइए, आपके शिलामारी में इतनी सुंदर मिठाई मिलती है, यह मुझे पता नहीं था।"

हेनरी ने संकोचपूर्वक एक टुकड़ा लेकर उस सज्जन को सविनय धन्यवाद दिया। चट्टोपाध्याय ने भी एक मिठाई मुख में डालकर पास के गिलास से दो घूंट पानी पिया और संतोष की हंसी हंसते हुए पूछा, "मास्टर टामस ! आप कहां के रहने वाले हैं?"

"मैं असम का ही हूं।"

''क्या आपकी मातृभाषा असमिया है? आप तब बंगला भी बोल सकते हैं। सुना है कि दोनों भाषाएं प्रायः समान ही हैं।'' इतनी देर तक दोनों की बातचीत अंग्रेजी में हुई थी। किंतु चट्टोपाध्याय ने अपनी अंतिम बात बंगला में कही। हेनरी बंगला भाषा अच्छी तरह नहीं बोल पाता था। इसलिए उसने अंग्रेजी में ही प्रत्युत्तर दिया।

"देखने में एक जैसी लगने पर भी दोनों भाषाओं में यथेष्ट अंतर है। मैं बंगला अच्छी तरह समझ लेता हूं किंतु बोल नहीं पाता। आप मेरे साथ बंगला में बातचीत कर सकते हैं। मैं भी यथासाध्य बोलने का प्रयास करुंगा।''

इसके बाद दोनों के बीच, एक की तरफ से धारा प्रवाह बंगला में और दूसरे की तरफ से असमिया, बंगला, अंग्रेजी मिश्रित भाषा में, बहुत सी बातें हुईं। साधारणतः हेनरी यात्रा में अपरिचित लोगों के सामने बात नहीं करता था किंतु चट्टोपाध्याय का व्यवहार इतना मधुर था कि कुछ समय में ही हेनरी के साथ बड़ी आत्मीयता से बातें होने लगीं। हेनरी ने भी अपनी स्वाभाविक गंभीरता छोड़कर अपने कामकाज के विषय में दो चार बातें कहनी शुरू कर दीं। चट्टोपाध्याय, हेनरी से गारो पहाड़ के अंचल में धर्मप्रचार की जानकारी के संबंध में दो एक प्रश्न करके हठात् पूछ बैठे, ''अच्छा, मिस्टर टामस ! आप धर्म प्रचार के दौरान सर्व साधारण से क्रिश्चियन धर्म-ग्रहण करने को क्यों कहते हैं?''

"क्योंकि यह विशुद्ध धर्म ही मानव को दुःखों से परित्राण पाने का मार्ग दिखलाता है।'' हेनरी ने तत्काल उत्तर दिया।

"दूसरा कोई धर्म क्या उस तरह किसी का मार्ग-निर्देशन नहीं करता?'' चट्टोपाध्याय के प्रश्न करने की भंगिमा ऐसी थी मानो वे किसी छात्र की मौखिक परीक्षा ले रहे हों।

हेनरी ने अपने अटल विश्वास में संदेह उत्पन्न करने वाली सभी प्रकार की आलोचनाओं से अब तक अपने को बचाकर रखने की चेष्टा की थी। अज्ञानी लोगों द्वारा धर्म के विषय में कोई प्रश्न किए जाने पर उसका उत्तर देने के लिए वह हमेशा प्रस्तुत रहता था किंतु शिक्षित ज्ञानी जन यदि उसके धार्मिक विश्वास को आहत करना चाहते थे तो वह कभी प्रश्रय नहीं देता था। इसीलिए चट्टोपाध्याय के प्रश्न के उत्तर में उसने दृढ़ता से कहा, "मुझे विश्वास है कि एकमात्र क्रिश्चियन धर्म ही मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखला सकता है।"

चट्टोपाध्याय कुछ देर सिर नीचा किए बैठे रहे। हेनरी भी अपने हाथ की 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' पुस्तक के पन्ने उलटता रहा। अपने शैशवकाल में इसका असमिया अनुवाद उसने 'अरुणोदय' पत्रिका में पढ़ा था। अब अंग्रेजी में पढ़ते समय उसे पुस्तक का वास्तविक आनंद मिल रहा था। चट्टोपाध्याय जहाज के रेलिंग को पकड़कर बहुत देर तक ब्रह्मपुत्र की शोभा देखते रहे। इस बार वे हेनरी के साथ बेंच के दूसरे छोर पर बैठकर गंभीर भाव से बोले, "उस समय मेरा प्रश्न सुनकर निश्चय ही आपको बुरा लगा होगा।" हेनरी ने आश्चर्य से चट्टोपाध्याय के मुख की ओर देखा। उन सज्जन ने फिर कहा, "मैं आपके धार्मिक विश्वास

में संदेह करना नहीं चाहता था। आपके सदृश धर्म-कार्य में संलग्न व्यक्ति से मुझे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था। किंतु, कुछ दिनों पूर्व कलकत्ता में मैं एक उच्चकोटि के साधक से मिला था उनका नाम है श्री रामकृष्ण। लोग उन्हें पागल ठाकुर कहते हैं। उनकी बातों को सुनने के बाद से मेरे मन में भारी उथल-पुथल हो रही है। इसीलिए मैंने आपसे यह प्रश्न किया था। राम कृष्ण कहते हैं "जत मत तत पथ" अर्थात् एक परमात्मा को पाने के लिए हम विभिन्न धर्मों, पंथों को अपनाते हैं। किंतु अंत में सभी धर्मों का मार्ग एक गंतव्य स्थल पर जाकर समाप्त होता है।"

हेनरी सारी बातें आश्चर्य से सुन रहा था। "ये साधक हिंदू हैं न?" उसने प्रश्न किया।

"हां हिंदू हैं, किंतु, वे कहते हैं कि गिरजाघर, मस्जिद, मंदिर सभी धर्म स्थानों में उन्होंने प्रार्थना की है पर परिणाम एक ही आया है। रामकृष्ण के दर्शन करने के बाद से मैं भी ऐसा मानने लगा हूं कि सभी धर्म समान हैं और उन सबका लक्ष्य भी एक है।" ये शब्द बोलते हुए उनके नेत्रों और मुख पर दार्शनिक भावों की झलक स्पष्ट हो गई। हेनरी की इच्छा हुई कि उनके साथ और थोड़ी बातचीत करें। एक छोटा बालक जैसे दीवार के छेद से झांक कर निषिद्ध जगत का दृश्य देख रहा हो, वैसे ही हेनरी ने भी उस सज्जन के साथ बातें करते-करते मानो एक विचित्र संसार का संधान पा लिया। किंतु अधिक देर तक वह इस आनंद का उपभोग न कर पाया। जहाज इस बीच गुवाहाटी के समीप पहुंच गया था। चट्टोपाध्याय ने दूर से ही नीलांचल पर्वत की ओर देखकर करबद्ध प्रणाम निवेदित किए। उसके बाद वे अपना सामान ठीक ठाक करने में लग गए।

कलकत्ता से आने वाले काफी यात्री गुवाहाटी में उतर गए। ऊपरी असम की ओर जाने वाले यात्री अगले दिन सुबह जहाज पर चढ़ने वाले थे। रात बिताने के लिए हेनरी जहाज घाट के निकट स्थित गुवाहाटी के बैप्टिष्ट मिशन में चले गए। वहां उसे अपने कई पूर्व-परिचित लोग मिले। शिवसागर से तुरा जाते समय वह हमेशा गुवाहाटी में दो रात रुक जाता था। वहां असम के विभिन्न स्थानों के धर्म प्रचारकों का समागम होता रहता था। यद्यपि शिवसागर के बाद नगांव उनके कार्यों का मुख्य केंद्र था फिर भी, यातायात की सुविधा की दृष्टि से गुवाहाटी का महत्त्व भी कम नहीं था। नगांव के कई निष्ठावान कर्मियों को गुवाहाटी भेजा गया था और गुवाहाटी से भी पादरी लोग नगांव गए थे। नगांव के कान्दुरा नाम के एक स्वदेशी कार्यकर्ता की पत्नी को गुवाहाटी के बालिका-विद्यालय का सुसंचालन करते देखकर हेनरी अवाक रह गया था। इसके पहले इस स्कूल को मिसेज डेन फोर्थ, मिसेज वार्ड, मिसेज स्कर्ट आदि विदेशी महिलाएं चलाती थीं।

हेनरी ने इस बार वहां पहुंचते ही देखा कि मिशन के सभी लोग जयंती उत्सव के कार्यों में उत्साह पूर्वक जुटे हुए थे। रेवरेंड वारडेठ गुवाहाटी मिशन के कामकाज की रिपोर्ट तैयार करने में व्यस्त थे। वे इसे नगांव के जयंती सम्मेलन में पढ़ने वाले थे। चतुर्दिक व्याप्त

व्यस्तता के बीच हेनरी को अकेलापन महसूस होने लगा। तुरा के मिशन के साथ आत्मीयता होते ही उसे स्वयं को नागा पहाड़ के नवीन जीवन में ढालना पड़ा। शिवसागर में भी उसके पहले के परिचित लोग नहीं रह रहे थे। यद्यपि मिशनरी के रूप में उसे यही सिखाया गया था कि जहां भी रहे वहीं अपना घर समझे। किंतु, उस दिन गुवाहाटी में वह मानो अनमना हो गया था। उस दिन रात को बिस्तर पर लेटने के बाद उसे चट्टोपाध्याय की बातें याद आने लगीं। जिनको अब तक वह अधर्मी मानता आया है, क्या उनके बीच भी सचमुच शुद्ध मार्ग पर चलने वाले लोग हैं? सभी धर्मों का लक्ष्य यदि एक ही है तो फिर अन्य धर्मों का ज्ञान प्राप्त करने में क्या कोई आपत्ति हो सकती है? यही सब सोचते-सोचते उसे बहुत देर तक नींद नहीं आई।

दूसरे दिन सबेरे उठने में उसे थोड़ी देर हो गई। जल्दी-जल्दी जहाज घाट पर पहुंच कर पता लगा कि जहाज छूटने में बस कुछ ही देर है। हेनरी अपना सामान जहाज के केबिन में ही छोड़ गया था। किंतु, उसने आकर देखा कि किसी ने सारा सामान बाहर निकाल कर रख दिया है। पास में खड़े, जहाज के एक खलासी से पूछने पर उसने बतलाया कि गुवाहाटी से एक साहब और उनकी मेम जहाज पर सवार हुए हैं। उनके लिए केबिन को साफ कराया गया है, हेनरी किसी दूसरी जगह जाकर बैठ जाए। निरुपाय हेनरी अपना सामान उठाकर नीचे द्वितीय श्रेणी के यात्रियों के साथ बेंच के एक किनारे पर बैठ गया। सामने बेंच पर धर्मकांत बैठा था। खलासी के साथ हुए हेनरी के वार्तालाप को उसने नहीं सुना था फिर भी, उसे घटना का अनुमान हो गया था। बिना कोई प्रतिवाद किए हेनरी ने अन्याय को सहन कर लिया, यह देखकर मन ही मन उसे क्रोध आ रहा था। हेनरी के सामने बैठते ही उसने पूछा,

"आपके पास प्रथम श्रेणी का टिकट है न? आपको ऊपर केबिन में ही स्थान मिलना चाहिए था।"

''हां, शिलामारी से ही केबिन में आया था, अब एक साहब और उनकी मेम के लिए मुझे यह सीट छोड़ देनी पड़ी। इससे मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। शिलघाट तक मात्र एक दिन का ही तो रास्ता है।" हेनरी ने सहज भाव से कहा।

"एक दिन का रास्ता हो या एक घंटे का। आपको इतनी आसानी से अपनी सीट नहीं छोड़नी चाहिए थी। आप पहले से ही इस केबिन में यात्रा कर रहे थे। आपकी सीट खाली नहीं थी तो साहब और मेम को टिकट देना ही नहीं चाहिए था।'' उत्तेजना वश धर्मकांत की आवाज तेज हो गई थी। हेनरी ने फिर शांत भाव से हंसकर कहा, "क्या करें कोई उपाय नहीं। साहबों का अधिकार हमसे ज्यादा है।"

धर्मकांत का पहले का क्रोध फिर प्रकट हो गया। पास के यात्रियों को लक्ष्य करके लंबी-चौड़ी वक्तृता देने के स्वर में उसने कहना आरंभ किया, "हम भारतीय इसी तरह अपने

अधिकार छोड़ते जा रहे हैं। आज रेल-जहाज की सीट, कल अपना घर और परसों समूचे देश को ही विदेशियों के हाथ सौंप देने में हमें थोड़ा भी कुंठा बोध नहीं होगा। हमारे देश से सारी सुविधाएं और धन संपदा लूटकर विदेशी धनी हो गए और हम फिर भी अपने अधिकार के विषय में सजग नहीं हुए। इसी तरह चलता रहा तो एक दिन सब कुछ स्वाहा हो जाएगा।"

धर्मकांत की बातें सुनकर हेनरी अवाक् रह गया। मन ही मन भयभीत भी हुआ। इस तरह की बातें स्पष्ट रूप में उसने अब तक किसी के मुख से नहीं सुनी थी। गौरांग साहबों और मेमों को आदर-भाव से देखना ही हेनरी ने बचपन से सीखा था। वह समझता था कि उनके समान दयालु, गुणी और ज्ञानी लोग संसार में दूसरे नहीं हैं। अंग्रेज देश की धन-संपदा लूट रहे हैं, यह उसने कभी नहीं सोचा था। और लोग ऐसा सोच सकते हैं, यह भी उसके लिए कल्पनातीत था किंतु उस दिन वह अपनी भूल समझ गया। धर्मकांत की बातों के समर्थन में पास के दो चार व्यक्तियों ने भी अपना सिर हिलाया। एक ने धर्मकांत की ओर देखकर कहा, "सुना है कि कलकत्ता, बम्बई आदि शहरों में स्वदेश के अनेक विद्वानों ने मिलकर अपने अधिकारों की मांग के लिए कोई समिति बनाई है।"

"हां पिछले वर्ष बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नामक एक संस्था बनी थी। इस वर्ष इसका अधिवेशन कलकत्ता में हुआ है। हमारे यहां से भी कई सदस्य वहां गए थे। यह सभा क्रमशः संपूर्ण देश की जनता के लिए काम कर सकेगी।" धर्मकांत के वक्तव्य में विश्वास और उत्साह व्यक्त हो रहे थे। उसकी बातों को सुनकर पास में बैठे हुए कुछ यात्रियों के मन में आशा का संचार हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि मानो कोई बड़ा परिवर्तन आने वाला है। हेनरी पहले इन बातों को सुनकर परेशानी का अनुभव कर रहा था। उसके कारण ही इस अवांछित आलोचना का सूत्रपात हुआ, यह बात उसे विचलित कर रही थी। अंग्रेजों के विरुद्ध उसके मन में कभी कोई बुरा विचार नहीं आया था किंतु धर्मकांत की बातों से उसे पता चला कि दूसरी तरह से सोचने वाले लोग भी बहुत हैं। जहाज के केबिन से निकाल दिए जाने के कारण उसके मन में जो असंतोष अथवा क्रोध के भाव उदय हुए थे, उन्हें वह साधारण परिस्थिति में सहज ही सहन कर लेता। किंतु, उस दिन मानों धर्मकांत ने ही उसे अपने आंतरिक व्यक्तित्व के प्रति जाग्रत कर दिया। प्रतिवाद करने की अपनी अक्षमता के कारण उसने भीषण अपमान का अनुभव किया।

## 14

नगांव के मिशन में पैर रखने के साथ-साथ हेनरी के मन में नाना चिंताएं घिरने लगीं। यद्यपि अपने दायित्व का पालन वह पूर्ववत् करता रहा, फिर भी अपने मन पर उसका नियंत्रण

कम हो गया। इसके पहले उसके समक्ष मात्र एक ही मार्ग था—सीधा-स्वच्छ मार्ग। अब जैसे हठात उसने इस तथ्य को खोज लिया कि अब तक उसने अपने आसपास की वस्तुओं को देखा ही नहीं था। स्वयं का व्यक्तित्व उसे अधूरा लगने लगा। तारा से मिलने के बाद मानो उसके अस्त-व्यस्त भावों ने और अधिक गंभीर रूप ले लिया। प्रथम दिन से ही वह तारा के प्रति आकृष्ट हो गया था। उसके व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित आत्म-विश्वास और प्रत्येक कार्य को मन-प्राण देकर करने की उसकी क्षमता को देखकर वह स्वयं को अत्यधिक दुर्बल अनुभव कर रहा था। एक दिन तारा ने हंसी-हंसी में उससे पूछा, "मिस्टर टामस! आप इतने गंभीर क्यों रहते हैं? आपके सान्निध्य में मैं अपने को बहुत हीन अनुभव करती हूं।"

हेनरी ने थोड़ा सकुचाते हुए कहा, "मैं सदा से ऐसा ही हूं। मिशनरी होकर अधिक हास-परिहास करना शोभा नहीं देता।"

"मिशनरी लोग क्या मनुष्य नहीं होते? मनुष्य हास-परिहास करेगा ही। हमेशा नहीं, तो कभी-कभी।''

"तुम्हारे साथ रहकर मेरा मन भी हंसने को करता है", हेनरी यह बात कहकर हठात सजग हो गया। उसके बाद फिर गंभीरता पूर्वक बोला, "वास्तव में इधर कई दिनों से मेरा मन ठीक नहीं है। बहुत चिंतित रहता हूं। यह सब मैं तुम्हें नहीं बता सकता।"

बाद में हेनरी ने तारा को अपने जीवन की बहुत सी बातें बतलाईं। अपने मन में उत्पन्न नई दुविधा और संशय के विषय में भी उसे थोड़ा आभास दिया। किंतु, स्पष्ट रूप से कुछ इसलिए नहीं कहा था कि कहीं उसका धर्म-विश्वासी मन उसे गलत न समझ लें। एक दिन जयंती उत्सव की सामूहिक प्रार्थना के बाद जब वे दोनों एक साथ तारा के घर की ओर जा रहे थे तो हेनरी हठात कह उठा, "तारा! हमारा कोई मूल नहीं है, समझीं।" तारा अवाक होकर हेनरी की ओर देखती हुई बोली, "क्या मनुष्य का भी कोई मूल होता है?"

"सच कहती हो, क्लर्क साहब, गार्नी साहब, मूर साहब— इन सब लोगों का मूल अपने देश में है। किंतु, हमारा कहां है?"

"क्यों, हमारा मूल इसी देश में है, अपने धर्म में है", तारा ने दृढ़ता से कहा। हेनरी ने अस्वीकृति में अपना सिर हिलाया, "नहीं, हमारा मूल है किंतु केवल ऊपर ही ऊपर, तल तक नहीं। अपने देश के साथ हम क्या संपर्क रखते हैं? यहां की सभ्यता, धर्म, गान-भजन सभी को हम बुरा कहते हैं, शैतान की सृष्टि मानते हैं।"

"किंतु हमारा धर्म!,'' तारा ने असहाय भाव से पूछा।

"धर्म भी शून्य में टंगा नहीं रह सकता। धर्म को भी जीवित रहने के लिए मूल चाहिए।"

उत्तर में तारा ने कुछ नहीं कहा था। उसके मन में बहुत बार संदेह के अनेक भाव आए थे। किंतु उन्हें प्रश्रय देना उसने आवश्यक नहीं समझा था। स्वर्ण, धर्मकांत और लक्ष्मी

के साथ बात करते समय तारा के मन में यह धारणा होती थी कि पादरी लोग जिन्हें अधर्मी मानकर हेय दृष्टि से देखते हैं, उन लोगों की प्रथाएं, परंपराएं तथा भाषा निकाल बाहर कर देने योग्य वस्तुएं नहीं हैं। हेनरी की भाषा में, उन लोगों की मानों गहरी जड़ें हैं, इसी देश में। वे लोग अपनों के लिए जो करना चाहते हैं और पादरी लोग जो करना चाहते हैं, उसमें बहुत अंतर है। तारा ने इस तरह की बातों पर कभी गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया, किंतु, उन्हें हृदयंगम अवश्य किया, हेनरी को आश्वासन देने के उद्देश्य से तारा ने कहा, "हम भी तो इसी देश के निवासी हैं, हमारी जड़ें भी निश्चित रूप से यहीं की मिट्टी में है। खोज करने पर मिल जाएंगी," तारा ने स्वाभाविक आत्मविश्वास के साथ कहा।

जुबिली-कांफ्रेंस के बाद रेवेरेंड क्लर्क साहब ने नागा पहाड़ वापस जाते समय हेनरी को अपने साथ ले जाने के लिए जोर नहीं दिया। हो सकता है कि तारा और हेनरी के पारस्परिक प्रेम-व्यवहार को देखकर वे समझ गए थे कि हेनरी कुछ दिन नगांव में रहना चाहेगा। हेनरी भी अपने जाने या न जाने के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कह सका था। वह क्या करना चाहता है, उसे स्वयं भी पता नहीं था। वह इस पर विचार करने का समय चाहता था। मिशन के सारे पादरी लोग इस विषय में सहानुभूतिशील थे। उनकी धारणा थी कि हेनरी और तारा का विवाह हो जाने पर वे दोनों और भी अधिक अच्छी तरह मिशन का काम कर सकेंगे।

तारा के साथ हेनरी कई बार गोलापी के पास गया था। उनके करीने से सजे घर का परिवेश उसे बहुत अच्छा लगा था। एक दिन दोनों गोलापी के पास बैठकर जयंती उत्सव की बात कर रहे थे कि गोलापी हेनरी का हाथ पकड़कर कांपती आवाज में बोली, "बेटा, तारा के लिए मुझे बहुत चिंता रहती है। मेरे मर जाने पर उसका क्या होगा? तुम उसका दायित्व वहन करोगे न?"

हेनरी थोड़ा अकचका गया। तारा और हेनरी एक दूसरे को प्यार करते थे किंतु विवाह-संबंध के बारे में उन्होंने कभी स्पष्ट बातें नहीं की थीं। गोलापी के सीधे प्रश्न पर संकुचित होकर हेनरी ने अपना सिर झुका लिया और लजाते हुए हंसकर कहा, ''अरे, तारा तो अपना दायित्व स्वयं संभाल सकती है, मैं उसका भार क्या लूंगा?" गोलापी अवाक होकर हेनरी को देखने लगी। कांपती हुई आवाज में उसने कहा, "इसका अर्थ है कि तुम तारा से विवाह नहीं करोगे?"

हेनरी समझ गया कि गोलापी ने उसे गलत समझा है। जल्दी से अपने को सुधारने की चेष्टा करते हुए उसने कहा, "नहीं-नहीं, मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा है। तारा के साथ विवाह करके मैं अपने को धन्य समझूंगा। किंतु, उसकी क्या इच्छा है?''

हेनरी की हालत देखकर तारा को हंसी आ गई। परिस्थिति को संभालते हुए हेनरी की तरफ देखकर दुष्ट हंसी हंसती हुई बोली, "मां की अभिलाषा पूरी हुई, नहीं? अब कौन

किसका भार उठाएगा?"

गोलापी के चेहरे की मुस्कराहट में संतोष झलकने लगा, किंतु तारा और हेनरी को लग रहा था कि उनके सामने अनगिनत समस्याएं आ गई हैं। विवाह करने मात्र से इन समस्याओं का समाधान नहीं होगा। उस दिन हेनरी और तारा ने सामने की पुष्पवाटिका में बैठकर अपने भावी जीवन के संबंध में अनेक योजनाएं बनाईं। हेनरी ने मुलुंग जाने की इच्छा छोड़ दी थी, पर केवल तारा के सान्निध्य के कारण नहीं। वे दोनों ही कई कारणों से मिशन के कामों से छुटकारा चाहते थे। दो दिनों पूर्व समाप्त हुए जयंती सम्मेलन में दूर दराज से आए पादरियों और मेमों को एक साथ देखने का उन्हें अवसर मिला था और कई दिनों तक उनको निकट से देखने के बाद उन्होंने अनुभव किया था कि देशी क्रिश्चियन और पादरी लोगों के बीच बहुत फर्क है। यद्यपि पादरियों का व्यवहार तारा और हेनरी इत्यादि के साथ अत्यंत भद्र, निष्कपट और भ्रातृ सुलभ था, किंतु उन्हें ऐसा लगा कि उन श्वेतांग लोगों ने अपने व्यक्तित्व के केवल एक अंश को ही उनके सामने प्रकट किया। ठीक उसी तरह, जिस तरह चंद्रमा एक ओर की ही पृथ्वी को आलोकित करता है। जयंती उत्सव के दौरान तारा और हेनरी क्षणिक प्रकाश में मानो तब उनके व्यक्तित्व के रहस्यमय अंग को देख पाए थे जब वे अत्यंत आत्मीयता से अपने बीच भावनाओं का आदान-प्रदान करते थे। वे लोग एक साथ मिल बैठकर अपनी मातृभूमि अमेरिका की अथवा अपने किसी परिचित दूरस्थ मित्र की बातें करते थे, जिसको तारा आदि नहीं पहचानते थे। ऐसे समय में तारा और हेनरी अपने को असहाय अनुभव करते थे। हां, उनकी उपस्थिति में साहब लोग अधिकतर ये सब बातें नहीं करते थे। किंतु न करने के कारण ही, कभी-कभी दूर से एक दो बातें सुनकर वे अनुभव करते थे कि जिस शक्ति ने इन गोरे लोगों को अपनी सुख-शांति का त्याग कर धर्म-प्रचार के लिए अपने जीवन की आहुति देने के लिए अनुप्राणित किया था, वह शक्ति उन्हें मात्र धर्म से ही प्राप्त नहीं हुई थी अपितु अपनी संस्कृति और सभ्यता से भी मिली थी। उनको देखकर तारा और हेनरी ने निश्चय किया कि जब तक वे अपने को सब तरह से योग्य नहीं बना लेते, तब तक मिशन से बाहर रहकर जनता की सेवा करेंगे, देश को जानने और समझने की चेष्टा करेंगे। तारा ने नगांव के सरकारी अस्पताल में नर्स का काम करने का निर्णय लिया। उसने ब्रन्सन साहब के साथ अमेरिका जाकर नर्स का प्रशिक्षण लिया था।

हेनरी की इच्छा कलकत्ता जाकर बी.ए. पढ़ने की थी। जहाज में धर्मकांत से मिलने के बाद एक दिन बिल्व कुटीर में उससे मिलकर हेनरी ने इस विषय पर बातचीत की थी। कई वर्ष पहले शिवसागर हाई स्कूल से एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद हेनरी ने पढ़ाई छोड़ दी थी। अब अपनी इच्छा और तारा के आग्रह से वह पुनः छात्र-जीवन आरंभ करने के लिए उत्साहित हुआ था। गुणाभिराम ने हेनरी को उत्साहित करते हुए कहा था कि

क्रिश्चियन छात्रों को मिलने वाली विशेष छात्रवृत्ति लेकर वह कलकत्ता के क्रिश्चियन होस्टल में रहकर पढ़ सकता है। इसी आशा से उसने अपने नवीन जीवन का आरंभ करने की योजना बनानी शुरू कर दी।

## 15

गुणाभिराम के कलकत्ता वाले भाड़ाघर में अभी तक विवाह की चहल-पहल आरंभ नहीं हुई थी। इस विवाह की तैयारी में न तो छः महीने पहले से पाट का कपड़ा बुनने की जरूरत थी और न नरम चावल, दही-दूध और गुड़ की ढेली इकट्ठी करने की ही जरूरत थी। विवाह का निमंत्रण देने के लिए सुपारी, पान, शराई और शराई के ढक्कन आदि की भी आवश्यकता न थी। पानी खींचने के लिए ढेकली, कलश, दुनरि, घट, जोरान, स्वागत के लिए चालनी, चटाई आदि किसी चीज का प्रयोजन न था। यह विवाह पूरी तरह ब्राह्म रीति के अनुसार होगा। वैदिक अनुष्ठान आदि का दायित्व ब्राह्म समाजी लेंगे। इसके सिवाए अन्य कोई आडंबर किए जाने की बात नहीं थी। इसलिए विष्णुप्रिया को करने लायक काम कुछ खास नहीं था। इस तरह के आयोजनहीन विवाह के कारण उन्हें अच्छा ही लगना चाहिए था किंतु, उनको सूना-सूना अनुभव हो रहा था। इसके अतिरिक्त बहुत पहले जब उन्होंने कालीप्रिया और दमयन्ती का विवाह किया था तो उस समय हजार झंझटों का सामना करते हुए भी वे कन्या की मां होने के आनंद में सारे कष्ट भूल गई थीं। कालीप्रिया और दमयन्ती की तुलना में उनकी यह कन्या स्वर्ण, रूप-गुण आदि में अधिक सुदर्शना है तो भी उसके लिए पूरे असम में सुयोग्य वर नहीं मिल सका। विष्णुप्रिया लोगों की दृष्टि बचाकर बीच-बीच में लंबी आहें भरने लगती थी। उसकी तीव्र इच्छा थी कि स्वर्ण का विवाह किसी अच्छे असमिया लड़के के साथ संपन्न हो। किंतु, जब महर्षि देवेन्द्रनाथ जैसे बंग के एक अग्रगण्य ब्राह्मसमाजी नेता ने ही स्वर्ण को अपने घर की बहू बनाने में आपत्ति की तो विष्णुप्रिया का भ्रम दूर हो गया। उच्च शिक्षित और महान आदर्शवादी व्यक्ति भी बहुत बार अपने कार्य-कलापों में उदार-मनोवृत्ति अपनाने में कुंठा-बोध करते हैं। इसलिए स्वर्ण के साथ विवाह करने के लिए प्रस्तुत लड़के के प्रति विष्णुप्रिया का हृदय कृतज्ञता से भर गया। नंद कुमार राय देखने में जितने सुंदर थे, गुणों में भी उतने दैदीप्यमान थे। उस समय विलायत से उच्च शिक्षा प्राप्त डाक्टर असम में तो था ही नहीं, बंगाल में भी केवल दो एक ही थे। इस विवाह की बात कलकत्ता में जिसने भी सुनी, उसी ने कहा, "अपूर्व सुंदर जोड़ी"। प्रत्येक व्यक्ति ने गुणाभिराम और विष्णुप्रिया को हार्दिक अभिनंदन ज्ञापित किया था। विष्णुप्रिया ने थोड़ा मुस्कुराते हुए कहा था, "आप सब लोग आशीर्वाद दीजिए कि उसका जीवन सुखी हो, हमें और क्या चाहिए?"

विवाह को मात्र एक महीना बाकी था। इस बीच गुणाभिराम छुट्टी लेकर कलकत्ता आ गए थे। उनकी इच्छा थी कि विवाह होते ही वे विष्णुप्रिया और बच्चों को नगांव ले जाएंगे। विवाहोपरांत विष्णुप्रिया को कलकत्ता में रहने की जरूरत नहीं है। उनका अपना सेवाकाल समाप्तप्राय था, सेवा-निवृत्ति के पश्चात वे कलकत्ता में मकान बनाकर वहीं स्थायी रूप से निवास करना चाहते थे।

कलकत्ता आने पर बरुआ किताबों की पुरानी दुकान पर एक बार अवश्य जाते थे। कोई आवश्यक किताब दिख जाती, तो दो-एक खरीद लेते थे। किंतु, किताब खरीदने से भी अधिक आकर्षण उन्हें अपने पुराने मित्रों से भेंट करने का था। वहां कोई न कोई बंधु उन्हें अवश्य मिल जाता था। उस दिन गुणाभिराम की भेंट जिस मित्र से हुई उनके प्रति गुणाभिराम के मन में असीम श्रद्धा थी। अपने से आयु में छोटे होने पर भी उस असमिया युवक को बंगदेश के विशिष्ट पंडितों में अन्यतम माना जाता था। प्रायः दस बारह वर्ष पहले जब यह युवक शिवसागर में असिस्टेंट कमिश्नर थे तो गुणाभिराम से उनका प्रथम परिचय हुआ था। उस समय इन दोनों ने असम और असमिया भाषा-साहित्य की उन्नति के विषय में बहुत सारी बातें की थीं। तब दोनों के मन में अपार आशा और उत्साह था। उसके बाद दोनों सरकारी सेवा में अन्य स्थान पर बदली होकर चले गए और फिर दोनों का पारस्परिक मिलन नहीं हो पाया। उस दिन आढ्या की दुकान पर दोनों की मुलाकात होने पर गुणाभिराम उस युवक मित्र को स्नेह और सम्मान के साथ अपने घर बुलाकर ले गए। अपनी पत्नी और पुत्री को बुलाकर उन्होंने युवक से उनका परिचय कराया और कहा, "ये हैं नोआखाली के मजिस्ट्रेट और कलकत्ता विश्वविद्यालय के फेलो 'श्री युत आनंद राम बरुआ'। इन्होंने ही असम से सर्वप्रथम आई.सी.एस. परीक्षा उत्तीर्ण की है।"

विष्णुप्रिया और स्वर्ण दोनों ने श्रद्धापूर्वक उन्हें नमस्कार किया। गुणाभिराम ने स्वर्ण को दिखाकर थोड़ा गर्व के साथ उनसे कहा, "यह मेरी कन्या स्वर्णलता है। वर्तमान में यह बेथुन स्कूल की छात्रा है।"

आनंदराम बरुआ ने थोड़े अप्रस्तुत भाव से स्वर्ण के मुख की ओर देखा। अब तक उन्होंने उसे अच्छी तरह नहीं देखा था। अनवरत अध्ययन लेखन में व्यस्त रहने वाले शांत प्रकृति के इस व्यक्ति को जीवन में कभी स्त्री विषयक जिज्ञासा नहीं हुई थी। किंतु आज स्वर्ण को देखकर हठात उनमें विद्युत-संचार हो गया। वे अवाक होकर अस्वाभाविक देरी तक स्वर्ण को देखते रहे। उन्होंने इतना रूप-लावण्य पहले कभी नहीं देखा था। उनकी उस विस्मय-विमुग्ध दृष्टि को सहन न कर पाने से स्वर्ण ने लजाकर अपना सिर नीचे झुका लिया। आनंदराम भी मानो हठात् जागरूक हो गए। परिस्थिति को बदलने के उद्देश्य से उन्होंने जल्दी से पूछ लिया, "बेथुन स्कूल में आजकल बहुत लड़कियां पढ़ती हैं न?"

"पहले से छात्राओं की संख्या बढ़ी है किंतु अधिकांश छात्राएं अपनी पढ़ाई अधूरी

छोड़ देती हैं।" स्वर्ण ने सकुचाते-सकुचाते कहा, "क्यों छोड़ देती हैं? क्या स्कूल अच्छा नहीं है?," आनंदराम ने अवाक होकर पूछा।

"नहीं, पढ़ाई पूरी होने के पहले ही अधिकांश लड़कियों का विवाह हो जाता है।" स्वर्ण ने अपनी बात् कहने के बाद मां की ओर देखकर सिर नीचा कर लिया। आनंदराम कुछ देर तक शर्म से लाल हुए उसके मुख को देखते रहे। फिर मां और बेटी दोनों जलपान की व्यवस्था करने के लिए घर के भीतर चली गईं।

उस दिन गुणाभिराम ने आनंदराम के साथ बहुत देर तक बातें कीं। शिक्षा के क्षेत्र में असम के पिछड़ेपन, शासन व्यवस्था की त्रुटियों और विशेषतः संस्कृत शिक्षा के विषय में दोनों पारस्परिक विचार विनिमय करते रहे। आनंदराम ने अपनी विशाल परिकल्पनाओं का थोड़ा आभास दिया। 'अमर कोष' की टीका का कार्य संपूर्ण हो जाने पर वे अविलंब संस्कृत भाषा के वृहद् व्याकरण के काम में लग जाएंगे। बारह खंड वाले व्याकरण के अभी मात्र दस खंड प्रकाशित हुए हैं। बाकी के दो ख़ंडों को पूरा करने का समय अब तक उनको नहीं मिला। सरकारी सेवा के गुरुतर दायित्व का भार वहन करते हुए इस प्रकार का बौद्धिक कार्य आदि कर पाना कितना दुष्कर है, यह बात उन्होंने गुणाभिराम के सम्मुख खेद के साथ व्यक्त की।

इस पांडित्यपूर्ण आलोचना में विष्णुप्रिया और स्वर्ण भाग नहीं ले सकी थीं। किंतु मूक श्रोता बने रहने पर भी उन्होंने उस दिन अपने को धन्य माना। स्वर्ण ने अपने पिता के मुख से पहले भी आनंदराम बरुआ के बारे में सुना था। उनको विश्वास नहीं हो रहा था कि गिलक्रिष्ट छात्रवृत्ति और आई.सी.एस. पाने वाला यह अगाध पंडित इतना नम्र और निश्छल होगा। उस दिन अपराह्न समय आनंदराम भी बीच-बीच में थोड़ा अन्यमनस्क से हो गए थे। उन्हें लग रहा था कि उनके निर्जन और एकाकी संसार को किसी अप्रत्याशित बसंत की बयार ने उन्मत्त बना दिया है।

उस दिन ग्रेट इस्टर्न होटल के अपने कमरे की खिड़की के पास बैठकर आनंदराम बहुत रात तक किसी मधुर चिंतन में विभोर थे। पास ही मेज पर उनका प्रियग्रंथ 'अमरकोष' उपेक्षित पड़ा था। अन्य दिनों में बहुत रात तक वे उस कार्य में व्यस्त रहा करते थे। किंतु, उस दिन कलकत्ता महानगरी के जगमग करते हुए प्रदीप उन्हें एक स्वर्णिम स्वप्न लोक में ले गए थे।

दो दिन बाद आनंदराम के मित्र शिवराम बरा विवाह का प्रस्ताव लेकर गुणाभिराम के पास आए। उनकी बात सुनकर गुणाभिराम ने लंबी सांस खींचकर सिर नीचा कर लिया। विष्णुप्रिया भी आंखों में आंसू भरकर बोली, "क्या ही अच्छा होता यदि यह प्रस्ताव दो महीने पहले आता। इसी से कहते हैं कि किसका दाना पानी कहां बदा है, यह केवल ईश्वर ही जानते हैं।"

गुणाभिराम ने शिवराम बरा से हाथ जोड़कर कहा, "बरुआ जी से कहिएगा कि उन्हें विमुख करते हुए मैं अत्यंत दुःखी हूं। यदि मैं यह पहले से जानता तो मेरे समान सुखी कोई दूसरा नहीं होता। किंतु क्या करूं? मेरी बेटी के विवाह की सारी तैयारियां हो चुकी हैं। बरा महोदय ! मेरी प्रार्थना है कि आप बरुआ के लिए कोई सुकन्या खोज दीजिए। उनके समान गुणी व्यक्ति का संसार सुखमय होने पर हम सभी आनंदित होंगे।"

शिवराम बरा भी म्लान हंसी हंसते हुए गर्दन हिलाकर बोले, "मुझे आशा नहीं है कि वे फिर से कभी अपनी इच्छा को व्यक्त करेंगे। इतने वर्षों बाद इस बार ही इस विषय में उन्होंने अपनी सम्मति प्रदान की थी।"

स्वर्ण के विवाह का दिन निकट आ रहा था। विवाह की व्यस्तता के बीच गुणाभिराम और विष्णुप्रिया आनंदराम के प्रस्ताव को भूलने का प्रयास कर रहे थे। हां, स्वर्ण को इन सब बातों की कुछ खबर नहीं थी। माता-पिता ने ही जानबूझकर उसे नहीं बतलाया था। बिना मतलब उसके मन को अशांत करने से कुछ लाभ न था। आनंदराम बरुआ की मधुर दृष्टि का स्मरण उसे हो आता था। किंतु उस दिन की संध्या में हुए रवीन्द्रनाथ से दृष्टि मिलन की स्मृति आने पर कुछ क्षणों के लिए उसके हृदय में कंपन होने लगता था। आनंदराम बरुआ के विषय में उसे वैसी अनुभूति नहीं हुई। यद्यपि उनकी आयु अधिक न थी पर स्वर्ण ने उन्हें अपने पिता के मित्रों की श्रेणी में रख छोड़ा था। अपने पिता के सभी बंधु स्वर्ण की दृष्टि में एक जैसे विदग्ध पंडित, उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी और समाज में अग्रगण्य थे। इन लोगों के प्रति गंभीर श्रद्धा के अतिरिक्त अन्य कोई भावना रखना स्वर्ण के लिए असंभव था। उसके भावी पति डॉ. नंद कुमार राय भी विद्वान व्यक्ति थे। वे सुवक्ता थे, गायन तथा कविता-आवृत्ति भी कर सकते थे। इतने जीवंत व्यक्ति को स्वर्ण ने पहले कभी नहीं देखा था। उसके हृदय-सिंहासन पर एकमात्र वे ही विराजमान थे।

विवाह आंडबरहीन रूप में तथा पूर्णतया वैदिक नियमों के अनुसार संपन्न हुआ। अनेक आनुषंगिक अनुष्ठानों को छोड़ देने के कारण वैवाहिक कार्य मात्र दो घंटे के भीतर पूरा हो गया था। निमंत्रित अतिथियों में अधिकांश कलकत्ता के ब्राह्म समाजी जन थे, इसलिए प्राच्य और पाश्चात्य रुचि-नियमों का अपूर्व सम्मिश्रण दिखाई पड़ता था। जोड़ासांकू के ठाकुर परिवार के प्रतिनिधि के रूप में रवीन्द्रनाथ विवाह में सम्मिलित हुए थे। उनके साथ उनकी पत्नी मृणालिनी थी। वधू वेश में सजी स्वर्ण को देखकर वे क्या सोच रहे थे कौन जाने? स्वर्ण ने मुस्कुरा कर जब उन्हें नमस्कार किया तो उन्होंने भी प्रतिनमस्कार किया। किंतु, उस दिन स्वर्ण के सौंदर्य को देखकर, भले ही एक ही मुहूर्त के लिए क्यों न हो, कवि के नेत्रों में और आनन पर मानो विषाद की छाया झलक उठी। वे विदा लेकर शीघ्र ही विवाह गृह से चले गए। संभव है उन्हें एक विगत संगीत-संध्या का स्मरण हो आया हो जिसकी स्मृतियां उनके हृदय के किसी निभृत कोने में संचित थीं, ठीक उनके गीत की

भावनाओं के अनुरूप, "सिक्ते यूथर गंध वेदनार।"

विवाह में कलकत्ता के असमिया लड़कों के मेस से भी कई लड़के आए थे। जो सुदर्शन युवक, अतिथियों को बुलाकर भीतर ले जा रहा था वह विष्णुप्रिया का संबंध में मामा लगता था। उसका नाम लक्ष्मीनाथ बेजवरुआ था। उस दिन बहुतों ने इस दर्शनीय युवक के ऊपर नजर डाली थी। कोई सुंदर लड़का दिखने पर बहुतों का मन होता है कि किसी तरह अपने स्वजन अथवा परिचित की लड़की के साथ उसका विवाह तय करा दिया जाए। उस दिन गुणाभिराम ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ लक्ष्मीनाथ का परिचय करा दिया था। प्रथम परिचय में ही दोनों ने बहुत देर तक बातें की थीं।

इस दैदीप्यमान संध्या की श्रीवृद्धि के लिए एक और भास्वत नक्षत्र वहां पर गए थे, जिनके आगमन पर गुणाभिराम बरुआ से लेकर वहां उपस्थित सभी असमिया जन व्यस्त हो गए। आनंदराम बरुआ का नाम, सभी असमिया छात्रों ने सुन रखा था किंतु अधिकांश को उनके दर्शन का सौभाग्य उसी दिन प्राप्त हुआ था। उन्होंने अल्प संकुचित भाव से वधू के हाथों में उपहार की एक छोटी डिबिया थमा दी। उसके भीतर एक जोड़ा अति सुंदर सोने का कर्णफूल था। वे स्वर्ण से कुछ कहना चाहते थे पर फिर बिना कुछ कहे ही चले गए थे। सबने यही समझा था कि अपने मितभाषी स्वभाव के कारण ही उन्होंने कुछ नहीं कहा है। किंतु स्वर्ण ने उनके मुख पर के विषाद-भाव को लक्ष्य किया था और उसके अंतर का नारी-हृदय मानो एक मुहूर्त्त के लिए चकित हो गया था। स्वर्ण के विवाह के दूसरे दिन ही यह शांत प्रकृतिशील, निस्संग व्यक्ति नोआखाली चला गया। तब कौन जानता था कि इसके ठीक तीन वर्ष बाद उस महापुरुष का कलकत्ता में स्वर्गवास हो जाएगा।

स्वर्ण ने अपने विवाह पर एक और उपहार पाया था, कपड़े पर सुई से की गई महीन कढ़ाई के फूलों वाला एक टेबुल क्लाथ। तारा ने यह मेजपोश स्वयं बनाकर हेनरी के हाथों भेजा था। हेनरी ने कलकत्ता के एक कॉलेज में नाम लिखा लिया था। वह एक क्रिश्चियन बोर्डिंग में रहता था। तारा के साथ उसका विवाह होने के दो महीने बाद ही गोलापी की मृत्यु हो गई थी। मातृविहीना होकर भी तारा ने आग्रह पूर्वक हेनरी को पढ़ने के लिए कलकत्ता भेज दिया था। अपना अकेलापन दूर करने के लिए उसने अपने घर में एक बोर्डिंग खोलकर मिशन की छः लड़कियों को रख लिया था। इन लड़कियों को पहले बापूराम नामक एक क्रिश्चियन के घर में बोर्डर के रूप में रखा गया था। बापूराम की पत्नी उनकी मेट्रन थी। किंतु बापूराम की पत्नी की हठात मृत्यु हो जाने के कारण तारा ने कुछ दिनों के लिए इस दायित्व को लेना स्वीकार कर लिया था। इसी बीच मिशन की ओर से भी एक छात्रावास बनाने की योजना बनाई गई थी। इसके कार्यान्वित होने पर दूर-दूर की अनेक छात्राएं पढ़ने के लिए आ सकेंगी।

स्वर्ण के विवाहोपरांत हेनरी एक दिन गुणाभिराम से मिलने आया था। कलकत्ता में

पढ़ने की सुविधा कर देने के लिए वह बरुआ के प्रति हृदय से कृतज्ञ था। कलकत्ता के नवीन परिवेश में नए बंधु-बांधवों को पाकर वह बहुत प्रसन्न था। गुणाभिराम के परामर्शानुसार वह असमिया लड़कों के मेस में जाकर नवागंतुक छात्रों से मिला। सभी लड़के बड़े परिश्रमी थे। असमिया भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए उन्होंने नई-नई परिकल्पनाएं की थीं। हेनरी ने तारा के नाम लिखे गए अपने पत्रों में जिन कई युवकों के नामों का प्रायः उल्लेख किया था, वे थे लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, सत्यनाथ बरा, रजनी बरदलै और हेमचन्द्र गोस्वामी।

## 16

धर्मकांत और लक्ष्मीप्रिया के विवाह ने नगांव में एक हलचल पैदा कर दी। विधवा ब्राह्मण कन्या के साथ एक कलिता लड़के के विवाह की खबर दिलचस्प थी। किंतु इससे भी अधिक दिलचस्प बात यह थी कि यह विवाह दोनों पक्षों के परिवारों की अनुपस्थिति में शिक्षिका चारुशीला के घर में संपन्न हुआ था। विवाह साधारण ब्राह्म समाज के नव विधान के अनुसार होने के कारण हवन, सप्तपदी-गमन आदि अनुष्ठान नहीं किए गए थे। बाद में कानूनी तौर पर विवाह की रजिस्ट्री करा दी गई थी।

विवाह के पहले दिन लक्ष्मी को लेने के लिए चारुशीला सेन आ गई थी। पंचानन शर्मा के घर की परिस्थिति उस दिन कैसी हो गई थी, इसे समझाना कठिन है। मृत्यु शोक के समय भी शायद घर का ऐसा वातावरण नहीं होता। लक्ष्मी की चाची और विधवा बुआ पाकगृह के सामने के चौताल पर बैठकर रो धो रही थीं। पंचानन शर्मा सुबह ही घर से निकलकर बाहर चले गए थे। शर्मा की पत्नी बिना कुछ खाए पिए जमीन पर पड़ी हुई रो रोकर व्याकुल थी। लक्ष्मी ने जाते समय मां के पैर छूकर प्रणाम करने के सिवाए और किसी से कुछ नहीं कहा। यद्यपि परिवार के अन्य सदस्यों के साथ माता-पिता नें भी प्रकट रूप में उसका परित्याग कर दिया था किंतु लक्ष्मी उनकी मनोदशा को समझती थी। मां का तो अपना कोई मतामत था नहीं, दूसरे लोग उसे जो समझा देते, उसे ही मान लेती। इसीलिए मां को कष्ट देने के कारण वह अपने को अपराधी अनुभव कर रही थी। पिता, अवश्य उसकी बात अच्छी तरह समझते थे और शायद मन ही मन उसका समर्थन भी करते थे, किंतु उससे आगे बढ़ना उनके लिए संभव नहीं था। लक्ष्मी जानती थी कि लोकाचार ने उनके हाथ पैर बांधकर उन्हें विवश कर दिया है।

बैलगाड़ी में बैठकर चारुशीला वाइदेव के घर की ओर जाती हुई लक्ष्मी सोच रही थी कि उसका अतीत उससे विदा ले रहा है। उस अतीत को वह भूल जाना चाहती थी। धीरे-धीरे अपने अश्रु पोंछकर जब उसने गाड़ी के सामने की तरफ मुंह फेरा तो लगा कि मार्ग के

दोनों ओर खड़े हुए धान के हरे खेत मानो नूतन भविष्य के लिए उसका अभिनंदन कर रहे हो। लक्ष्मी, धर्मकांत की बात सोच रही थी। इतने दिनों तक वह जिस मुक्ति की खोज में व्याकुल होकर घूम रही थी, वह दिन मानो उसी मुक्ति की ध्वजा को फहराता हुआ आया था। धर्मकांत की असीम आशा, प्रेरणा और आदर्श को जानबूझ लेने के बाद लक्ष्मी को विश्वास हो गया था कि निश्चय ही अब पृथ्वी के रूप में परिवर्तन होने वाला है और वह अपनी पुरानी साज-सज्जा छोड़कर एक अभिनव वेश धारण कर रही है। लक्ष्मी और धर्मकांत के विवाह में नगांव के सारे ब्राह्मसमाजी परिवार सम्मिलित नहीं थे। गुणाभिराम बरुआ भी उस दिन उपस्थित नहीं हो पाए थे। कार्यवश उन्हें मुफस्सिल जाना पड़ गया। धर्मकांत को यह बात बुरी लगी। उसकी धारणा थी कि उनके विवाह में बरुआ महाशय का विशेष उत्साह नहीं है। हां, उन्होंने पहले ही उन दोनों को विवाह की शुभेच्छाएं अवश्य दे दी थीं। परंतु उसका विचार था कि उनके मन में कहीं दुविधा रह गई है। उनकी पत्नी तो विवाह में आ ही सकती थी। धर्मकांत सचमुच यह नहीं जानता था कि लक्ष्मी के पहले विवाह में विष्णुप्रिया को जैसा कटु अनुभव हुआ था उसे विस्मृत न कर पाने के कारण ही वे इस बार नहीं आई थीं। धर्मकांत ने मान लिया था कि विष्णुप्रिया और गुणाभिराम अपने कतिपय पुराने संस्कारों के वशीभूत होकर लक्ष्मी और उसके वैवाहिक संबंध को आंतरिकता से स्वीकार नहीं करते। धर्मकांत ने कई बार अनुभव किया था कि गुणाभिराम जैसे ज्ञानी, गुणी और साहसी व्यक्ति के लिए भी कुछ सामाजिक संकीर्णताओं से मुक्त हो पाना कठिन है। इस दुर्बलता के कारण उनका विवेक आहत न हुआ हो, ऐसी बात न थी। धर्मकांत को उनकी बातचीत में एक दुविधा का भाव परिलक्षित होता था, विशेषतः ब्राह्म समाज के आंतरिक मतभेदों के संबध में बात करते समय। इस मानसिक दुर्बलता के बावजूद गुणाभिराम के प्रति धर्मकांत की श्रद्धा कम नहीं हुई थी। उसके लिए गुणाभिराम एक युग के प्रतीक थे। जिस समय असम में उनका एक भी सहयोगी नहीं था, उस समय उन्होंने अकेले ही सारे समाज के विरुद्ध संघर्ष किया था। किंतु, अब धर्मकांत की बारी आई थी। देखना है, वे लोग कितनी दूर आगे जा सकते हैं?

विवाह के दो दिन बाद ही लक्ष्मी और धर्मकांत ने नगांव छोंड़कर डिब्रूगढ़ की ओर जाने की योजना बनाई। तपनजुरि बागान का काम धर्मकांत ने विवाह के पहले ही छोड़ दिया था। बागान के मालिक के साथ दिनोंदिन बढ़ते मतभेद के कारण ही उसे यह निर्णय लेना पड़ा था। बागान के मजदूरों के साथ उसका मेल-मिलाप और उसकी राजनीतिक विचारधारा को बागान के मालिक बरुआ पसंद नहीं करते थे। हां, उन्होंने धर्मकांत को कभी किसी दिन स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा था। किंतु, संकेतों द्वारा उन्होंने धर्मकांत को स्पष्ट बतला दिया था कि मजदूरों को सिर चढ़ाने से उन पर शासन करना कठिन हो जाएगा। कहा जा सकता है कि अंग्रेज साहबों के बागानों में काम करने वाले गिरमिटिया

कुलियों से तपनजुरि के स्थानीय मजदूरों की हालत अच्छी थी। कम से कम उनके साथ क्रीतदासों जैसा व्यवहार नहीं किया जाता था। निकट के गांवों से आकर बागान का काम निपटाने के बाद वे रोज अपने घर वापस चले जाते थे, साहबी बागानों की तरह कुली लाइन में ही नहीं रहते थे।

धर्मकांत, पास के गांवों में जाकर मजदूरों के बीच बैठक किया करता था। गोरे साहबों द्वारा कर बढ़ाकर जनता की दुर्दशा करने के बारे में उनको समझाता था। मणिराम देवान के गीत गाकर वह गांव के लोगों के नेत्र सजल कर देता था। मणिराम देवान ने बंग के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी, यह बात भी उसने उनसे कही। ऐसी ही दो एक बातें तपनजुरि बागान के मालिक के कान में पड़ने पर उन्होंने धर्मकांत से कहा था, ''देश की जनता की हित-चिंता मैं भी करता हूं, समझे? किंतु, राजद्रोह के अपराध में लिप्त होना नहीं चाहता। आपकी दृष्टि में राजा कौन है, यही मुख्य प्रश्न है?''

"मेरे लिए तो प्रजा ही राजा है इसलिए मैंने राजद्रोह नहीं किया है, राज-सेवा ही कर रहा हूं।" धर्मकांत ने प्रत्युत्तर में कहा।

बरुआ थोड़ी देर चुप रहे। धर्मकांत के आदर्शवाद का वे सम्मान करते थे परंतु अत्यधिक कष्टपूर्वक अपने हाथों निर्मित्त बगान की उन्नति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाला कोई भी क़दम उठाने को प्रस्तुत नहीं थे। अतः धर्मकांत को भली प्रकार समझाने का प्रयास करते हुए वे बोले, "तुम्हारी बात ठीक हो सकती है, धर्मकांत! किंतु मेरे लिए अपना व्यवसाय है, घर-संसार है। सरकार को असंतुष्ट करके मेरा भी अनिष्ट होगा और तुम्हारा भी! मैं भले के लिए ही कहता हूं। ये सब बातें छोड़कर तुम अपने काम में लगो। मैं तुम जैसे भले और शिक्षित युवक का विनाश नहीं चाहता।"

धर्मकांत जानता था कि देवनाथ बरुआ के साथ तर्क करना व्यर्थ है। दोनों के दृष्टिकोण एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत थे। वह यह भी जानता था कि बरुआ उसके शुभाकांक्षी हैं, शत्रु नहीं। उनके साथ मनोमालिन्य बढ़ाने की उसकी इच्छा न हुई। इसीलिए उसने हठात एक दिन नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। त्यागपत्र पाकर बरुआ ने उन्हें बुलाकर कहा, "तुम जाना चाहते हो? कहीं दूसरी जगह नौकरी ठीक कर ली है क्या?"

"डिब्रूगढ़ में मेरे मित्र कृष्णकांत काकति ने एक छोटा प्रेस लिया है। वहीं हम दोनों मिलकर एक समाचार पत्र प्रकाशित करने की सोच रहे हैं।"

"क्या असम में समाचार-पत्र चल पाएगा?'' बरुआ ने आश्चर्य से पूछा।

"समाचार-पत्र चलाने के लिए किसी न किसी को प्रयत्न करना ही होगा। क्या अपने देशवासियों को सदैव अज्ञान के अंधकार में रहने के लिए छोड़ दें? सच्ची और सही बात लिखने पर लोग बाग अवश्य पढ़ेंगे," धर्मकांत ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा।

धर्मकांत के सिद्धांत को सुनकर पहले तो लक्ष्मी चिंता में पड़ गई। दो प्राणियों के

खाने पीने और जीने का प्रबंध करने के लिए कम से कम किसी एक का तो कोई स्थायी काम होना चाहिए। क्या प्रेस के काम से खाने और पहनने का बंदोबस्त हो सकेगा? यही सब सोचते-विचारते उसे एक दिन हठात एक खबर मिली। डिब्रूगढ़ में लड़कियों के लिए एक निम्न प्राथमिक स्कूल खोला गया है। उसके लिए एक सुयोग्य अध्यापिका की आवश्यकता है। यह खबर उसके एम.इ. स्कूल के शिक्षक अजय गांगुली ने दी थी। उनके एक आत्मीय स्वजन इस स्कूल के संस्थापकों में थे। लक्ष्मी ने तत्काल डिब्रूगढ़ पत्र लिखा था और विवाह के ठीक पहले उसका उत्तर भी आ गया था। यदि लक्ष्मी यह कार्य करना चाहे तो उसके रहने-सहने के लिए सारी व्यवस्था स्कूल की ओर से हो जाएगी। मासिक वेतन दस रुपए होगा।

लक्ष्मी ने जब यह खबर धर्मकांत को दी तो उसने हंसते-हंसते कहा, "इसका अर्थ हुआ कि विवाहोपरांत तुम घर चलाओगी और मैं एक आमंत्रित पुरुष की भांति उसमें रहूंगा।"

लक्ष्मी ने हंसते हुए कहा, "मैं भी देखूंगी कि तुम काम करने वाली मधुमक्खी हो या रानी मधुमक्खी।"

धर्मकांत गंभीर हो गया। उसके मन में लक्ष्मी के प्रति हठात एक दायित्व-बोध जाग्रत हुआ।

"हो सकता है, मेरा काम तुम्हें तीते-कसैले रस की तरह रुचिकर न लगे पर, मैं अन्य लोगों की तरह स्थायी गृहस्थ बनकर नहीं बैठ सकूंगा।"

"तुम्हें किसने बैठने के लिए कहा है?" लक्ष्मी ने हंसते हुए कहा। "मैं घर-संसार चलाऊंगी और तुम देश का काम करना। मेरे कारण, तुम्हारे काम में कोई बाधा नहीं आएगी।" धर्मकांत अपने हाथ में लक्ष्मी का हाथ लेकर थोड़ी देर तक केवल उसका मुख निहारता रहा। उसकी प्रेरणा ने धर्मकांत के मनोबल को द्विगुणित कर दिया।

डिब्रूगढ़ की यात्रा करने के एक दिन पूर्व धर्मकांत और लक्ष्मी दोनों बिल्व कुटीर गए। विष्णुप्रिया और उसके तीनों लड़कों के नगांव वापस आ जाने से बिल्व कुटीर में मानो पुनः प्राणों का संचार हो गया था। धर्मकांत और लक्ष्मी ने घर में प्रवेश करते ही अनुभव किया कि घर में आनंदमय परिवेश का साम्राज्य है। स्वर्ण के भाई कमला ने दरवाजे से ही खबर दी कि कल संध्या को कलकत्ता से माइसना दीदी और जीजा जी भी आ गए हैं। उस दिन पिता ने उनके लिए हाजो की गायन मंडली बुलाई है। इसलिए लड़कों को बिल्कुल फुर्सत न थी। वे नाटक-मंडली की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लक्ष्मी जानती थी कि बरुआ महाशय को इन सब चीजों का बहुत शौक था। जब कभी नगांव में हाजो या डेढ़गांव से गायन मंडली आती थी तो बरुआ एक बार उसे अपने घर अवश्य बुलाते थे। अपने स्वजन और बंधु-बांधवों को भी गान सुनने के लिए निमंत्रण देते थे। पंचानन शर्मा भी इस तरह का निमंत्रण पाने पर गए बिना नहीं रहते थे। किंतु,

अपने पुत्र और पुत्री को साथ नहीं ले जाते थे। इसीलिए लक्ष्मी को कभी गाने की महफिल में जाने का सौभाग्य नहीं मिला था। हां, उसे स्मरण था कि बचपन में एक बार वह पिता के साथ पुतली का नाच देखने के लिए बिल्व कुटीर में गई थी।

धर्मकांत पहले भीतर प्रवेश करने में हिचक रहा था। अनिमंत्रित होने के कारण नहीं, नगांव के असमिया लोगों से वहां आमना-सामना होगा, यही सोचकर उसको जानें का मन नहीं था। कोई भी लक्ष्मी को बुरा-भला कह देगा तो वह चुप नहीं रह सकेगा। इस विषय में वह सोच ही रहा था कि कमला दौड़कर भीतर खबर पहुंचाने चला गया और उसी समय स्वर्ण और तारा बाहर आ गईं। बहुत दिनों के बाद दोनों सहेलियों को एक साथ देखकर लक्ष्मी जरा झिझकी। दोनों एक दूसरे से कितनी विपरीत हैं। उसने स्वर्ण को विवाह के बाद पहली बार देखा था। वह घर वालों की इच्छा के विरुद्ध भी तारा के विवाह में गई थी। तारा पहले जैसी ही थी। साधारण वेशभूषा में भी उसका असाधारण व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो रहा था। तारा की तुलना में स्वर्ण मानो रूप लावण्य और ऐश्वर्य की प्रतीक थी। नीली बनारसी साड़ी और स्वर्णाभूषणों ने उसके सौंदर्य को द्विगुणित कर दिया था। उस दिन स्वर्ण को देखकर लक्ष्मी को ऐसा लगा कि मानो अन्य कोई स्वर्ण के समान सुखी नहीं है। हठात उसके मन में आया कि उसके और स्वर्ण के बीच बहुत बड़ा अंतर आ गया है। हाकिम की पुत्री, बेथुन स्कूल में शिक्षा प्राप्त तथा विलायत से लौटे एक डाक्टर की पत्नी स्वर्णलता और उसके बीच सामाजिक अंतर रहना नितांत स्वाभाविक है किंतु, जब स्वर्ण उसे आलिंगन में बांधकर भीतर ले गई तो उनके बीच का सारा व्यवधान पलभर में ही दूर हो गया।

इसी बीच गुणाभिराम बरुआ भी धर्मकांत को बुलाकर भीतर ले गए। तारा और लक्ष्मी दोनों सखियों को हाथ पकड़कर स्वर्ण बेलवृक्ष के नीचे खींचकर ले गई।

"जानती हो, यह स्थान मुझे बहुत अच्छा लगता है। कितनी ही बार मैंने और लक्ष्मी ने यहां भात रांधने का खेल खेला है। तुम्हें याद है न?" स्वर्ण ने लक्ष्मी से पूछा।

"अच्छी तरह याद है", लक्ष्मी ने वृक्ष की डालियों को हाथ से सहलाते हुए कहा। "यहां हम कितनी हंसी और रोई हैं।"

"और मैंने जब पहली बार स्वर्ण को इस वृक्ष के नीचे खेलते हुए देखा था तो सोचा था कि शायद हाकिम की बेटी को बड़ा गर्व है", तारा खिलखिला कर हंसी।

अचानक तीनों लड़कियां क्षणभर के लिए गंभीर हो गईं। संभवतः उस दिन उस मुहूर्त्त में उन तीनों के लिए वह बेलवृक्ष, उनके अतीत वर्तमान और भविष्य के मध्य समन्वय सूत्र बन गया था। पहले से उन तीनों के ही जीवन में कितना परिवर्तन आ गया था, किंतु वह वृक्ष पूर्ववत् था। स्वर्ण, बेलवृक्ष की ओर देखकर दार्शनिक की तरह बोली, "मनुष्य कितना बदल जाता है किंतु, पेड़-पौधे पहले जैसे दिखते हैं।"

"किंतु वास्तव में देखा जाए तो पेड़-पौधों में हमसे अधिक परिवर्तन् होता है। प्रतिवर्ष नए पत्ते निकलते हैं, फूल खिलते हैं, फल लगते हैं और झर जाते हैं।" तारा के कथन में कोई जटिल भाव न थे, एक सहज, सरल और स्पष्ट बात थी।

"अच्छा, आज के दस वर्ष बाद यदि हम यहां आएं तो देखेंगे कि बूढ़ा वृक्ष एक ही जगह पर खड़ा है। किंतु हमारा क्या होगा, कौन जानता है?" लक्ष्मी के कथन में उदासी के स्वर थे। स्वर्ण ने उसका कंधा पकड़कर उसकी बात को थोड़ा हल्का कर दिया।

"अच्छा हो, यदि दस वर्ष बाद की बात हम अभी न सोचें। आज हम तीनों कितने दिनों बाद एक साथ मिली हैं। आज हम खूब आनंद मनाएंगे। कल लक्ष्मी चली जाएगी न! हम भी अधिक दिन नहीं रुकेंगे। फिर, पता नहीं कब मिलें। चलो, गायकदल भी आ गया है। बहुत दिनों के बाद आज असमिया गान सुनने को मिलेगा।"

अंतिम बात कहते-कहते वे भीतर पहुंच गई थीं। धर्मकांत स्वर्ण की बातें सुनकर बोले, "असमिया गान क्यों कहती हो? हाजो के छोकरा-छोकरी होने पर भी वे बंगलागान ही गाएंगे। उनका बंगला-उच्चारण ऐसा होगा कि डा राय के लिए एक शब्द भी समझना कठिन होगा। स्वर्ण को तब उसका अनुवाद कलकतिया बंगला में करना पड़ेगा।"

"कलकत्तिया बंगला नहीं, ढाका की बंगला", स्वर्ण ने हंसकर उत्तर दिया।

"इस तरह की बंगला और असमिया बंगला में विशेष अंतर नहीं है।

इस तरह आमोद-प्रमोद में संध्या बीत गई। कौन जानता था कि इस तरह की संध्या तीनों एक साथ फिर और किसी दिन नहीं बिता सकेंगी। विदा होते समय तीनों की आंखों में आंसू देखकर धर्मकांत, हेनरी और डा. राय हंसकर बोले, "स्त्रियां ही इस प्रकार अश्रुपात कर सकती हैं। एक जाएगी ढाका, एक डिब्रूगढ़ और एक रहेगी नगांव में। पर, तुम्हें देखकर लोग यही समझेंगे कि तुम लोग विलायत अथवा अण्डमान जाने के लिए निकली हो।"

# तृतीय अध्याय

पांच वर्ष व्यतीत हो गए। देखने में पांच वर्ष का समय बहुत अधिक नहीं है। न जाने कितनों के जीवन के कई पांच वर्ष अकथनीय रूप में व्यतीत हो जाते हैं। काम में व्यस्त रहने वाले व्यक्ति को समय का हिसाब करने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। जिसके जीवन में स्थिरता आ गई है, वही पीछे फिरकर अपने अतीत को देखता है।

धर्मकांत को आजकल समय के बारे में सोचने का बिल्कुल समय नहीं है। असम के एक छोर से दूसरे छोर तक विद्रोह की ज्वाला जल रही है। सरकार नए-नए कर लगाकर जनता को दरिद्र बना रही थी। कमिश्नर वार्ड साहब ने पुराने बंदोबस्त के ऊपर भी अब इतनी कर वृद्धि कर दी थी कि कहीं कहीं कर की दर पहले से दुगुनी हो गई थी। जनता विक्षुब्ध हो उठी थी। स्थान-स्थान परनामघर और मस्जिद आदि धार्मिक स्थलों में जनसभा होती थी। सभी के मुंह पर फूलगुड़ी के युद्ध की बात थी। बीस वर्ष पहले इस युद्ध में फुलगुड़ी की जनता ने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध जिस वीरता से संघर्ष किया था, उसका स्मरण आते ही युवाओं का खून खौल उठता था। वृद्ध लोगों का उत्साह भी कम न था। उन लोगों के लिए फूलगुड़ी का युद्ध अभी हाल की घटना थी। जरूरत पड़ने पर वे अब भी हाथ में लट्ठ लेकर जाने के लिए प्रस्तुत थे।

डिब्रूगढ़ से प्रकाशित धर्मकांत की पत्रिका का नाम था 'दिग्विजय'। उस पत्रिका में वह जनता के दुःख-दर्द की अनेक बातें लिखा करता था। किंतु, उसको हमेशा यही लगता था कि जिन लोगों के अभाव और अभियोग के बारे में वह लिखा करता था, उनमें से अधिकांश निरक्षर थे। जो लोग लिखना पढ़ना जानते थे, वे भी सरकार की कुदृष्टि के भय से 'दिग्विजय' नहीं पढ़ते थे। कलकत्ता में, अपने अध्ययन काल से ही धर्मकांत ने लक्ष्य किया था कि अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त अधिकांश युवक अंग्रेजों के परम भक्त हो गए थे। जो लोग कांग्रेस दल में सम्मिलित हुए थे उनमें से भी अधिकांश अंग्रेज सरकार से सुविधा पाने के लिए स्वार्थ से ही दल में घुसे थे, अंग्रेजों को देश से खदेड़ने के उद्देश्य से नहीं। अतः ऐसे सुविधावादी लोगों को 'दिग्विजय' पढ़ने के लिए देना धर्मकांत निरर्थक समझता था, किंतु उसके मित्र कृष्ण काकति बड़े आशावादी व्यक्ति थे। उनके अनुसार भूमि की अच्छी तरह जुताई करने से, देर लगने पर भी, समय आने पर अच्छी फसल होगी। काकति देखने में बड़े शांत स्वभाव के थे, धर्मकांत की तरह अधीर नहीं। किंतु धर्मकांत जानता था कि अपने अटूट देश-प्रेम

तथा कर्त्तव्य-निष्ठा के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग करने को भी प्रस्तुत है। 'दिग्विजय' का भार काकति के ऊपर देकर वह अधिकतर समय में जनता को संगठित करने के उद्देश्य से संपूर्ण असम में भ्रमण करता रहता था।

धर्मकांत का प्रयास अधिकांश स्थानों में सफल भी हुआ। निज-निज स्थानों पर सभा आयोजित करके जनता ने अपनी समस्याओं के संबंध में विशद-आलोचना आरंभ कर दी थी। अब नई दर से खजाना भरना गरीब कृषकों के लिए और भी असंभव हो गया था। कामरूप, दरंग और नगांव का कृषक वर्ग बहुत अधिक उत्तेजित था। आहोम युग से ही वहां के लोग थोड़ी लड़ाकू-प्रकृति के थे। तभी से उन्हें 'रजाखेदा नगञां' कहा जाने लगा। धर्मकांत ने इन स्थानों में अनुष्ठित कई जन सभाओं में देखा था कि मुखिया लोगों के वक्तव्य का अर्थ था जनता का संघर्ष के लिए सन्नद्ध होना। लोगों के जंगी स्वभाव को देखकर कभी-कभी धर्मकांत डर जाता था। यदि ऐसे लोगों में एक बार जागृति पैदा कर दी गई तो फिर इन पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकेगा। यदि सन् सत्तावन के विद्रोह की तरह, ये गरीब कृषक अंग्रेजों की तोपों का निशाना बन गए तो?

धर्मकांत कोई उन्मत्त विप्लवी नहीं था। जनता के दुःख-दर्द की दुहाई देकर वह उन्हें निश्चित मृत्यु-मुख में ढकेल देना नहीं चाहता था। इसलिए उसने चीफ-कमिश्नर वार्ड साहब के द्वारा जारी किए गए खजाना वृद्धि के नए निर्देश के विरोध में एक आवेदन पत्र लिखा था। उसका उद्देश्य था कि आवेदन-पत्र पर असम के सभी जिलों की जनता के हस्ताक्षर कराकर उसे इम्पीरियल लेजिस्लेचर के सदस्य श्रीयुत रास बिहारी घोष के पास भेजेगा। अतः ऊपरी असम के विभिन्न स्थानों की यात्रा करके वह नगांव पहुंचा था। वहां से कामरूप होकर उसका दरंग जाने का कार्यक्रम था। बहुत दिनों के बाद वह नगांव गया था। इसलिए सर्वप्रथम वह गुणाभिराम बरुआ के समाचार जानने के लिए बिल्व कुटीर गया। लगभग दो वर्ष पूर्व दिग्विजय के लिए वार्षिक चंदा भेजते समय उन्होंने लिखा था कि मात्र दो महीने बाद ही वे सरकारी सेवा से निवृत्त हो जाएंगे। उसके बाद उनका विचार सपरिवार कलकत्ता जाकर रहने का था। इस पत्र के बाद गुणाभिराम के बारे में कोई समाचार धर्मकांत को नहीं मिले थे। हां, वह स्वयं भी इतना व्यस्त रहा कि उनके विषय में कोई जानकारी नहीं ले सका था।

बिल्व कुटीर के सामने आकर धर्मकांत रुक गया। उसे बंगले में किसी आदमी के रहने का चिह्न नहीं दिखा। सामने की पुष्प-वाटिका उपेक्षित पड़ी हुई थी। वेलवृक्ष के नीचे दो गायें चर रही थीं। धर्मकांत इधर-उधर देखकर दो पग आगे बढ़ा था कि पीछे की तरफ से एक चौकीदार की तरह दिखने वाले आदमी ने आकर कहा कि हाकिम बरुआ पेंशन पाने के दो दिन बाद ही नगांव छोड़कर कलकत्ता चले गए हैं। धर्मकांत को यह समाचार पाकर थोड़ा आश्चर्य हुआ। गुणाभिराम ने उससे कहा था कि सेवानिवृत्त होने के बाद वे

कलकत्ता में अपना घर बनवाएंगे और इसके पश्चात ही सपरिवार वहां जाकर रहेंगे किंतु वे इतनी जल्दी नगांव छोड़कर क्यों चले गए? धर्मकांत कुछ अनुमान नहीं कर सका।

बिल्व कुटीर से बाहर निकलकर वह उदास भाव से कुछ देर तक काठ के गेट को पकड़कर खड़ा रहा। बिल्व कुटीर ने उसके मन में बहुत सी पुरानी स्मृतियों को जगा दिया था। उसकी जीवन-डगर में यह घर एक निरापद आश्रय-स्थल था। विष्णुप्रिया का आदर-प्यार, स्वर्ण का निःसंकोच बंधुत्व और गुणाभिराम की प्रोत्साहन एवं प्रेरणापूर्ण उपदेश-वाणी वह कभी नहीं भूल पाया था। उन लोगों के बारे में सोचते-सोचते हठात उसे तारा और हेनरी का स्मरण हो आया। उसी समय वह क्रिश्चियन पट्टी की तरफ चल पड़ा। तारा का घर पहले की तरह ही था किंतु भीतर प्रवेश करने पर धर्मकांत ने कुछ परिवर्तन लक्ष्य किया। कई नई कुर्सियां और मेजें आ गई थीं और किताबों की एक आलमारी भी बैठक खाने के एक कोने में सुशोभित थी। धर्मकांत को आलमारी के पहले दर में दिखाई दिए शेक्सपीयर के दो नाटक, मिल्टन का 'पेराडाइज लॉस्ट', बेनियन का 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' और अरुणोदय की बंधी हुई दो जिल्दों के साथ शिवसागर के मिशन प्रेस से प्रकाशित छोटी-छोटी कई असमिया धर्म पुस्तकें। किंतु बीच के दर में रखी हुई पुस्तकों को देखने पर धर्मकांत अवाक् रह गया। उनमें थीं 'दुर्गेश नंदिनी', 'कपाल कुण्डला', 'कमला कांत', 'नीलदर्पण', 'रिलीजस थॉट एण्ड लाइफ इन इंडिया', मिल द्वारा लिखित 'ऑन लिबर्टी' और डार्विन की 'ओरिजन आफ स्पीसीज'। धर्मकांत, हेनरी को अब तक एक धर्मभीरु, राजभक्त और सरल व्यक्ति समझता था किंतु उसकी अध्ययन-रुचि को देखकर उसके विचार बदल गए। हेनरी में यह आश्चर्य जनक परिवर्तन कलकत्ता में रहने के कारण हुआ था अथवा युग-परिवर्तन की नवीन हवा के कारण, धर्मकांत के लिए इसे समझ पाना कठिन था।

तारा घर में नहीं थी। अस्पताल में नर्स का काम प्रारंभ करने के बाद से वह बहुत व्यस्त रहती थी। हेनरी अपने द्विवर्षीय बेटे को जलपान करा रहा था। धर्मकांत को स्नेह और सम्मान सहित आसन देने के बाद वह बेटे की देखभाल के लिए चला गया। लड़के को रखने के लिए एक परिचारिका थी। किंतु घर में रहने पर हेनरी स्वयं उसकी देखभाल करता था। हेनरी बी.ए. परीक्षा पास करके नगांव के हाईस्कूल में काम करने लगा था। पहले मिशन के साहबों और मेमों को हेनरी का यह काम अच्छा नहीं लगा क्योंकि वे चाहते थे कि हेनरी धर्म-प्रचार के काम में लगा रहे, परंतु बाद में उन्होंने तारा और उसके जीवन में दखल देने की कोई प्रचेष्टा नहीं की।

धर्मकांत ने मेज पर रखे 'जोनाकी' के पन्ने पलटते हुए हेनरी से पूछा, "बालक का क्या नाम रखा है?"

'नरेन' हेनरी ने उत्तर दिया। धर्मकांत को आश्चर्य से अपनी ओर ताकते देखकर हेनरी

ने मुस्कुराते हुए कहा ''नरेन माइकेल टामस।''

''नरेन नाम क्यों दिया?'' धर्मकांत ने आश्चर्य से पूछा।

"कलकत्ता में रहते समय एक बार रामकृष्ण के शिष्य नरेन को देखा था। उनका पुनीत, सुंदर चेहरा अब भी मेरे नेत्रों में बसा है। सौभाग्य हुआ तो कभी उनकी बातें सुनने की इच्छा है।"

"क्रिश्चियन होकर तुम रामकृष्ण परमहंस के शिष्य की बात करते हो?'' धर्मकांत के आश्चर्य की मानो सीमा नहीं थी। हेनरी ने शांत भाव से हंसकर कहा, "क्यों? मैं क्या अपने धर्म की निंदा करता हूं। सुना है, रामकृष्ण कहते थे कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक है। मैं भी यही विश्वास करने लगा हूं।"

धर्मकांत को इस प्रकार की आलोचना में विशेष रुचि न थी। इसीलिए उसका साथी कभी-कभी हंसी में कहता था, "बरुआ! आप अपना नाम बदल लें।" किंतु उसने कभी अपने को नास्तिक के रूप में जाहिर नहीं किया था। धर्म संबंधी कथा-वार्ता के प्रति उसको कोई आकर्षण नहीं था। थोड़ी देर बाद ही तारा भी पहुंच गई। नर्स की पोशाक उसे खूब फबती थी। धर्मकांत को देखकर वह चाय-जलपान देने में व्यस्त हो गई। लक्ष्मी के दोनों बच्चों के समाचार जानने के बाद उसने लंबी सांस लेकर स्वर्ण की चर्चा छेड़ी। गुणाभिराम बरुआ के सेवानिवृत्त होने के दिन ही उन्हें एक टेलीग्राम मिला था। स्वर्ण के पति डा. नंदकुमार राय की हठात अस्वस्थ होने से मृत्यु हो गई है। बिल्व कुटीर में उस दिन मानो बिना मेघों के ही वज्रपात हो गया था। गुणाभिराम जैसे एक शांत, गंभीर प्रकृति के व्यक्ति भी शोक से विह्वल हो गए। सांत्वना देने के लिए आए असंख्य बंधु-बांधवों के मुख से बोली नहीं निकली। विष्णुप्रिया अपने को अपनी पुत्री के दुर्भाग्य का उत्तरदायी मानकर मरणासन्न सी हो गई थी। उस दिन के दृश्य का वर्णन करते समय तारा की आंखों में आंसू छलछला आए थे। यह शोक समाचार पाने के दूसरे दिन ही गुणाभिराम कलकत्ता के लिए रवाना हो गए और कुछ दिनों बाद विष्णुप्रिया भी लड़कों को लेकर कलकत्ता चली गई। तारा के साथ उनका यही अंतिम मिलन था। उसके पश्चात् इधर-उधर से सुना था कि स्वर्ण अपनी दोनों छोटी लड़कियों को लेकर कलकत्ता में अपने माता-पिता के पास रहती है। तारा की बातें सुनकर धर्मकांत स्तब्ध रह गया। बिल्व कुटीर में एक साथ हास-परिहास करते हुए बिताई गई अंतिम संध्या की स्मृति उसे बार-बार आ रही थी। मानव-जीवन में किस तरह अप्रत्याशित रूप में परिवर्तन आ जाता है। क्या कोई यह जानता था कि नंदकुमार? जैसा एक स्वस्थ-सबल व्यक्ति हठात् इस संसार से विदा हो जाएगा। क्या इतने बड़े डाक्टर को मृत्यु-मुख से बचाने के लिए कोई औषधि नहीं मिल पाई? स्वर्ण एवं परिचित जनों से मिलने के लिए धर्मकांत का चित व्यग्र हो उठा। किंतु, उसके पास इतना काम जो था। काम रूप और दरंग के ग्रामवासियों की अवस्था का पता लगा

लेने के बाद ही वह कलकत्ता जा सकेगा। इसका अर्थ हुआ और एक या दो महीने का समय।

## 2

पुराने बैठकखाना लेन की दो नंबर गली के तीन नंबर घर को धर्मकांत ने ढूंढ़ लिया। पहले वह तारा द्वारा दिए गए पते पर गुणाभिराम बरुआ को ढूंढता हुआ स्काटिस लेन के एक घर में गया था। किंतु, पड़ोसी ने उसे बतलाया कि लगभग एक महीने पहले अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बरुआ महाशय पुराने बैठकखाना लेन के घर में चले गए। एक के बाद एक दुर्घटना के समाचार पाकर धर्मकांत मर्माहत हो गया। उसे बरुआ महोदय के पास जाने में भय लगने लगा। संभवतः वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हों। किंतु, बरुआ से भेंट होने पर उन्होंने जिस तरह आदर-सम्भाषण किया उससे धर्मकांत अच्छी तरह समझ गया कि यह व्यक्ति आग में तपाया हुआ खरा सोना है।

दुर्भाग्य ने बरुआ को अभी भी नहीं छोड़ा था। लंबी सफेद दाढ़ी से युक्त उनके शांत और सौम्य मुख को देखकर धर्मकांत की श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ़ गई। गुणाभिराम धर्मकांत को अपने अध्ययन-कक्ष में ले गए और उसे कलकत्ता विश्वविद्यालय के साथ हुआ अपना पत्र-व्यवहार दिखलाया। अपनी स्वर्गीया पत्नी विष्णुप्रिया की स्मृति में उन्होंने प्रत्येक वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाने वाले असमिया छात्र-छात्राओं के लिए एक पुरस्कार प्रदान किया था।

''जानते हो न? लिखने-पढ़ने के प्रति उसकी बहुत लगन थी। स्वयं को अध्ययन की सुविधा न मिल पाने पर भी दूसरों को पढ़ते-लिखते देखकर उसे बहुत संतोष मिलता था। उसने 'नीति कथा' नामक एक पुस्तक की रचना भी की थी।'' बात कहते समय गुणाभिराम की आवाज कांपने लगी थी।

धर्मकांत को ये सारी बातें अच्छी तरह याद थीं। एक दिन का दृश्य आज भी उसकी आंखों के सामने घूम रहा था। जब विशाल भाड़ाघर के बैठक खाने में पैर रखते ही उसने देखा था कि गुणाभिराम लैंप के प्रकाश में स्वर्ण और विष्णुप्रिया के साथ बैठकर स्वर्ण द्वारा लिखित 'आदर्श नारी' शीर्षक लेख के अक्षर-विन्यास को शुद्ध कर रहे थे।

कुछ समय बाद स्वर्ण चाय-जलपान लेकर बाहर आई। उसकी वेशभूषा में धर्मकांत ने कोई विशेष परिवर्तन नहीं देखा। साधारण विवाहिता स्त्री की तरह वह हल्के रंग की साड़ी पहने हुए थी और उसके तन पर एक दो अलंकार भी थे। धर्मकांत को भय था कि वह स्वर्ण को बंगाली विधवा की तरह सफेद सूती कपड़े पहने देखेगा। हठात, उसे दूसरे रूप में देखकर मन में अच्छा लगा। ब्राह्म समाज के प्रति कृतज्ञता से उसका मस्तक नत

हो गया। स्वर्ण ने धर्मकांत को देखकर हंसने की चेष्टा की। अनवरत आघातों ने उसके मुखमंडल पर शोक की एक गहन छाया प्रसारित कर दी थी। किंतु, उस छाया के बीच भी उसके व्यक्तित्व की उज्ज्वलता प्रतिभासित हो रही थी। धर्मकांत से लक्ष्मी के कुशल समाचार जानने के बाद, वह लंबी सांस भरकर बोली, "लक्ष्मी के समान अपने पैरों पर खड़ी होने वाली लड़कियां कितनी हैं? काश, मेरे भीतर भी उसके समान मनोबल होता!"

"स्वर्ण तुम ऐसा क्यों कह रही हो? लक्ष्मी की तुलना में तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा बहुत अधिक है और उससे बढ़कर तुम्हारा भाग्य है कि तुम ऐसे माता-पिता की संतान हो, जिन्होंने अपने विश्वास के रक्षार्थ समाज में किसी का भी भय नहीं किया था। इसलिए तुम हार मान लोगी मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता।"

"आशीर्वाद करो भाई" कि मैं अपने माता-पिता की तरह बन सकूं। स्वर्ण की आवाज कांपने लगी। धर्मकांत ने बात का प्रसंग बदलकर कहा, "स्वर्ण, तुमने फिर से अपना अध्ययन आरंभ नहीं किया? 'आसाम बंधु' के बंद होने के बाद से तुमने कुछ नहीं लिखा। 'जोनाकी' के लिए कहानी अथवा कविता लिख सकती हो। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ तुम्हारे आत्मीय हैं। लिखकर उन्हें दे देने पर ही वे प्रकाशित कर देंगे।"

"उन्होंने भी मुझे इस विषय में कहा है। किंतु, मेरा ही आजकल लिखने का मन नहीं होता। अब वर्तमान में तीनों भाइयों और अपनी दोनों बच्चियों को पढ़ा लिखाकर योग्य बनाना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है। अपनी मृत्युशय्या पर मां मुझे यह भार सौंप गई हैं। अपने संबंध में सोचने-विचारने का मेरा मन नहीं होता।"

धर्मकांत को इसका जवाब नहीं सूझा। वह स्वर्ण को स्वार्थी बनने का परामर्श नहीं दे सकता। किंतु, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को आगे बढ़ने के लिए कुछ क्षेत्रों में स्वार्थपरक होना पड़ता है। वह स्वयं क्या स्वार्थ परक नहीं है? लक्ष्मी के ऊपर घर-संसार का सारा दायित्व सौंपकर वह यायावर का जीवन यापन कर रहा है। बीच-बीच में उसे पश्चाताप न होता हो, यह बात नहीं है किंतु, वह क्या करे? लक्ष्मी ने ही उसे देश सेवा का कार्य करने की प्रेरणा दी है। स्वर्ण की ओर देखकर धर्मकांत के मन में आया कि हो सकता है स्वर्ण के सहोदर भाई और उसकी दोनों बेटियां किसी दिन नाम कमाएं। तब उसके निःस्वार्थ त्याग की बात क्या कोई याद रखेगा? क्षणभर को धर्मकांत ने ऐसा महसूस किया कि मानो समाज द्वारा की गई नारी-जाति की अवहेलना के लिए वह स्वयं अपराधी हो।

## 3

मां का अभाव स्वर्ण पग-पग पर अनुभव करती थी। किंतु, उसने अपने भाइयों के सामने कभी अपना दुख प्रकट नहीं किया। अब उसे ही उनके लिए मां के रिक्त स्थान की पूर्ति

करनी थी। स्वर्ण की हमेशा यही चेष्टा रहती थी कि किसी भी बात में भाइयों को मां का अभाव महसूस न हो। मां के स्वर्गवास के बाद ही वह समझ गई थी कि गृहस्थी के दायित्व कितने होते हैं? काम करने वाला आदमी कितना भी काम करे पर, चारों ओर देखते हुए सब कामों को सुचारु ढंग से संपन्न करना एक बड़ा दायित्व है। पतिगृह में स्वर्ण के ऊपर दायित्वों का विशेष भार नहीं था। पति, जेठ, ससुर आदि उसके भार को बहुत हल्का कर देते थे। किंतु पिता ने अब धीरे-धीरे गृहस्थी का सारा दायित्व उसे दे दिया था। देखने में गुणाभिराम के घर में किसी चीज का अभाव न था। अन्य लोगों की तुलना में उन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों का लालन-पालन काफी शौकीन तरीके से किया था। कलकत्ता के बाजार के सर्वाधिक कीमती जूते, कमीज और पैंट उन्हें पहनने को दिए थे। खानपान में भी उनकी रुचि राजकीय ढंग की थी। घर में बनाए गए असमिया और बंगाली स्वादिष्ट भोजन के होते हुए भी वे बीच-बीच में बाहर से अच्छे होटलों का साहबी खाना मंगवाकर बच्चों को खिलाते रहते थे। इसके अतिरिक्त अतिथियों और आगंतुकों के लिए खाने की हमेशा सुंदर व्यवस्था रहती थी। जहां तहां से कितने प्रकार के लोग उनके पास आते थे। कलकत्ता के ब्राह्म समाज के गणमान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त बाहर से भी गौरीपुर के राजा, बगरि-वाड़ी के जमींदार और जखलांबंधा के सत्राधिकार रघुदेव गोस्वामी, कलकत्ता में बरुआ के घर में प्रायः अतिथि रूप में आया करते थे। इसके सिवा अपने वंश के स्वजनों, मित्र व कुटुम्बी जनों में से भी कोई न कोई प्रायः वहां आता रहता था। स्वर्ण भी यथासंभव अपना दायित्व सहर्ष निर्वाह करती थी किंतु, इन सब कामों में उसे थोड़ा भी आनंद नहीं मिलता था। वह उस संध्या की प्रतीक्षा करती रहती थी जब लक्ष्मीनाथ बेजवरुआ, हेमगोसाईं, पद्मनाथ गोहाईं बरुआ, राधिका प्रसाद बरुआ आदि कलकत्ता के नए छात्र, पिता के पास दिशा-परामर्श लेने के लिए आते थे। उनके साथ बैठकर स्वर्ण साहित्य-चर्चा और देश-विदेश की नाना बातें करती थी। वे दिन उसके लिए अति मूल्यवान थे। 'जोनाकी' को लेकर उस समय की जाने वाली नई-नई परिकल्पनाओं की सीमा नहीं थी। 'जोनाकी' में राजनीति की बातें रहें या न रहें, इन विषयों पर अनेक तर्क-वितर्क होते थे। यद्यपि चन्द्र कुमार अग्रवाल ने लिखा था कि राजनीति 'जोनाकी' के राज्य के बाहर की बात है फिर भी छात्रों का एक दल इसे मानने को तैयार न था। धर्मकांत के कलकत्ता में रहते समय इस विषय पर काफी गर्मागर्मी हो गई थी। एक दिन तो स्वर्ण लोगों के घर पर एक छोटा मोटा तर्क युद्ध ही हो गया था। धर्मकांत का मत था कि युग के ऐसे संधिक्षण में कोई भी भारतीय पत्रिका राजनीतिक चर्चा से अछूती नहीं रह सकती। प्रत्येक नए लेखक का यह एक महान ऐतिहासिक दायित्व है, निरपेक्ष होकर कोई नहीं रह सकता। किंतु, वहां उपस्थित कई युवकों ने इस बात का प्रतिवाद करते हुए कहा था कि साहित्य का स्थान राजनीति के बाहर है। इसके बाद आरंभ हुई थी राजनीति और प्रजानीति के मध्य पार्थक्य की चर्चा। यह तर्क-वितर्क,

वाद-प्रतिवाद, बहुत देर तक चला था। गुणाभिराम बरुआ के बैठक खाने में नवीन प्राचीन भावादर्शों की मानो आंधी चलती थी और इस आंधी में स्वर्ण के मन को नूतन प्राण मिलते थे।

उस कमरे में राजनीतिक आलोचनाएं भी प्रचुर मात्रा में हुई थीं। इलाहाबाद में आयोजित होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के लिए कलकत्ता से असमिया छात्रों के प्रतिनिधि के रूप में किस किस को भेजा जाए, यह निर्णय भी एक दिन पुराने बैठकखाना लेन के उसी घर में लिया गया था। उस दिन की बैठक में धर्मकांत उपस्थित था। सब लोग उसको भेजना चाहते थे किंतु, धर्मकांत राजी नहीं हुआ। असम में ही बहुत से काम थे। वापस जाकर उसे गांव की जनता को संगठित करना होगा। गांवों की जनता ही भारत के भविष्य का निर्णय करेगी। अंत में उस सभा ने तीन व्यक्तियों को मनोनीत किया, राधानाथ चांगकाकति, लक्ष्मी नाथ बेजबरुआ और भोलानाथ बरुआ।

उस राजनीतिक आलोचना और वाद-विवाद आदि में अधिकांश समय स्वर्ण मूक श्रोता बनी रहती थी। किंतु सारी बातों को वह बड़े मनोयोग से सुनती थी। अंत में उसने लक्ष्य किया था कि युवकों में अधिकांश अंग्रेजों के भक्त थे। स्वर्ण ने आनंदमोहन बसु के घर पर अनेक बड़े-बड़े नेताओं को देखा था। उनमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, उमेश चन्द्र बनर्जी, दुर्गा मोहनदास, द्वारिकानाथ गांगुली प्रमुख नेता थे। ये लोग ही कांग्रेस के संस्थापक थे। स्वर्ण ने जितना सुना था, उससे उसकी यही धारणा हुई थी कि महारानी के शासन से उत्तम शासन-व्यवस्था भारतवर्ष की जनता ने कभी नहीं पाई थी, किंतु भारत के शिक्षित वर्ग को अंग्रेज शासकों से वास्तविक सम्मान कभी नहीं मिला। इसलिए कांग्रेस का संवैधानिक उपायों से भारतीयों के प्राप्य अधिकार लेने चाहिए। 'संवैधानिक' शब्द के प्रकृत अर्थ को स्वर्ण अच्छी तरह नहीं समझी थी। बार-बार सुनकर यह शब्द उसे कंठस्थ हो गया था। धर्मकांत की बातें मानो स्वर्ण को बिल्कुल दूसरे तरह की लगती थीं। उसके मत से अंग्रेज सरकार भारत की प्रमुख शत्रु थी। इस विदेशी सरकार को उखाड़ फेंककर स्वदेशी सरकार की स्थापना करने पर देश की उन्नति होगी। असमिया छात्रों में भी दो एक ने धर्मकांत के विचारों का समर्थन किया था। किंतु, वे लोग भी कांग्रेस के काम में लग गए थे। यह कैसे संभव हो जाता है, स्वर्ण इस बात को नहीं समझ सकी थी।

राजनीतिज्ञों में स्वर्ण को सबसे अधिक अच्छी लगती थी डा. कादम्बिनी गांगुली। कलकत्ता के मेडिकल कालेज से पास करने वाली वही प्रथम भारतीय महिला थी। आकर्षक व्यक्तित्व वाली उस विदुषी महिला को स्वर्ण बचपन से ही देखती आई है। द्वारिकानाथ गांगुली के साथ उनका विवाह होने के बाद गुणाभिराम बहुत दिनों तक उनके यहां आना-जाना नहीं करते थे। बाद में अवश्य, उनके मनोभाव में परिवर्तन हुआ। गुणाभिराम हमेशा, कादम्बिनी के आदर्श की ओर इंगित करते हुए स्वर्ण से कहते थे कि संसार में महिला

किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है।

एक दिन कादम्बिनी अपने पति द्वारिकानाथ गांगुली के साथ स्वर्ण के घर आई। वे अमेरिका के शिकागो नगर की विख्यात प्रदर्शनी में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में जाने वाली थीं। जाने के पहले वे गुणाभिराम के प्रति प्रणाम निवेदन के लिए आई थीं। गुणाभिराम कुछ सोचकर हठात घर के भीतर गए और हाथ से बुना हुआ एक जोड़ा पाट का नया रिहा—मेखला लाकर कादम्बिनी के हाथ में देते हुए बोले, "ये वस्त्र शिकागो में पहनना। वहां के लोगों को दिखलाना कि असमिया महिलाएं किस तरह की पोशाक पहनती हैं।

स्वर्ण कपड़ों को देखकर पहचान गई थी कि नगांव से उसके पिता ये कपड़े पसंद करके मां के लिए लाए थे। मां, इन्हें पहन ही नहीं पाई। कादम्बिनी ने हंसते हुए स्वर्ण से कहा, "मुझे ये कपड़े पहनना सिखा दो। अच्छी तरह न पहनने पर वस्त्रों की शोभा चली जाएगी।"

स्वर्ण ने भीतर जाकर उन्हें कपड़े पहना दिए थे। उनके तन पर वे कपड़े बहुत सुंदर लगे। स्वर्ण के मन में आया कि यदि वास्तव में कादम्बिनी असमिया महिला होतीं तो असम उन पर कितना गर्व कर सकता था। क्या कभी कोई असमिया महिला भी डाक्टर बन सकेगी?

## 4

पुराने बैठकखाना लेन के घर में स्वर्ण का परिवार एक वर्ष भी शांति से नहीं रह पाया। मां की मृत्यु के कुछ महीने बाद ही करुणा को मां के समान ही काल-व्याधि हो गई। उस बेचारे ने उसी साल एन्ट्रेन्स परीक्षा दी थी। सभी को आशा थी कि वह परीक्षा में ससम्मान उत्तीर्ण होगा। करुणा बचपन से ही शांत प्रकृति का था। नगांव में रहते समय पिता की प्रेरणा से उसने स्कूली छात्रों के लिए 'बाल बंधु' नामक एक पत्रिका भी निकाली थी। स्वर्ण अपनी सहेलियों के सम्मुख करुणा को लेकर हमेशा गर्व करती थी। उसे आशा थी कि उसका यह कुशाग्रबुद्धि भाई एक दिन आई.सी.एस. अवश्य बनेगा।

एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद ही करुणा को मलेरिया ज्वर हो गया। औषधि-सेवन के पश्चात् ज्वर कम अवश्य हो गया, किंतु बिल्कुल ठीक नहीं हुआ। कलकत्ता के देशी-विदेशी सभी योग्य चिकित्सकों का परामर्श लेकर चिकित्सा कराई गई किंतु जब कोई सफलता न मिली तो गुणाभिराम ने करुणा को लेकर पुरुलिया जाने का निश्चय किया। डाक्टरों ने कहा था कि शुष्क स्थान पर जाने से भी रोग ठीक हो सकता है। दो परिचारकों को साथ में लेकर गुणाभिराम और करुणा पुरुलिया चले गए। जाते समय गुणाभिराम ने स्वर्ण को पास बुलाकर कहा, "माइसना, कमला और ज्ञान को तुम्हारे भरोसे छोड़ रहा हूं। अब इनके माता-पिता, सब कुछ तुम्ही हो।"

स्वर्ण ने पिता और भाई को सहर्ष विदा किया था। सोचा था पुरुलिया से भाई पूर्ण स्वस्थ होकर लौटेगा। जीवन-मरण के संबंध में शायद तब तक स्वर्ण को यथेष्ट अभिज्ञता नहीं हुई थी। इसी कारण वह आशावादी थी। किंतु, पुरुलिया में भी करुणा की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। निरुपाय होकर गुणाभिराम बेटे को बिहार के मधुपुर नामक स्थान पर ले गए। किसी ने उन्हें सलाह दी थी कि मधुपुर एक स्वास्थ्यकर स्थान है। स्वर्ण ने भी अपने भाइयों और बेटियों के साथ मधुपुर जाने का विचार किया। इतने दिनों तक अकेले करुणा की सुश्रूषा करने में पिता को कितना कष्ट हुआ होगा, इसका उसे अनुमान था। वह स्थान उनके लिए बिल्कुल अपरिचित था। आपद्-विपद में उन्हें सहारा देने वाला कोई बंधु-बांधव भी वहां नहीं था। स्वर्ण मधुपुर जाने के लिए उस समय कलकत्ता में निवास करने वाले अपने आत्मीय नवीनराम फूकन के पास मिलने गई। गुणाभिराम ने नवीनराम और जीवनराम की आपद-विपद में बहुत सहायता की थी। स्वर्ण जानती थी कि पिता के बाद स्व. आनंदराम ढेकियाल फूकन के ये वंशधर ही उसके स्वजन थे।

नवीनराम आए और वे सभी एक साथ मधुपुर चले गए। ट्रेन के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठकर नवीन स्थान की यात्रा के उत्साह में सभी इस बात को भूल ही गए थे कि उनके भ्रमण का उद्देश्य क्या है। पर, मधुपुर पहुंचकर सबका मन भर गया। करुणा बिस्तर पर पड़ा था। कोई औषधि काम नहीं कर रही थी। गुणाभिराम दिन-रात उसकी सेवा-सुश्रूषा में जुटे थे। रोगी को मुर्गी का शोरबा देना लाभदायक था। किंतु रसोई बनाने वाली ब्राह्मणी ये सब चीजें नहीं छू सकती थी। इसलिए स्वर्ण ही अपने हाथों से स्टोव पर शोरबा बना देती थी। करुणा ज्वर ग्रस्त होने पर भी म्लान हंसी हंसकर अपनी दीदी की पाक-कला की प्रशंसा करता था। स्वर्ण की दोनों आंखें आंसुओं से भर जाती थीं। वह भगवान से करुणा के स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना बार-बार करती थी। जब कलकत्ता से समाचार मिले कि करुणा ने प्रथम श्रेणी में एन्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण की है तो खबर सुनकर करुणा ने बहन की तरफ देखते हुए कहा, "दीदी ! लगता है कि प्रेसिडेंसी कालेज में मेरा पढ़ना नहीं हो पाएगा।" स्वर्ण उसके केशों को हाथ से सहलाती हुई बार-बार बोली, "तुम ठीक हो जाओगे करुणा। हम यहां से वापस जाकर तुम्हारा नाम कालेज में लिखा देंगे।"

किंतु, करुणा का कलकत्ता जाना नहीं हो पाया। मधुपुर में ही वह सबको रोता छोड़कर आनंदधाम की यात्रा पर चला गया। गुणाभिराम को जब यह ज्ञात हुआ कि करुणा का जीवन निःशेष होने वाला है तो वे बेटे के सिरहाने बैठकर सारी रात गीता-पाठ करते रहे। पास में बैठी हुई स्वर्ण भी मूक और निश्चल होकर एकाग्रचित से भगवान की प्रार्थना करती रही। वह तब तक भी नहीं समझ पाई थी कि करुणा के जीवन का अंतिम क्षण आनेवाला है। उसका जीवन दीप कब बुझ गया, स्वर्ण को इसका पता ही नहीं चला। दूसरे दिन प्रातः सभी ब्राह्मजन 'ऐ जे देखा जाए आनंदधाम' गाते हुए करुणा को ले गए। विष्णुप्रिया को

ले जाते समय भी यही गीत गाया गया था। गीत के शांत गंभीर स्वरों ने स्वर्ण के हृदय को हाहाकार से भर दिया।

## 5

कलकत्ता वापस आने के बाद फिर से किराए का मकान बदलने का काम आरंभ हुआ। करुणा की स्मृतियों से जुड़े पुराना बैठकखाना लेन के उस घर में एक रात भी और ठहरने की इच्छा गुणाभिराम को नहीं हुई। कालेज स्क्वेयर में किराये का एक मकान लिया गया। फिर से नए घर में सारी व्यवस्था करनी पड़ी। अपने को नए परिवेश के अनुकूल बनाने की समस्या भी थी। इसके पहले कई बार भाड़ाघर में जाने पर गुणाभिराम ने अपनी देख-रेख में सारे सामान को व्यवस्थित रूप में रखवाया था। घर में चीजों को सजा कर रखने का उन्हें बड़ा शौक था किंतु इस बार किसी बात में उनकी रुचि नहीं रही। स्वर्ण को व्यस्त होकर काम करते देखकर वे लंबी सांस भरकर बोले—'तुम्हें बहुत कष्ट हो रहा है न बेटी! मैं तुम लोगों को कोई सुख नहीं दे पाया। सोचा था, पेंशन पाने के बाद यहां अपना घर बना लूंगा। थोड़ी सी जमीन भी खरीद ली थी। किंतु, भाग्य ने कुछ नहीं होने दिया।"

स्वर्ण ने अपने पिता को इतनी असहाय अवस्था में पहले कभी नहीं देखा था। वे मानो भीतर-भीतर क्षीण हुए वृक्ष की भांति अशक्त हो गए थे। उनकी दशा देखकर स्वर्ण का हृदय हाहाकार कर उठता था। पिता ही अब उसके एकमात्र सहारा थे। यदि वे इस तरह टूट जाएंगे तो फिर उसका क्या होगा? एक छोटे बच्चे को समझाने की भांति वह पिता से बोली, "ऐसा क्यों कहते हैं देउता। घर बनाने के लिए अब भी बहुत समय है। आपके नया घर बना लेने पर हम सब उसमें कितने आनंदपूर्वक रहेंगे?", स्वर्ण ने अपनी बात कुछ जोर से ही कही।

"नहीं माइसना ! मेरे लिए अब एक ही घर है, उस आनंदधाम में। वहां तुम्हारी मां भी है और करुणा भी। इस संसार में अब मेरी कोई आशा नहीं रह गई है बेटी ! बड़े शौक से मैंने अपना संसार बसाया था। पहले ब्रजसुंदरी मुझे अकेला छोड़कर असमय में चली गई। उसके बाद तुम्हारी मां के साथ मैंने एक सुखद संसार बसाया था। वह भी छोड़कर चली गई। सोचा था समाज के अभिशापों को अनदेखा करके मैं अकेला ही देशाचार के विरुद्ध खड़ा हो सकूंगा। किंतु, विधाता ने ऐसा नहीं होने दिया।"

अंतिम बात कहते समय गुणाभिराम फूट-फूटकर रोने लगे। स्वर्ण स्तब्ध होकर खड़ी रही। वह अपने पिता को किन शब्दों में सांत्वना दे? कमरे की खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर के व्यस्त संसार को देखती हुई वह सोच रही थी कि अब वह बिल्कुल अकेली रह गई है। धीरे-धीरे सिकुड़ते हुए परिवार को उसे अकेले ही संभालना होगा। ईश्वर क्या उसे

इतना मनोबल देंगे?

करुणा की मृत्यु के बाद गुणाभिराम बरुआ एक दिन भी मानसिक रूप से पूर्ववत् सक्षम नहीं हो पाए। अपने बंधु-बांधवों के आ जाने पर कुछ देर के लिए वे स्वाभाविक अवस्था में आ जाते थे परंतु फिर चिंताग्रस्त हो जाते थे। आनंद मोहन बसु, दुर्गा मोहनदास, शिवनाथ शास्त्री, गुरुचरण महलानविश आदि सभी मित्र कुशल क्षेम पूछने के लिए बीच-बीच में उनके पास आया करते थे। वे लोग मनोरंजक वार्तालाप द्वारा सबको आनंदित किया करते थे किंतु, गुणाभिराम को पहले की तरह कोई भी आकृष्ट नहीं कर पाता था। हेम गोसाईं और लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ ने भी उनके मन को साहित्य-चर्चा के प्रति आकृष्ट करने की बहुत चेष्टा की। उनकी बात को अमान्य न करने के विचार से गुणाभिराम 'अलिखित बुरंजी, की परवर्ती किस्त लिखने बैठे किंतु लिख नहीं पाए। दो चार पंक्तियां लिखने के बाद चिंतन का सूत्र विच्छिन्न हो जाता था। पद्मनाथ गोहांई बरुआ 'बिजुली' पत्रिका की नई प्रति देने के लिए आए। गुणाभिराम द्वारा लिखित 'आसाम यात्रा' उसमें धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रही थी। उन्होंने संपूर्ण पांडुलिपि गोहांई बरुआ को एक वर्ष पहले ही दे दी थी, अन्यथा वह लेखन भी अधूरा ही रह जाता।

कालेज स्क्वेयर वाला मकान स्वर्ण को अच्छा ही लगा था। स्कूल और कालेज भी एकदम पास थे। कमला और ज्ञान को बहुत सुविधा हो गई थी। स्वर्ण अपने भाइयों के साथ कभी कभी पास की पुस्तक की दुकानों पर एक दो बार गई थी। बंकिमचन्द्र का प्रत्येक उपन्यास खरीद कर उसने पढ़ा था। माइकेल मधुसूदन का मेघनाद वध काव्य गुणाभिराम ने पहले ही खरीदा था। वीरागंना काव्य की बात यद्यपि स्वर्ण ने अपने पिता से बहुत बार सुनी थी किंतु उसे तब तक वह पढ़ नहीं पाई थी। एक दिन दुकान पर उस पुस्तक को देखकर उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे खरीद कर अपने पिता को दिया। उस दिन संध्या समय बहुत दिनों बाद गुणाभिराम ने पहले की तरह प्रफुल्ल चित्त होकर कविता पढ़ी थी। माइकेल मधुसूदन की कविता पढ़कर उन्होंने अपनी बेटी को नारी-मुक्ति का तात्पर्य समझाया था। स्वर्ण अभिभूत हो गई थी और उसके मन में प्रगाढ़ आत्मविश्वास संचरित हो गया था।

अगले दिन प्रातः ही सब कुछ उलट-पुलट हो गया। गुणाभिराम को कंपकंपी वाला तीव्र मलेरिया ज्वर हो गया। स्वर्ण इस ज्वर को भलीभांति पहचानती थी। गुणाभिराम ने भी मानो समझ लिया था कि उनके दिन पूरे हो रहे हैं। एक दिन ज्वर थोड़ा कम होने पर उन्होंने स्वर्ण को अपने पास बुलाकर कहा, "आई, इस बार मैं भी जाने वाला हूं। अब, ज्ञान और कमला को आदमी बनाने का सारा दायित्व तुम्हारे ऊपर ही है। उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाना।" स्वर्ण के छोटे हाथ को अपने गर्म हाथों में लेकर उन्होंने कहा, "माइसना ! तुम स्त्री होकर भी सब कुछ करने में सक्षम हो। मैंने तुम्हें शिक्षा-दीक्षा दी है।

तुम्हारे शरीर में मेरा और तुम्हारी मां का रक्त है। निश्चय ही तुम अपने काम में सफल होगी।"

आंधी की तरह दिन निकल रहे थे। परिचित लोगों का पुनः समागम होने लगा था। डा. नीलरतन सेन, डा. विपिन बिहारी सरकार, डा. क्राम्बि, डा. कादम्बिनी गांगुली आदि बड़े-बड़े डाक्टर भी इस असाध्य और अपरिचित रोग के सामने हार मान गए थे। आठ नंबर कालेज स्क्वेयर के घर में मानो असम और बंग के सभी ज्योतिर्मय नक्षत्रों का उदय हुआ था। सुबह से लेकर शाम तक घर में आने वालों की भीड़ रहती थी। स्वर्ण ही बीच-बीच में आगंतुकों से बात करती थी। यथासमय पिता को औषधि-पथ्य खिलाती और समय मिलता तो कमरे के एक कोने में बैठकर आंसू बहाती। किंतु, रोने के लिए भी उसके पास समय कहां था? खुकी और छोटी की हालत देखकर वह अपने दुःख को भूल जाती थी। बेचारी दोनों लड़कियों का जन्म मानो मृत्यु की गोद में ही हुआ था। रोग, डाक्टर, मृत्यु ये सब उनके दैनिक जीवन के संगी हो गए थे। ज्ञान और कमला बड़े हो गए थे। वे अल्पवयस में ही बहुत सारे दायित्व संभालने योग्य बन गए थे। डाक्टर को बुलाना, दवा खरीदकर लाना, रोगी के लिए बाजार से फल-मूल, मुर्गी आदि लाने जैसे सैकड़ों कामों में वे स्वर्ण का हाथ बंटाते थे।

स्वर्ण अपने भावी-जीवन के बारे में बिना कुछ सोचे-विचारे यांत्रिक गति से अपना काम करने की चेष्टा कर रही थी। पिता के न रहने पर उसका, उसकी दोनों बेटियों का और दोनों छोटे भाइयों का क्या होगा, ये विचार मन में आने पर वह इन्हें जबर्दस्ती अपने मन से निकाल देती थी। पिता का ईलाज इतने बड़े-बड़े डाक्टर कर रहे हैं, हो सकता है असंभव को संभव बनाकर उसके पिता ठीक हो जाएं। अंत तक स्वर्ण ने अपने विश्वास को नहीं छोड़ा। किंतु जब वह अनिवार्य निष्ठुर क्षण आया और एक बार फिर घर के भीतर गुरु गंभीर स्वर में 'ऐसे देखा जाए आनंदधाम' सुनाई पड़ने लगा तो स्वर्ण ने अपने कानों में अंगुली देकर उस परम सत्य से दूर भाग जाना चाहा। मृतक की शेष-यात्रा के लिए ब्राह्मों द्वारा आयोजन की बातें स्वर्ण को सुनाई पड़ रही थी। प्रत्येक बात से वह परिचित् थी। पिता को किराए की गाड़ी में श्मशान ले जाना होगा, साथ में ज्ञान, कमला और दो तीन ब्राह्म बंधु श्मशान तक जाएंगे। किंतु, हठात् स्वर्ण को एक भिन्न स्वर सुनाई पड़ा। कलकत्ता के असमिया छात्र संकीर्तन गा रहे थे। बिल्वकुटीर का गोसाई घर स्वर्ण की आंखों में झलकने लगा और उसके साथ अनेक स्नेहिल स्मृतियां भी। वह जोरों से रोने लगी। तभी उसे लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की आवाज सुनाई पड़ी, "स्वर्ण ! देउता को हम असमिया युवा अपने कंधों पर ले जाएंगे। वे हम सबके पिता तुल्य थे। स्वर्ण कुछ नहीं बोली, किंतु अपने पिता द्वारा कही गई एक बात उसे स्मरण हो आई। 'मेरी मृत्यु पर मुझे कंधा देने के लिए कोई असमिया व्यक्ति आगे नहीं आएगा।'

# 6

स्वर्ण के जेठ रजनीनाथ राय कलकत्ता के एक उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारी थे। वे ही गुणाभिराम बरुआ के मरणोपरांत स्वर्ण और सभी लड़के, लड़कियों को अपने घर ले गए। पिता की मृत्यु के कारण कमला और ज्ञान वैसे ही शोकाकुल थे। उसके ऊपर अपना वास-स्थान छोड़कर दूसरे के घर में मेहमान होने पर वे एकदम टूट गए। उनकी अवस्था देखकर स्वर्ण ने अपनी असहायावस्था में भी यह निर्णय कर लिया कि चाहे कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े, उसे अपने भाइयों के लिए अलग मकान की व्यवस्था करनी होगी। अपने जेठ को समझा बुझाकर उसने कालेज स्क्वेयर के घर में वापस जाने की इच्छा व्यक्त की। किंतु, गुणाभिराम के ब्राह्म-बंधुओं ने स्वर्ण से बिना पूछे ही इस बीच घर का सारा सामान एकत्रित कर तेरह नंबर कार्नवालिस स्ट्रीट में स्थित ब्राह्म महिला बोर्डिंग के दो कमरे में भिजवा दिया। उनकी धारणा थी कि बिना किसी अभिभावक के एक अल्पवयसी अकेली महिला का भाड़ाघर में रहना उचित नहीं है। स्वर्ण को मन ही मन क्रोध आ रहा था। सबने कैसे सोच लिया कि वह दुर्बल और असहाय है? विष्णुप्रिया जब उन लोगों को लेकर अकेली कलकत्ता में रहती थी तब तो किसी ने कुछ नहीं कहा था अथवा कहने का साहस नहीं किया था। वह विधवा है, क्या इसी कारण वे समझते हैं कि उसका मनोबल कम है। स्वर्ण के मन में एक प्रकार की जिद समा गई। पिता, उसके ऊपर विश्वास करके दोनों भाइयों को उसके भरोसे छोड़कर गए हैं। यदि वह उन्हें दूसरों के घर में, दूसरों के आश्रय में बड़ा करेगी तो यह उसके दिवंगत पिता के प्रति घोर अपमान होगा।

स्वर्ण ब्राह्म लड़कियों के होस्टल में चली गई थी, किंतु, अपने दोनों भाइयों को साथ में रखने की अनुमति वहां के कार्यकर्त्ताओं ने नहीं दी। निरुपाय होकर स्वर्ण ने कमला और ज्ञान को सामने के ब्राह्म लड़कों के बोर्डिंग में रख दिया। बोर्डिंग का खाना वे नहीं खा पाते थे। अब तक अपने घर में राजसी भोजन खाने का अभ्यास होने के कारण, उनके लिए बोर्डिंग का मिर्चदार झोल और मोटे चावल का गीला भात खाना असंभव हो गया था। खुकी और छोटी ने तो पहले खाना एकदम छोड़ ही दिया था किंतु, बाद में उनकी हालत देखकर दुर्गा मोहनदास और अन्यान्य ब्राह्मों ने स्वर्ण के लिए स्वयं भोजन बनाकर खाने की व्यवस्था कर दी। इस व्यवस्था के पश्चात् बच्चियों को थोड़ा आराम मिला पर दोनों भाइयों का दुख देखकर स्वर्ण का मन विषाद से भर जाता था। इसीलिए उसने अपने जेठ और दुर्गा मोहनदास से अनुरोध किया कि वे उसके लिए एक अच्छा सा किराये का मकान खोज दें।

इस विपत्ति के समय अपने दुःख को हल्का करने के लिए स्वर्ण को तीन बांधवियां मिलीं थीं—हेम प्रभा, चारु प्रभा और लावण्य प्रभा। ये तीनों बहनें स्वर्ण को उसके कलकत्ता

में आगमन के दिन से ही सगी बहन की तरह स्नेह करती थीं। गुणाभिराम के देहावसान के दिन सारी रात वे स्वर्ण और उसके भाइयों के पास ही रही थीं। स्वर्ण के ब्राह्म गर्ल्स होस्टल में आने के दो दिनों बाद ही ये तीनों चिंतित भाव से एक दिन उसके पास गई थीं। थोड़ा इधर-उधर की बातें करके लावण्य प्रभा ने स्वर्ण से पूछा, "अच्छा, स्वर्ण। यह बतलाओ कि तुम्हारे पिता के कुटुम्बी जनों के साथ क्या तुम लोगों का अच्छा संबंध नहीं था?"

स्वर्ण ने अवाक् होकर उत्तर दिया "क्यों? मेरे पिता अपने वंश के सभी लोगों को बहुत प्यार करते थे, यही मैं हमेशा से देखती आई हूं।" कितनों को अपने पास रखकर उनका इलाज करवाया है, उन्हें घुमाया फिराया है। विपत्ति के समय असम के अपने कुछ संबंधियों की बीच-बीच में रुपए-पैसे से सहायता भी करते रहते थे।''

लावण्यप्रभा और उनकी दोनों बहनों ने स्वर्ण की बातें सुनकर दुःखी होकर सिर हिलाया। हेमप्रभा ने बहन स्वर्ण का हाथ पकड़कर अत्यंत कोमल स्वर में कहा, "आदमी इतना निष्ठुर और कृतघ्न हो सकता है यह अब समझ में आया है। कल, दादा (भाई) ने आकर कहा था कि आसाम से आए हुए तुम्हारे दो संबंधी कह रहे थे कि गुणाभिराम के असली उत्तराधिकारी वे ही लोग हैं। सुना है वे लोग संपत्ति के लिए अदालत में मुकदमा पेश करेंगे।"

"किंतु, ज्ञान और कमला के रहते हुए दूसरा कोई देउता की संपत्ति को पाने का दावा कैसे कर सकता है?"

''इस संसार में आश्चर्यजनक घटनाएं ही घटित होती हैं, समझी स्वर्ण। तुम्हारे संबंधियों का कहना है कि तुम्हारे माता पिता का विवाह वैध नहीं था क्योंकि ब्राह्म विवाह अवैध माना जाता है। इसलिए तुम लोग अपने पिता के असली उत्तराधिकारी नहीं हो सकते।"

स्वर्ण उत्तेजना में थर-थर कांप रही थी, "ये लोग इतने नीच हैं न? विपदा के समय कोई हमसे मिलने तक नहीं आया और अब संपत्ति पर अधिकार जमाने आ गए? हमें कमजोर समझकर सब हमें ठगना चाहते हैं। मैं भी दिखला दूंगी कि मैं संघर्ष कर सकती हूं। मेरे मां-बाप ने क्या मुझे यों ही बेथुन स्कूल में पढ़ाया था?,'' स्वर्ण की आवाज कांप रही थी किंतु जोर से अपना होंठ दबाकर उसने अपने आंसुओं को रोक लिया। हेमप्रभा वगैरह ने उसे समझा बुझाकर शांत करते हुए कहा, "तुम चिंता मत करो स्वर्ण ! किसी नामी वकील को अपने पक्ष में ले लेने पर तुम्हारी विजय अवश्य होगी। किंतु तुम्हें एक काम करना होगा। इसीलिए हम तुम्हारे पास आई हैं। तुम्हारे पिता के कागज-पत्रों में यदि उनके विवाह के रजिस्ट्रेशन का कागज तुम्हें मिल जाए तो सारी समस्याएं हल हो जाएंगी। दादा के कथनानुसार उन्होंने आसाम में पहली बार अपने विवाह का रजिस्ट्रेशन कराया था।"

हेमप्रभा आदि के चले जाने के बाद उस दिन स्वर्ण अकेली बैठकर बहुत देर तक रोती रही। जिन्होंने इस संसार की समस्त अशांति से मुक्ति पा ली उनके विवाह की वैधता

प्रमाणित करना, क्या उनकी पवित्र स्मृति को कलंकित करना नहीं होगा? ऐसा प्रमाण खोजने की क्या आवश्यकता है? किंतु, अगले क्षण वह समझ गई कि कानून, देशाचार, लोकाचार आदि शृंखलाओं ने उसे जकड़ रखा है। इच्छा करने पर भी वह इनसे मुक्त नहीं हो सकती। अपने नहीं तो भाइयों के हित में उसे इस गंदे कीचड़ में उतरना ही होगा, अन्यथा उन लोगों को कौन देखेगा?

स्वर्ण उस दिन बहुत देर रात तक अपने पिता के कागज-पत्रों वाले बक्सों को खोलकर उनमें रजिस्ट्री के कागज को खोजती रही। सारे कागज तितर-बितर हो गए थे। स्वर्ण ने यथासंभव उन कागजों को ठीक करने का प्रयत्न किया। किंतु इतनी कम जगह में उन सबको सुव्यवस्थित ढंग से रखना संभव नहीं था। स्वर्ण ने उस कागज को पाने की आशा छोड़ ही दी थी। किंतु, अंत में एक सुंदर ढंग से बांधकर रखी गई फाइल में वह बहुमूल्य कागज उसे मिल गया। दूसरे दिन ही उसने वह कागज ले जाकर आनंद मोहन बसु को दे दिया। इसके बाद मुकदमा स्वर्ण के पक्ष में ही निर्णीत हुआ। दुर्गा मोहनदास के परामर्श के अनुसार स्वर्ण को कानूनी तौर पर भाइयों की अभिभाविका और गुणाभिराम की संपत्ति का न्यासी बना दिया गया था। दूसरे न्यासी थे दुर्गा मोहनदास के जामाता सर जगदीश चन्द्र बसु।

## 7

जब नगांव के सरकारी अस्पताल के परिसर को बढ़ाने की बात उठी तो उच्च प्रशिक्षण प्राप्त नर्स की आवश्यकता हुई। तारा के काम-काज से अत्यंत संतुष्ट होकर अस्पताल के अंग्रेज डाक्टर ने उसे छह मास कलकत्ते में रहकर प्रशिक्षण लेने के लिए मनोनीत कर दिया। अपने दोनों लड़के और लड़की को हेनरी के पास छोड़कर प्रशिक्षण के लिए जाने को तारा का मन नहीं था, किंतु हेनरी के आग्रह करने पर वह राजी हो गई।

तारा इसके पहले भी एक बार कलकत्ता गई थी, जब वह ब्रनसन साहब के साथ अमेरिका जा रही थी। अतः कलकत्ता उसके लिए बिल्कुल अपरिचित स्थान नहीं था। फिर भी नर्स के प्रशिक्षण की व्यस्तता में कुछ दिनों तक स्वर्ण के विषय में वह कुछ सोच ही नहीं पाई थी। नगांव से ही उसने स्वर्ण को एक पत्र लिखा था, धर्मकांत के बताए पुराना-बैठक खाना लेन के पते पर। किंतु, उस पत्र का कोई जवाब नहीं आया। एक दिन कलकत्ता मेडिकल कालेज में पढ़ने वाली नगांव की एक क्रिश्चियन लड़की से तारा को खबर मिली कि डा. विपिन बिहारी सरकार गुणाभिराम बरुआ को अच्छी तरह जानते हैं। तारा को तो मानो हाथ में स्वर्ग मिल गया। मेडिकल कालेज में डा. विपिन बिहारी से मिलने के बाद उसे सारी खबर मिल गई। गुणाभिराम बरुआ की मृत्यु के बाद स्वर्ण अपनी दोनों बेटियों

और अपने दोनों भाइयों को लेकर कार्नवालिस स्ट्रीट के ब्राह्म बोर्डिंग में और उसके बाद विजितला के एक घर में थी। वहां पर ही ज्वर आने पर कमला की मृत्यु हो गई। उसके बाद घर बदलकर अब वह भवानीपुर के जेलियापाड़ा रोड पर रहने लगी है।

दूसरे दिन ही तारा भवानीपुर के भाड़ाघर को खोजती हुई स्वर्ण के घर पहुंच गई। उस समय स्वर्ण घर पर नहीं थी। काम करने वाली एक लड़की ने उसे बैठाया। वह लड़की भी नगांव की ही थी। उसके साथ तारा ने दो एक बातें कीं। उसने कहा कि स्वर्ण के पास रहने के लिए नगांव से काली वाइदेव और उनका लड़का प्रियनाथ आया हुआ है। तारा ने बैठक खाने में चारों तरफ दृष्टि घुमाकर देखा कि कमरा छोटा होने पर भी अच्छी तरह सजा कर रखा गया था। एक कोने में किताबों की अलमारी थी। उसमें रखीं हुई अधिकांश पुस्तकें गुणाभिराम की थीं। 'आसाम बंधु' की जिल्द बंधी दो प्रतियां भी थीं। दीवार पर फूलों की माला से सजाकर लगाए गए चार फोटो थे। एक में गुणाभिराम और विष्णुप्रिया दोनों साथ-साथ थे और दो फोटो कोमल मुखाकृति वाले दो बालक करुणाभिराम और कमलाभिराम के थे। तारा को उन्हें पहचानने में कुछ विशेष असुविधा नहीं हुई। चौथा फोटो साहबी पोशाक पहने एक युवक का था। बिल्व कुटीर में आज से आठ वर्ष पहले देखे स्वर्ण के पति डा. नंद कुमार राय की मुखाकृति को तारा ने याद करने की चेष्टा की थी। यह निःसंदेह उन्हीं का फोटो होगा। तारा का मन विषाद से भर गया। चहुं ओर घिरी दुःख की इन स्मृतियों को लेकर स्वर्ण अपने को कितना अकेली महसूस करती होगी।

तभी घर के बाहर एक घोड़ागाड़ी आकर रुकी। उसमें से स्वर्ण और एक युवक नीचे उतरे। तारा ने युवक को पहचान लिया। वह स्वर्ण की बड़ी बहन काली वाइदेव का पुत्र प्रियनाथ था। बिल्व कुटीर में वह प्रायः आता रहता था। स्वर्ण को देखकर तारा अवाक रह गई। इतने दुःख-कष्टों के बीच भी वह पहले की तरह लावण्यमयी थी। शरीर का रंग अवश्य थोड़ा धीमा हो गया था। उसके माथे पर सिंदूर की बिंदी नहीं थी, फिर भी धूप से रक्त वर्ण हुए आनन को बिंदी का अभाव म्लान नहीं कर पाया था। स्वर्ण एक हाथ से सिर का आंचल संभालते हुए घर के भीतर आई। तारा को हठात सामने देखकर पहले तो वह अवाक रह गई। उसके बाद आनंद से उसका आलिंगन करते हुए हुड़क हुड़क कर रोने लगी, बिल्व कुटीर में उस आठ वर्ष पूर्व की संध्या की बात को याद करके स्वर्ण कहने लगी "तारा ! मेरे सारे सपने चूरचूर हो गए। मैं अब तक जीवित हूं यही आश्चर्य की बात है।" स्वर्ण एक के बाद एक घटित अपने जीवन की दुःखद घटनाएं सुना रही थी। पति, पिता, माता, करुणा और कमला— मानो मृतात्माओं का एक मौन जुलूस उसकी आंखों के सामने से निकल गया हो। कमला की मृत्यु का वर्णन करते समय स्वर्ण की आंखों का पानी सूख गया था।

"उसे बचाने के लिए मैंने बहुत चेष्टा की तारा ! बेचारा सभी बातों में मुझ पर पूरी

तरह निर्भर था। अंतिम क्षण तक मेरा हाथ पकड़े रहा। पहले ज्वर के आरंभ होने पर हमारे परिचित डाक्टरों ने कहा था कि दार्जिलिंग ले जाने पर उसे लाभ हो सकता है। मैंने सारी व्यवस्था करके उसे और ज्ञान को दार्जिलिंग भेजा था। किंतु, वहां जाकर रोग और बढ़ गया। वहां से वापस आकर वह मेरे पास एक महीना रहा। डाक्टरों का मत था कि उन सभी को काला ज्वर हुआ था। कहते हैं, आसाम के लोगों को यह ज्वर होता है, किंतु हमें तो आसाम छोड़े बहुत दिन हो गए।"

"ऐसे रोगों की गतिविधि को पहचानना बहुत कठिन है स्वर्ण ! शरीर में रोग के प्रवेश करने के बहुत दिन बाद लक्षण प्रकट होते हैं। नगांव में मैंने इस रोग से ग्रसित बहुत लोगों को देखा है। वहां यह महामारी की तरह फैला था"— बात का प्रसंग बदलने के विचार से तारा ने फिर कहा, "ज्ञान कहां गया है, स्वर्ण?"

"सबके कहने पर मैंने उसे विलायत भेज दिया। कमला के देहावसान के बाद से उसका शरीर और मन दोनों ठीक नहीं था। वह बेचारा टूट गया था। इस काल-व्याधि से उसकी रक्षा करने के लिए मैं पागल सी हो गई थी। पहले एक डा. बंधु के साथ सागर की हवा लेने के लिए उसे बंबई भेजा था। वहां से वापस आने पर सबने यही सलाह दी कि विलायत जाने पर वह इस बीमारी से बच जाएगा। अब उसे वहां भेजे लगभग दो महीने हो गए हैं। उसे रुपए भेजने की व्यवस्था करने के लिए आज मैं बैंक गई थी। एक समय की मेरी सहपाठिनी मिसेज गुप्ता का मुझे पत्र मिला है कि हाईगेट में रहने वाली मिसेज स्पीयर के साथ रहकर ज्ञान की पढ़ाई लिखाई की व्यवस्था की गई है। श्रीयुत दुर्गामोहनदास और डा. जगदीश चन्द्र बसु ने सब ठीक ठाक कर दिया है।''

"इसका अर्थ है कि तुम अब बिल्कुल अकेली हो?" तारा ने पूछा।

"अभी तो काली बाइदेव और भागिनेय प्रियनाथ यहां हैं। किंतु, वे लोग हमेशा यहां कैसे रह सकेंगे? इन लोगों के चले जाने के बाद मैं क्या करुंगी, अभी इस बारे में कुछ सोच नहीं सकी हूं। ब्राह्म लड़कियों के स्कूल में काम करने के लिए मुझे बुलाया जा रहा है। किंतु, खुकी और छोटी को छोड़कर जाने का मन नहीं होता। खुकी हमेशा बीमार रहती है, उसके लिए भी मुझे बड़ी चिंता रहती है।" स्वर्ण अपनी दोनों लड़कियों को बुलाकर ले आई। दोनों ही देखने में सुंदर थीं। बड़ी की अवस्था सात वर्ष की हो गई थी। पास के अंग्रेजी स्कूल में उसका नाम लिखा दिया था।

उस दिन दोनों सहेलियों ने सारे दिन बातें कीं। स्वर्ण ने नगांव के सभी परिचितों के समाचार पूछे। तारा जितना संभव हो सका, सब बतलाती गई। पंचानन शर्मा ने आजकल अन्य व्यक्तियों के सहयोग से बालिकाओं के लिए एक प्राथमिक स्कूल खोला है। "इस आदमी का हृदय कोमल है", तारा ने कहा, ''धर्मकांत भाई के जेल चले जाने के बाद वे लक्ष्मी की खोज खबर भी लेते रहते हैं।'' धर्मकांत का प्रसंग आते ही स्वर्ण उसके बारे

में अधिक जानने के लिए समुत्सुक हो उठी।

"बोलो, धर्म भाई का क्या हुआ? हमारे यहां आने पर वे असम के गरीब कृषकों की ओर से कोई आवेदन पत्र ले आए थे। देउता के साथ इस विषय पर विचार करते हुए भी मैंने उन्हें देखा था।"

"उसी समय वे हमारे घर पर भी गए थे। कृषक वर्ग को संगठित करके उनका संघ बनाने की बात तब उन्होंने हमसे कही थी। उस समय मैं उनकी बातें नहीं समझ पाई थी। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा करके भी दिखला दिया।"

"धर्मकांत भाई ने मुझे भी ये बातें बतलाई थीं। सुनते हैं कि विदेश में गरीब कृषकों और कारखाने के श्रमिकों ने संगठित होकर राजा को खदेड़कर जनता का राज्य स्थापित किया है। उन्होंने मुझे फ्रांस की क्रांति के बारे में लिखी एक पुस्तक भी पढ़ने को दी थी। उन सब स्थानों में सचमुच आश्चर्यजनक घटनाएं घटित हो रही हैं।"

हमारे असम में भी आश्चर्यजनक घटनाएं ही घटी थीं। तारा ने उत्साहित होकर कहा, "रंगिया, पथरुघाट और कामरूप के कुछ स्थानों में गरीब जनता ने संगठित होकर स्वयं अंग्रेज सरकार के विरुद्ध संघर्ष किया। उसका वर्णन सुनकर तुम दांतों तले अंगुली दबा लोगी स्वर्ण !" उसके बाद तारा ने इस घटना का कुछ विवरण जैसा धर्मकांत के मुख से सुन रखा था, वैसा ही स्वर्ण के सामने प्रस्तुत करने की चेष्टा की।

कलकत्ता से लौटकर धर्मकांत पहले डिब्रूगढ़ गया था। किंतु, वहां वह अधिक दिनों तक नहीं रह पाया। कामरूप, दरंग और नगांव की जनता ने अंग्रेजों द्वारा भूमि कर बढ़ाने के कारण क्रुद्ध होकर स्थान-स्थान पर सभाएं करके निश्चय किया था कि वे लोग नई दर से खजाना नहीं भरेंगे। उन सभाओं में हजारों की संख्या में जनता एकत्रित हुई थी और एक दो स्थानों के लोग तो इतने विद्रोही हो उठे थे कि वे लाठी भाला आदि लेकर मुकाबला करने को भी तैयार हो गए थे। धर्मकांत यह खबर पाते ही तत्काल निचले असम की ओर चल पड़ा। उसके साथ में दो तीन सहकर्मी भी थे। वे सब रैयत सभा के सदस्य थे। कामरूप पहुंचकर उन लोगों ने देखा कि स्थिति बहुत विषम है। जनता खजाना न भरने के लिए दृढ़ संकल्प थी। खजाना वसूल करने गए मंडल और दूसरे कर्मचारियों को जनता ने बहुत परेशान किया। दो एक जगह मारपीट भी हुई। धर्मकांत को गुवाहाटी में यह खबर मिल गई थी कि मौजादारों की रिपोर्ट पाकर सरकार भी चुप नहीं बैठी है। वह जनता को उसकी तरह पाठ पढ़ाने के लिए सिपाहियों को तैयार कर रही है।

धर्मकांत और उनके साथी एक गांव से दूसरे गांव में जाकर जनता को समझाते थे कि वे जो कुछ भी करें, संगठित होकर करें। एकता ही असली शक्ति है। धर्मकांत सभाओं में इस पर एक कहानी सुनाता था। किस तरह बूढ़े बाप ने अपने बेटों को मिलजुलकर काम करने की शिक्षा, लकड़ियों के गट्ठर की उपमा से दी थी। जनता उस कहानी का भावार्थ

तत्क्षण समझ जाती थी और उससे शिक्षा ग्रहण करती थी। किसी का घर कुर्क करने के लिए सरकारी कर्मचारी आया है यह सुनते ही गांव भर के लोग जाकर बाधा देते थे और निम्न श्रेणी के उस कर्मचारी को गांव से निकाल बाहर करते थे। किसी ने चुपचाप खजाना भर दिया है यह सुनते ही सारे गांव वाले सभा करके उसे जाति बहिष्कृत कर देते थे। किसी मौजादार ने किसी पर अत्याचार किया है, ऐसी खबर मिलते ही गांव के लोग जुलूस निकालकर उस मौजादार के घर के सामने धरना देते और जब तक मौजादार सबके सामने दण्डवत करके क्षमा नहीं मांग लेता तब तक वे वहां से नहीं उठते थे। जुलूस में जाने वालों को धर्मकांत हमेशा यह सीख देता था कि अस्त्र-शस्त्र की ताकत से एकता की ताकत कहीं अधिक होती है। इसलिए हाथों में लाठी-भाला आदि हथियार लेकर जाने की कोई जरूरत नहीं है। निरस्त्र जनता के ऊपर सरकार किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकती, यह अंग्रेजों का कानून भी मानता था। वृद्धजन और युवक सभी धर्मकांत की बातों को उचित ठहराते हुए उसका समर्थन करते थे। किंतु, एक दिन सभी को अवाक करके सरकारी पुलिस सदल-बल गांव में घुस आई और सभी मुखिया लोगों को गिरफ्तार कर रंगिया थाने में चालान कर दिया गया। गिरफ्तार लोगों में धर्मकांत भी था। रंगिया थाना में जाने पर देखा गया कि वहां सबको रखने लायक व्यवस्था नहीं है। इसलिए पुलिस अफसर ने आदेश दिया कि सभी बंदियों को थाने के सामने चौताल में बांस का एक बेड़ा देकर खुले आकाश के नीचे रखा जाए। धर्मकांत ने इस विचित्र आदेश का प्रतिवाद किया था। किंतु, बात और न बिगड़ जाए– ऐसा सोचकर बूढ़े और युवक लोग काम में लग गए। दिन भर में ही बांस का बेड़ा तैयार हो गया। उसके प्रवेश-द्वार पर एक दल पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। पौष-मास की ठंड में कांपते हुए सभी ने वहां किसी तरह रात बिताई। उन्हें खाने को रूखा भात और नमक के सिवाए कुछ नहीं दिया गया।

दूसरे दिन सन् 1894 की दस जनवरी थी। तारा को यह तारीख अच्छी तरह याद थी क्योंकि उसी दिन उसकी बेटी का जन्मदिन था। धर्मकांत वगैरह को कुछ संतरियों से खबर मिली थी कि कल संध्या को कामरूप के डिपुटी कमिश्नर मेकेरे साहब रंगिया पहुंच गए हैं। साथ में पुलिस की कई गाड़ियां भी हैं। थाने में साहब के आने के थोड़ी देर बाद दूर से लोगों की भीड़ के नारे सुनाई पड़े और तभी थाने में हलचल मच गई। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के निर्देशानुसार थाने को बंदूकधारी पुलिस द्वारा घेर लिया गया। किंतु वे लोग बराबर नारे लगा रहे थे, खजाना कम करने के लिए और बंदियों को मुक्त करने के लिए। लोगों के हाथों में कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था। मात्र कुछ लोगों के हाथों में बांस के दो एक डंडे थे।

धर्मकांत उन्हें देखकर आश्वस्त हुआ। ऐसे एक शांतिपूर्ण समावेश पर पुलिस कभी आक्रमण नहीं करेगी। उसे आशा थी कि डिपुटी कमिश्नर साहब बाहर निकलकर जनता

को आश्वासन देंगे, और 'अधिसंख्य' लोगों की मांगें अवश्य मान लेंगे। किंतु, ऐसा नहीं हुआ। मेकेरे साहब ने स्वयं बरामदे में आकर पुलिस को निर्देश दिया कि समवेत जनता को खदेड़ने के लिए गोली चलाई जाए। तभी गोली की आवाज और जनता के आर्तनाद से आकाश मंडल कांप उठा। कितने लोग मौत के घाट उतार दिए गए इसका कोई हिसाब नहीं था। कृषकों के रक्त से मैदान लाल हो गया।

अपनी बातें कहते-कहते तारा उत्तेजित हो उठी। उसके ललाट पर स्वेदकण चमकने लगे। स्वर्ण ने उत्सुकता से पूछा, "उसके बाद क्या हुआ? धर्मभाई का उन लोगों ने क्या किया? हमारे कितने आदमी मरे?"

"कितने आदमी मरे, इसका सटीक हिसाब कोई नहीं दे सकता। सुना है कि पुलिस ने मृतक शरीरों को मैदान के एक खड्डे में एक साथ दबाकर जला दिया। हमारे आदमी बहुत सीधे थे स्वर्ण ! अधिकांश तो बंदूक की गोली को पहचानते तक नहीं थे। पहले तो गोली के जवाब में उन लोगों ने क्रोध में आकर ढेले चलाए, पर बाद में साथ के आदमियों को गोली लगने पर गिरते हुए देखकर लोगबाग इधर-उधर भाग गए। धर्मभाई को वहां से गुवाहाटी के जेल में भेज दिया गया।

''इधर गुवाहाटी में हमारे शिक्षित असमिया लोगों को खबर मिली कि केवल रंगिया में ही नहीं, दरंग के पथरुघाट और अन्य कई स्थानों की जनता के ऊपर आक्रमण करके पुलिस ने बहुतों की जान ले ली है।'' चारों तरफ हाहाकार मचा है। शिक्षित लोगों ने सरकार के पास अर्जी भेजी ताकि निरीह जनता का दोष क्षमा करके उनका दंड कम कर दिया जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि अंत में सरकार ने दया करके बहुत से लोगों को छोड़ दिया, किंतु नेताओं को नहीं छोड़ा। इधर जोरहाट, शिवसागर, तेजपुर आदि स्थानों में शिक्षित जनों ने रैयत-सभा करके सरकार के पास आवेदन-निवेदन करना आरंभ किया। इसके परिणाम स्वरूप जनता की एक दो मांगें सरकार ने मान लीं।

"धर्मभाई को जेल से छुटकारा दिलाने के लिए गुवाहाटी के कई लोग सरकार के पास गए थे, किंतु कोई परिणाम नहीं निकला। उनके विरुद्ध बहुत से अभियोग थे। कहा गया कि 'दिग्विजय' में लिखी गई बातों से राजद्रोह का प्रमाण मिलता है। वास्तव में धर्मकांत के पिता का परिचय पुलिस ने निकाल लिया था। इसीलिए मिथ्या षडयंत्र रचकर उन्हें एक वर्ष का कारावास दे दिया गया।"

"लगता है बेचारी लक्ष्मी की बहुत दुर्दशा हुई होगी, नहीं?'' स्वर्ण ने इतनी देर बाद प्रश्न किया।

"लक्ष्मी के समाचार हमें बहुत दिनों बाद मिले। यद्यपि धर्मकांत भाई के विषय में जहां तहां से कुछ सुनने को मिला था। फिर भी बात ठीक से मालूम नहीं पड़ी थी। जब उन्हें नगांव जेल में बदली करके लाया गया तो उन्होंने जेल के एक गार्ड के हाथ से चिट्ठी

लिखकर हमें भेजी थी। उसी से हमें ज्ञात हुआ कि वे वहां पर हैं। हम अनुमति लेकर उनसे मिलने जेल गए थे। जेल देखने का वही मेरा प्रथम अवसर था। थोड़ा भय भी लग रहा था। धर्मकांत को उन्होंने अच्छी तरह ही रखा था। खाने-पीने का कोई कष्ट नहीं दिया था। पढ़ने के लिए पुस्तक व पत्रिकाएं भी दी थीं। उन्होंने हमसे लक्ष्मी और अपने दोनों बच्चों के समाचार लाने का अनुरोध किया था किंतु, मालूम होता है, रंगिया की उस दिन की घटना से वे बहुत अशांति का अनुभव कर रहे थे। बार-बार यही कहते कि "मेरी आंखों के सामने इतने सारे लोग मर गए, मैं कैसे इसे भूल सकता हूं? इसका प्रतिवाद करना ही होगा। निरस्त्र जनता के ऊपर ऐसा पाशविक अत्याचार मैं कैसे सहन करूं?" मुझे बड़ा भय लग रहा था स्वर्ण ! उस दिन धर्मकांत भाई की आंखों में क्रोध की जो ज्वाला देखी थी, वह ऐसे ही शांत होने वाली नहीं।"

"लक्ष्मी के पास तुम लोग गए थे न?"

"गए थे। लक्ष्मी के पिता से मिलकर सारी बातें कहने पर वे भी मेरे साथ डिब्रूगढ़ जाने के लिए निकल पड़े। हम जहाज द्वारा शिलघाट होकर डिब्रूगढ़ पहुंच गए। नगर देखने में आकर्षक लगा। अंग्रेज लोग अधिक थे। लक्ष्मी के घर पहुंचते-पहुंचते हमें शाम हो गई। द्वार पर से ही सुना कि लक्ष्मी एक ब्राह्मगीत गा रही है। वही गीत जो तुम्हारे घर गाया जाता था—नाथ! तारियो।"

"वह तो बरगीत है। देउता को यह गीत बहुत अच्छा लगता था। बिस्तर पर पड़े रहने के समय मां भी मुझे यही गीत गाने को कहती थीं," स्वर्ण ने दूर तक देखकर कहा था।

"लक्ष्मी के पिता बहुत देर तक दरवाजे पर चुपचाप खड़े रहे। गीत समाप्त होने पर उन्होंने खांसकर हमारे आने की जानकारी दी। लक्ष्मी पहले तो हमें देखकर अवाक् रह गई। उसके बाद अपने पिता के चरण-स्पर्श किए। इतने दिनों बाद बाप और बेटी का यह मिलन देखकर मैं अपने आंसुओं को नहीं रोक पाई। लक्ष्मी को हमने धीरे-धीरे सारे संवाद दिए। उसे पहले ही धर्मकांत की गिरफ्तारी की खबर मिल गई थी। पुलिस धर्मकांत के कागज-पत्रों की तलाशी लेकर 'दिग्विजय' पत्रिका की प्रतियां ले गई थी। उसके साथ बातचीत करने पर लगा कि उसने सारी बातों को धीर-स्थिर भाव से संभाल लिया है। स्कूल के ब्राह्म प्रधानाध्यापक ने उसकी बहुत मदद की थी। उसका वेतन भी पांच रुपए बढ़ा दिया था। लक्ष्मी के साथ अब उसकी सास रहती थी। प्रारंभ में उनके विवाह से उन्हें दुःख हुआ था, अब वे लक्ष्मी को बेटी के समान प्यार करती थीं। किंतु, खाना एक साथ नहीं करती थीं।

लक्ष्मी के पिता उसको नगांव ले जाना चाहते थे किंतु उसने जाना स्वीकार नहीं किया। उसने कहा कि यह उसके जीवन का चरम परीक्षा-काल है। यह परीक्षा उसे अपने बल

पर उत्तीर्ण करनी होगी। पिता उसे आशीर्वाद देकर चले गए। सुना है इस बार वह एन्ट्रेन्स परीक्षा भी देगी। कितने कष्टपूर्वक वह अपना अध्ययन कर रही है? निश्चय ही वह उत्तीर्ण हो जाएगी।" तारा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"धर्मकांत भाई को बाद में बरी किया गया या नहीं?"

"छोड़ दिया गया, हमारे घर पर एक रात रहकर वे डिब्रूगढ़ चले गए। मैंने उन्हें बार-बार समझाकर भेजा कि वे कुछ भी करें, खूब सोच समझकर करें। अकेली लक्ष्मी बेचारी संसार में कितना संघर्ष करेगी।"

"हां, कुछ लोगों के भाग्य में अकेले संघर्ष करना ही लिखा होता है", स्वर्ण ने लंबी सांस भरकर कहा।

तारा कुछ देर तक स्वर्ण का मुख देखती रही। फिर झट से पूछ बैठी, "स्वर्ण ! तुम फिर से विवाह क्यों नहीं कर लेती?"

स्वर्ण कुछ देर सिर नीचा किए बैठी रही। तारा ने लक्ष्य किया कि उसके दोनों कपोल थोड़े लाल हो गए हैं। स्वर्ण ने तारा को कुछ कहना चाहा, पर अपने को संयमित करते हुए तत्काल बोली, "इन सब विचारों को मैं अपने मन से दूर कर चुकी हूं तारा ! मुझ जैसी अभागिन नारी किसी दूसरे का संसार ध्वंस करने की बात नहीं सोच सकती।"

"दुर्भाग्य किसके जीवन में नहीं आता स्वर्ण ! इसके लिए तुम अपने को उत्तरदायी क्यों मानती हो। इस तरह की निरर्थक बातों को छोड़ दो, तुम जैसी सर्वगुण संपन्ना लड़की से विवाह करने के लिए कोई न कोई अच्छा व्यक्ति मिल ही जाएगा। तुम्हारे देउता के मित्रों ने इस विषय में क्या तुमसे कोई बात नहीं की? ब्राह्म लोग तो विधवा विवाह का समर्थन करते हैं।"

"दो एक ने कहा है। किंतु, भाइयों के विषय में सोचकर ही मैंने अपना मत नहीं दिया। मेरे चले जाने पर इनका क्या होगा?" तारा ने लक्ष्य किया कि स्वर्ण शायद भूल गई है कि एक एक करके सभी उसे छोड़ गए हैं। तारा ने प्यार से स्वर्ण की पीठ थपथपा कर कहा, "ज्ञान तो विलायत चला ही गया है। अब तुम्हें और क्या बाधा है?"

स्वर्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया। हठात उसका मन जैसे हर्षित हो उठा। शायद बहुत दिनों बाद किसी ने सीधे रूप में उसे भविष्य के संबंध में कुछ आशा दी थी। तभी एक चाट वाला 'चाट ले लो चाट' चिल्लाता हुआ चला गया। स्वर्ण ने हाथ के इशारे से उसे बुलाया। एक छोटी लड़की की तरह स्वर्ण ने हंसते हुए कहा, "कलकत्ता की चाट खाई है? एक बार खाने पर जीवनभर भुला नहीं सकोगी"। छोटी और खुकी अवाक् होकर मां का मुख देखने लगीं। उन्होंने बहुत दिनों से मां को इतना प्रसन्न नहीं देखा था। असम से आई यह नई मौसी उन्हें बहुत अच्छी लगी।

## 8

अर्द्धवार्षिक प्रशिक्षण समाप्त होने के बाद नगांव वापिस जाने पर तारा हताश हो गई। सरकारी अस्पताल की उन्नति के लिए सरकार ने जो योजना हाथ में ली थी, बाद में आर्थिक अभाव के कारण उसे छोड़ देना पड़ा। तारा को जिस उद्देश्य से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया था, वह उद्देश्य ही समाप्तप्राय हो गया। अंत में नगांव अस्पताल के डाक्टर ने उसे सलाह दी कि गुवाहाटी के सिविल अस्पताल में उसे अपनी बदली करा लेनी चाहिए। वहां उसे अपने ज्ञान का अधिक उपयोग करने की सुविधा मिलेगी। इस बीच नगांव मिशन से भी उसके पास एक नए काम के लिए बुलावा आया था। बेल्स मिशन शिलांग में एक नया अस्पताल खोलने वाला था। उसमें एक योग्य नर्स की आवश्यकता थी। तारा अपने काम के बारे में सोच ही रही थी कि हेनरी ने समस्या का समाधान कर दिया। गुवाहाटी हाई स्कूल में सेकेंड मास्टर का एक पद खाली हुआ था। हेनरी ने सरकार को अर्जी देकर वहीं अपनी बदली करा ली। बहुत दिनों से हेनरी गुवाहाटी जाने की सोच रहा था। उसकी धारणा थी कि गुवाहाटी पहुंचने पर असम के बाहर का जगत नजदीक हो जाएगा। हाल ही में चालू किए गए मेल स्टीमरों द्वारा गुवाहाटी से गोवालैंड मात्र दो दिनों में पहुंचा जा सकता है। वहां से कलकत्ता तक ट्रेन से मात्र एक रात का रास्ता है। अंग्रेजों ने भी इस स्थान का महत्त्व समझकर सभी कार्यालयों और कचहरी को वहीं बनाया है। गुवाहाटी से शिलांग तक का एक नया रास्ता बन गया है। इसके अतिरिक्त हेनरी के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि गुवाहाटी में एक कालेज स्थापित करने की बात चल रही थी। कालेज होने पर कलकत्ता की तरह गुवाहाटी भी आधुनिक चिंतन की चर्चा का प्राण-केंद्र हो जाएगा। 'जोनाकी' की तरह बहुत सी पत्रिकाएं निकलेंगी और शिक्षितों की संख्या में वृद्धि होगी। ऐसे भविष्य की आशा में ही हेनरी ने तारा को गुवाहाटी जाने के लिए राजी कराया।

नगांव छोड़कर आने में तारा को बहुत खराब लग रहा था। इस स्थान की कितनी छोटी-बड़ी स्मृतियां उसके हृदय में संचित थीं। अपने जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समय उसने इसी छोटे नगर में बिताया था। बेप्टिष्ट मिशनरियों से उसने अविस्मरणीय प्यार और सुरक्षा पाई थी। ब्रनसन साहब की स्मृति आज भी उसके मन में सजीव थी। उनके स्वर्गवास का दुःखद समाचार पाकर वह कितना रोई थी? उसने ब्रनसन साहब से मानव-सेवा और आत्म-त्याग का जो महान आदर्श पाया था, क्या उसे वह अपने जीवन में चरितार्थ कर भी पाएगी? ब्रनसन साहब एक विदेशी थे, इस बात पर उसे विश्वास नहीं होता था। उनके आचरण के साथ अंग्रेज शासकों के आचरण का कोई मेल तारा को दृष्टिगत नहीं होता था किंतु, हेनरी बातों को अन्य रूप में लेता था। उसके मतानुसार पादरी लोग अंग्रेज शासकों

का कभी विरोध नहीं करते थे। पथरुघाट, रंगिया आदि स्थानों के नृशंस हत्याकांड के बाद भी पादरी लोगों ने सरकार के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाई। मानव सेवा के व्रती इन लोगों का सरकार द्वारा जनता के उत्पीड़न के विरोध में बिल्कुल चुप रह जाना, कैसी अद्भुत बात है? एक दिन हेनरी ने तारा को 'अरुणोदय' की एक पुरानी प्रति से 'नगञा द्रोही लोकर चरित्र वर्णन' शीर्षक लेख पढ़कर सुनाया था। वह लेख जहां तक संभव है किसी पादरी द्वारा ही लिखा गया था। उसमें असमिया लोगों के प्रति कितनी घृणा व्यक्त की गई थी और अंग्रेज शासकों के प्रति कितनी अटूट श्रद्धा।

किंतु, फिर भी तारा मां की कही इस बात को भूल नहीं पाती 'पादरी साहबों और मेमों की कृपा से ही हम आज ऐसे ढंग से रह पा रहे हैं, नहीं तो हमारी न जाने क्या दशा हुई होती?' हेनरी भी अकृतज्ञ नहीं है। किंतु अतीत की शृंखला से वह अपने को बांधकर रखने की अपेक्षा स्वतंत्रता पूर्वक ही विचार करना चाहता था।

गुवाहाटी आने के बाद तारा और हेनरी के दिन अत्यंत व्यस्तता में निकल रहे थे। ब्रह्मपुत्र के पार स्थित सिविल अस्पताल का परिवेश बड़ा शांत था। नदी की वायु घर को शीतल बनाए रखती थी। अस्पताल के समीप पानबाजार में तारा और हेनरी एक सरकारी घर में रहते थे। हेनरी का स्कूल घर से मात्र दो कदम पर था। साधारणतः सुबह दस बजे से संध्या चार बजे तक तारा को अस्पताल में काम रहता था। किंतु, कभी-कभी रात्रि में भी काम पर जाना पड़ता था। कभी कभी दिन के काम में भी उसे शाम के पांच बज जाते थे। अस्पताल में नर्सों की संख्या इतनी कम थी कि विशेष आवश्यक काम होने पर सर्जन महोदय तारा को कुछ देर और रुक जाने का अनुरोध करते थे। तारा का मन अपने बच्चों के पास जाने का होता था किंतु वह सहर्ष अतिरिक्त काम भी कर दिया करती थी। तारा का लड़का नरेन प्राइमरी स्कूल में पढ़ने जाता था और तीन वर्ष की बेटी नमिता घर में ही रहती थी। उसकी देखभाल करने के लिए उसे एक वृद्धा गुवाहाटी मिशन की तरफ से मिल गई थी।

सिविल अस्पताल के पास में ही मिशन था। वहां पर कई सुंदर-सुंदर पुराने बंगले थे। साथ वाला पक्का गिरजाघर एक दर्शनीय स्थान था। साहब का नवनिर्मित बंगला, क्लब घर आदि सभी घर पक्के और सुंदर थे। ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे जाने वाला स्टैण्ड रोड के एक ओर उच्च सरकारी अधिकारियों के कई बंगले थे। तारा और हेनरी कभी-कभी शाम को दीघली पोखरी के पार घूमने के लिए जाते थे। पोखरी के उत्तर पार पर स्थित साहबों के क्लबघर के सामने से जाने वाले मार्ग पर संध्या के बाद देशी लोगों को आने-जाने की अनुमति नहीं थी। दोनों तरफ दरबान लोग रास्ते पर पहरा देते थे। देशी लोग इस पर कोई आपत्ति नहीं करते थे। उन लोगों ने मान लिया था कि राजपथ पर चलने का अधिकार राजघराने के लोगों को ही है। दीघली-पोखरी पार से भारतीय लोग गर्दन उठाकर

देखते थे, ताकि क्षणभर के लिए ही सही, साहबों और मेमों के क्लब की ओर जाने का दुर्लभ दृश्य उन्हें देखने को मिल जाए।

उस दिन सन् 1897 जून महीने की बारह तारीख थी। सुबह से ही बादल घिरे हुए थे। अस्पताल जाने के लिए बाहर निकलकर तारा ने दक्षिण के पहाड़ों की ओर देखा। काले बादलों ने उन्हें ढक रखा था। इसका अर्थ था कि पानी जोर से बरसेगा। तारा ने जल्दी-जल्दी सबको भात-पानी दिया और खुद भी खा पीकर जाने के लिए निकली। वर्षा होने के पहले ही अगर वह अस्पताल पहुंच जाए तो खैर है। दूसरे दिनों की तरह उस दिन भी छोटी नमिता मां की गोद में जाने के लिए मचलने लगी। नर्स की पोशाक कहीं गंदी न हो जाए इस डर से तारा ने उस दिन भी उसे समझा बुझाकर उसके दोनों गालों का चुंबन लिया और विदा ली। हेनरी की ओर हंसकर देखती हुई बोली 'जल्दी आऊंगी' और जल्दी से अस्पताल की ओर बढ़ गई। अस्पताल के द्वार तक पहुंचते ही वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगीं। तारा ने किसी तरह दौड़कर बरामदे में पैर रखे ही थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा। किंतु, वार्ड के भीतर प्रवेश करने के उपरांत मौसम की बात सोचने का उसे समय ही नहीं मिला। सर्जन के साथ-साथ रहकर अस्पताल के कई रोगियों के चार्टों की जांच करने के बाद, बाहर से आए हुए रोगियों की परिचर्या शुरू की। नए रोगियों में सबसे बुरी हालत थी, पहले दिन आए दस वर्ष के एक लड़के की। वह पेट से तलवे तक गर्म पानी से बुरी तरह जल गया था। उसके बचने की आशा बहुत कम थी फिर भी डाक्टर ने भरसक प्रयत्न किया। ऐसे रोगी को लेकर नर्स का दायित्व बहुत अधिक रहता है। लड़का पीड़ा से आर्तनाद कर रहा था। तारा ने अत्यंत सावधानी पूर्वक उसकी पट्टियां बदल दीं। बाहर बरामदे में लड़के की मां का हृदय-द्रावक विलाप सुनकर तारा बाहर आई और थोड़ी ऊंची आवाज में उसे धैर्य रखने के लिए कहा। लड़के की मां की दशा देखकर तारा को बड़ा खराब लगा किंतु शोर गुल मचाने से तो कोई लाभ होने वाला नहीं था। दिन का अधिकांश समय तारा ने लड़के के पास रहकर ही बिताया। दोपहर के समय उसे दवा देकर सुला दिया गया था। इसलिए वार्ड का वातावरण शांत था। लड़के की मां भी वापस चली गई थी।

तारा की ड्यूटी समाप्त होने के पहले ही रात की ड्यूटी करने वाली नर्स पहुंच गई। उसे अपना काम समझाकर वह घर जाने के लिए निकली। रिमझिम वर्षा हो रही थी। तारा छाता खोलकर बाहर निकल ही रही थी कि उसे लगा कि किसी ने उसे जोर से धक्का दिया है। तारा चारो खाने चित होकर जमीन पर गिर पड़ी। पहले तो उसने समझा कि सिर चक्कर कर रहा है। धरातल चंचल तरंगों की तरह डवांडोल हो रहा था। तारा ने जमीन की घास को हाथों से कसकर पकड़ लिया। भूकंप ! चारों तरफ लोग आतंक के कारण शोरगुल करने लगे। अस्पताल के डाक्टर, रोगी, कर्मचारी प्रायः सभी लोग निकलकर बाहर

आ गए। कोई हाथ जोड़कर राम का नाम लेने लगा तो कोई आकाश की ओर देखकर ईसा का नाम जपने लगा। सामने के पक्के दो मकान ताश के पत्ते की तरह धम से गिर पड़े। इसके साथ ही लोगों का आर्तनाद सुनाई दिया। अस्पताल के प्रागंण में पीपल के दो बड़े वृक्ष प्रचण्ड शब्द करते हुए धराशायी हो गए। चारों तरफ पत्थर टूटने की तरह 'गुर्र गुर्र' की आवाज हो रही थी। भूकंप का जोर कम पड़ने पर तारा उठकर खड़ी हो गई। हठात अस्पताल के भीतर से एक शिशुकंठ का आर्तनाद सुनाई पड़ा। बाकी के रोगी बाहर आ गए थे। इस बीच अस्पताल के भवन का एक भाग गिर चुका था। किंतु दरवाजा अभी भी खुला था। तारा उस तरफ से दौड़कर भीतर गई, सभी चकित होकर उसे देख रहे थे। गिरे हुए मलबे में से लेटकर हाथों पैरों के बल चलती हुई तारा वार्ड में चली गई। लड़का बिछौने पर पड़ा रो रहा था। तुरंत तारा उसे बिछौने की चादर में लपेटकर दरवाजे की ओर बढ़ी। किंतु तभी भूकंप का एक और प्रचंड झटका आया। बाहर के खड़े लोगों ने देखा कि प्रचंड आवाज करके वार्ड की छत बैठ गई थी। तारा उसके बाहर नहीं निकल पाई।

सारी रात वर्षा का कोलाहल, बीच-बीच में भूकंप के एक दो हल्के झटके आते रहे। उस रात गुवाहाटी का कोई आदमी घर के भीतर नहीं रहा; उजन बाजार के बहुत से स्थानों को ब्रह्मपुत्र के पानी ने आकर डुबो दिया। अस्पताल के प्रांगण में भी पानी भर गया था। जगह-जगह के कुएं बालू से पट गए। रास्तों में बीच-बीच में कहीं-कहीं पर बहुत बड़े गड्ढे हो गए थे। साहबों के पक्के बंगले प्रायः सभी टूटकर चूर-चूर हो गए थे। इस महाप्रलय में केवल बांस और फूस के दो मकान बच पाए थे। अस्पताल के सर्जन स्वयं हेनरी को तारा की मृत्यु का संवाद देने गए थे। तारा के महान् आत्मत्याग का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था, "हमारे त्राणकर्ता ईसा के महान आदर्श पर चलकर तारा ने दूसरों के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। ऐसी मृत्यु महान है।"

तारा के अन्य सहकर्मियों ने भी मानव-सेवा के प्रति उसकी निष्ठा की बातें गद्‌गद् स्वर में दुहराई थीं। किंतु, उस क्षण हेनरी को सांत्वना की सारी बातें निरर्थक सी लगीं। भूकंप से उसके छोटे से घर की विशेष क्षति नहीं हुई थी। किंतु हेनरी को वह घर तारा के अभाव में प्राण विहीन देह के समान लग रहा था।

तारा की मृतदेह का उद्धार करके समाधि देने का सारा दायित्व सरकार ने लिया। मिशन की ओर से भी भूकंप में क्षतिग्रस्त हुए प्रत्येक परिवार को सहायता दी गई थी। कुछ दिनों तक हेनरी के दोनों बच्चों की देखभाल का पूरा दायित्व मिशन के लोगों ने लिया। हेनरी के साथ के शिक्षक और स्कूल के छात्रों का एक दल खबर लेने के लिए आया था। कई प्रार्थना सभाएं भी हुई थीं। सभी ने तारा की स्मृति के प्रति अगाध श्रद्धा अर्पण की थी। किंतु, ये सब बातें हेनरी के मन में उद्‌भूत असीम शून्यता को किंचित भी नहीं भर

पाईं। स्कूल से छुट्टी लेकर काफी दिनों तक घर में ही रहे। अवश्य, भूकम्प के बाद स्कूल, कचहरी आदि कुछ दिनों के लिए बंद भी कर दिए गए थे। अधिकांश घरों का नव-निर्माण कराना पड़ा। किंतु इस बार सरकारी घरों को बांस और फूस से ही बनाया गया।

हेनरी को स्वर्ण का एक लंबा पत्र मिला। उसने लिखा था, तारा अब वास्तव में स्वर्ग की ध्रुवतारा बन गई। अब वह अपने सभी परिचितों का अंतरंग से मार्ग-प्रदर्शन करेगी। स्वर्ण ने हेनरी को कलकत्ता जाने का अनुरोध किया था। पत्र को पढ़ते हुए हेनरी बस यही सोचता रहा—पहले ऐसा होता तो वह कलकत्ता जाने की कल्पना करके ही कितना प्रसन्न हो गया होता। किंतु अब उसके मन में कलकत्ता का मोह भी समाप्त हो गया है। स्वर्ण का पत्र उसने मेज पर रखी हुई बाइबिल के नीचे दबाकर रख दिया। आजकल प्रायः वह बाइबिल पढ़ा करता था। उसका वेदना-विह्वल अन्तर्मन ईसा की प्रेम-वाणी के मर्म को अभिनव रूप से अनुभव करने के लिए प्रयत्नशील था। पहले मिशन में रहते समय उसने न जाने कितने संतप्त जनों को कितनी ही बार ईसा की वाणी सुनाकर सांत्वना दी थी। अब अपने लिए भी उसने सांत्वना का एक मंत्र चुन लिया "Blessed are they that mourn, for they shall be comforted" (धन्य हैं वे जो शोकाकुल हैं क्योंकि उन्हें सांत्वना प्राप्त होगी।)

भूकंप के लगभग दो मास पश्चात् एक दिन धर्मकांत हेनरी के पास आया। धर्मकांत ने आजकल अपने को पूरी तरह प्रेस के काम में लगा दिया था। उसके प्रेस में कई असमिया पुस्तकें मुद्रित होकर प्रकाशित हुई थीं। एक साप्ताहिक समाचार-पत्र भी वह प्रकाशित करने वाला है। इन सब कामों के लिए उसे प्रायः गुवाहाटी आना जाना पड़ता था। उस दिन हेनरी के पास बैठकर धर्मकांत ने अतीत की अनेक बातें कीं। नगांव में बिताए हुए दिनों की बातें, कलकत्ता की बातें। अंत में उसने अपने आगमन का उद्देश्य बतलाया। 'लक्ष्मी ने मुझे यह कहकर भेजा है कि तुम लोगों को अपने साथ डिब्रूगढ़ ले जाऊं। नई जगह में जाने पर तुम्हारा मन प्रसन्न होगा और हमें भी बहुत अच्छा लगेगा। चाहो तो तुम मेरे साथ प्रेस में काम कर सकते हो। अन्यथा वहां के सरकारी स्कूल में अपनी बदली करा सकते हो।"

हेनरी ने म्लान हंसी हंसकर उत्तर दिया, "मैंने भी सोचा था कि तुम लोगों के पास एक बार जाऊंगा। किंतु, इस बीच मैंने भविष्य के विषय में एक अन्य निर्णय ले लिया है। मैं शिलांग में बेल्स मिशन द्वारा स्थापित एक नए स्कूल में काम करने का वचन दे चुका हूं। रास्ता खुलते ही मैं वहां चला जाऊंगा।"

"इसका अर्थ है कि तुमने फिर से मिशन में लौट जाने का निश्चय कर लिया है?" धर्मकांत ने अवाक होकर पूछा।

"मेरे लिए इसके सिवाए दूसरा उपाय नहीं था। मैं बहुत निरीह व्यक्ति हूं बरुआ !

शैशवकाल से मिशन मेरा घर संसार रहा है। बीच में तारा को पाकर मेरे जीवन को एक नूतन गति मिल गई थी। मेरा संसार विशाल हो गया था। किंतु, अब वह प्रेरणा नहीं है। मुझे अब केवल एक आश्रय की तलाश है। कम से कम कुछ दिनों के लिए मिशन ही मुझे वह मानसिक सुरक्षा दे सकेगा, अन्य कोई नहीं।"

हेनरी ने अपनी बात धीरे-धीरे कही थी मानो उसे इस बात का भय हो कि धर्मकांत उसे गलत न समझ जाए। धर्मकांत केवल विस्मयपूर्वक उसे देख रहा था। कभी भी वह हेनरी के मानसिक संसार को भली-भांति समझ नहीं पाया था। धीरे-धीरे सिर हिलाकर उसने कहा, "मैं तुम्हें नहीं समझ पाया हेनरी। मिशन के बाहर रहकर भी क्या तुम अपने बंधु-बांधवों और शुभाकांक्षियों सहित एक वृहत परिवार का निर्माण नहीं कर सकते थे?"

"तुम्हारा मानसिक दृष्टिकोण नितांत भिन्न है बरुआ ! तुम मेरी बात नहीं समझ पाओगे।" हेनरी ने धर्मकांत को समझाने के प्रयास को छोड़ते हुए कहा। धर्मकांत हंसकर पराजय स्वीकार करने की मुद्रा में दोनों हाथ उठाकर कहने लगा, "सचमुच, तुम्हारे साथ इस बार मैं हार गया। किंतु मैंने आशा नहीं छोड़ी है। एक न एक दिन तुम अवश्य फिर हमारे बीच वापस आ जाओगे। मेरे नहीं बुलाने पर भी समय तुम्हें बुलाएगा।"

जाते समय धर्मकांत ने बड़ी आत्मीयता से हेनरी के कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "तुम्हारे परिवार में अब क्या हमारे लिए कोई स्थान होगा?" हेनरी ने मानो आघात पाकर उत्तर दिया, ''ऐसा कहकर दुःख मत दो बरुआ ! तुम लोग, तुम, लक्ष्मी और स्वर्ण मेरे लिए कितने आत्मीय हैं, तुम्हारी स्मृतियां ही नव-जीवन आरंभ करने में मेरी सहायक होंगी और शिलांग भी कितनी दूर है? रास्ता ठीक होने पर हमारी भेंट होती रहेगी। तुम लोग आकर मेरा आतिथ्य ग्रहण करना। स्वर्ण के पास भी मैंने पत्र लिखा है। भाई के विलायत से लौट आने पर दोनों शिलांग जा सकेंगे।''

## 9

असम के भूकंप ने कलकत्ता महानगरी को भी हिला दिया था। वहां भी दो एक पुराने मकान क्षतिग्रस्त हो गए थे किंतु असम की तरह वहां व्यापक रूप में क्षति नहीं हुई थी। समाचार पत्रों में असम के भूकंप की खबर पढ़कर स्वर्ण वहां पर रहने वाले अपने स्वजनों और बंधु बांधवों के लिए दुश्चिंता से कातर हो गई थी। रास्ता, घाट, डाक सभी क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण स्वर्ण को बहुत दिनों तक किसी के कोई समाचार प्राप्त नहीं हुए। इसके बाद धीरे-धीरे समाचार मिलने लगे थे। नगांव में स्वर्ण के परिचित सभी लोग सकुशल थे। दो-एक घर-द्वार अवश्य नष्ट हुए थे, किंतु तारा की मृत्यु की खबर पाकर स्वर्ण शोक से विह्वल हो गई थी। स्वजनों की मृत्यु पर वह अपने जीवन में अनेक बार रोई थी किंतु तारा

के वियोग पर उसे लगा था जैसे उसके अस्तित्व की एक दिशा ही अंधकारमय हो गई। वह स्वयं जो बनना चाहती थी, इतने दिनों तक तारा ही उसका जीवंत रूप थी। तारा से मिलकर उसके मन को जीवित रहने के लिए एक नवीन प्रेरणा मिली थी। अंतिम बार मिलने पर तारा ने उससे पुनर्विवाह की बात की थी और उसका परामर्श पाकर ही हठात् स्वर्ण ने इतने दिनों तक मन से निर्वासित कतिपय भावनाओं को प्रश्रय देना प्रारंभ कर दिया था। समाचार पत्रों के अनुसार भूकंप का सर्वाधिक प्रलयंकारी रूप खासिया पर्वतअंचल में देखा गया था। पहाड़ के नीचे बसे हुए कई गांव ऊपर से टूट कर गिरे शिलाखंडों और मिट्टी में दबकर निश्चिह्न हो गए थे। कितने लोग जीवित ही धरती में समा गए, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं लगाया जा सका। शिलांग के सभी अच्छे-अच्छे सरकारी बंगले टूटकर चकना चूर हो गए। कई साहबों की मृत्यु हो गई। मृतकों में मेकले साहब भी थे, जिन्होंने रंगिया में गोली चलाने का आदेश दिया था।

स्वर्ण ने 'द इंगलिश मेन' समाचार पत्र को अपने मुंह के आगे से हटाकर सामने बैठे हुए एक बंगाली सज्जन की ओर देखकर कहा, "मनुष्य को अपने पाप का फल एक न एक दिन भोगना ही पड़ता है। मेकले साहब शिलांग जाकर भी अपने आपसे छुटकारा नहीं पा सके।"

स्वर्ण के साथ बात करने वाले सज्जन का नाम था क्षीरोद चन्द्र राय चौधरी। वे हुगली कालेज के अध्यक्ष थे। वे एक विद्वान और चरित्रवान व्यक्ति के रूप में विख्यात थे। उनकी आयु चालीस के आसपास होगी किंतु देखने में कम उम्र के लगते थे। वे दो संतानों (एक पुत्र और एक पुत्री) के पिता थे। कई वर्ष पहले उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी। स्वर्ण को जगदीश चन्द्र बसु के घर में प्रथम बार देखकर दोनों की दोस्ती हो गई और क्रमशः यह संपर्क घनिष्ट हो जाने पर दोनों ने विवाह-बंधन में आबद्ध होने का निर्णय ले लिया था। पहले स्वर्ण के मन में कुछ दुविधा हुई। बहुत दिनों तक अकेली रहते-रहते हठात अपने जीवन में एक नया परिवर्तन लाने के लिए उसे भय लगा था किंतु अंत में सभी बंधु-बांधवों एवं शुभाकांक्षियों के आग्रह और क्षीरोद बाबू के असीम धैर्य और प्रेम ने उसके मन को संयत करने में सहायता दी थी। क्षीरोद बाबू की प्रेरणा से उसने फिर से अपना अध्ययन आरंभ कर दिया था। किंतु उनके विचारों के अनुसार, एन्ट्रेन्स परीक्षा देने की इच्छा स्वर्ण को नहीं थी। परीक्षा पास करके भी वह क्या करेगी?

स्वर्ण के मंतव्य को सुनकर क्षीरोद बाबू ने हंसकर कहा, "स्वर्ण ! क्या तुम भी काव्यात्मक न्याय पर विश्वास करती हो? मैं नहीं करता। इस पृथ्वी पर असंख्य लोग हैं, जो निर्दोष होने पर भी कष्ट भोगते हैं, कितने दुर्जन हैं, जो आनंदपूर्वक दिन बिताते हैं। इस भूकंप में ही न जाने कितने निर्दोष लोगों की मृत्यु हो गई।"

स्वर्ण का मुख हठात विवर्ण हो गया। दो दिन पहले मिले हेनरी के पत्र की बात याद

करके उसकी आंखें छलछला आईं। क्षीरोद बाबू के मन में अपनी बातों के कारण दुःख हुआ। वे जानते थे कि तारा की मृत्यु के समाचार ने स्वर्ण को कितना विह्वल कर दिया था। स्वर्ण ने कुछ देर चुप रहकर अन्यमनस्क भाव से समाचार पत्र को मोड़ते हुए, दार्शनिक भाव से कहा, "जीवन-मरण हमारे हाथ में नहीं है, क्षीरोद बाबू। हम केवल अपने सामर्थ्य के अनुसार अपना काम कर सकते हैं। सत्कार्य करके मृत्यु को सार्थक बनाया जा सकता है, असत्कार्य करने पर मृत्यु भी भयंकर हो जाती है।" थोड़ी देर रुककर स्वर्ण ने फिर कहा, "मैंने अपने जीवन में मृत्यु को इतने निकट से देखा है कि जीवन और मरण के मध्य पार्थक्य अब मेरे लिए नहीं के बराबर रह गया है।"

''इस वयस में इस तरह की बातें करना तुम्हें शोभा नहीं देता स्वर्ण ! तुम्हारे लिए अपना संपूर्ण जीवन तुम्हारे सामने है। अभी जीवित रहने की बात सोचो। मृत्यु की चर्चा हम वृद्ध होने पर कर लेंगे।'' अंत की बात उन्होंने धीमी आवाज में कही थी किंतु उनके स्वर में हार्दिकता थी।

स्वर्ण ने उनकी बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया। दीवाल पर टंगे कलेंडर को देखकर उसने प्रसंग बदलते हुए कहा, "अगले वर्ष ज्ञान वापस आ जाएगा। उसकी संपत्ति उसे सौंपने के बाद ही मैं स्वतंत्र हो पाऊंगी।"

"इसका अभिप्राय है कि तुम वानप्रस्थ की बात सोच रही हो", क्षीरोद बाबू ने पुनः कौतुकपूर्ण हास्य के साथ कहा।

"तुम्हारे साथ मुझे भी वनवास के लिए एक वर्ष के भीतर तैयार हो जाना होगा। अन्यथा, हमारे प्रस्तुत होने के पहले ही बीसवीं शताब्दी आकर उपस्थित हो जाएगी।"

"बीसवीं शताब्दी?" स्वर्ण एक अल्पवयसी कन्या की तरह उच्च स्वर में बोल उठी, ''सोचने पर कितना अच्छा लगता है। मेरे पिता जी हमेशा कहा करते थे कि बीसवीं शताब्दी में संसार एकदम परिवर्तित हो जाएगा। कलकत्ता से नगांव तक जाने में दो या तीन दिन लगेंगे और हमारे समाज के सारे कुसंस्कार दूर हो जाएंगे। क्या हम वे दिन देख पाएंगे?''

स्वर्ण उठ गई और बरामदे के रेलिंग को पकड़कर दूर तक देखती रही।

उस समय संध्या होने ही वाली थी। धीरे-धीरे कलकत्ता महानगरी के प्रदीप एक-एक करके प्रकाशमान होने लगे।